साहित्य अमृत

मासिक

वर्ष-२२ अंक-५ ❖ पृष्ठ ८४ | मार्गशीर्ष-पौष, संवत्-२०७३ | दिसंबर २०१६

संस्थापक संपादक

स्व. पं. विद्यानिवास मिश्र

❖

पूर्व संपादक

स्व. डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

❖

संपादक

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

❖

प्रबंध संपादक

श्यामसुंदर

❖

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

❖

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-११०००२
फोन : २३२८९७७७ • फैक्स : २३२५३२३३
इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

❖

शुल्क

एक अंक —₹ ३०
वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००
वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००
विदेश में
एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)
वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

❖

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी श्यामसुंदर द्वारा
४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२
से प्रकाशित एवं ग्राफिक वर्ल्ड, १६८६,
कूचा दखनीराय, दरियागंज, नई दिल्ली-२ द्वारा मुद्रित।

❖

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

इस अंक में

संपादकीय

मोदी सरकार का नोटबंदी का ऐतिहासिक कदम ४

प्रतिस्मृति

मंदिर की देहरी/ *शंकरदयाल सिंह* ७

कहानी

पुरस्कार/ *विद्या विंदु सिंह* ११
अपना-अपना सूरज/ *रश्मि कुमार* १८
सुधा आज भी रोती है/ *वासुदेव* २६
छत की आस/ *रजनी मोरवाल* ३८
वापसी/ *बलदेव कृष्ण कपूर* ४२
श्राप-मुक्ति/ *संजीव रस्तोगी* ४७
भरा-भरा घर/ *विपुल ज्वाला प्रसाद* ५३
हस्तक्षेप/ *इंदु मौआर* ६२
एक नया सवेरा/ *बीना सिद्धेश* ७४

आलेख

आदिवासी विद्रोह एवं मानगढ़ की शहादत की गौरव-गाथा/ *ज्ञान प्रकाश पिलानिया* १४
प्रेमचंद : शोध की नई दिशाएँ/ *कमल किशोर गोयनका* २२
हिंदी गजल और हिंदी कविता : एक अहसास/ *विमल लाठ* ३१
गावो विश्वस्य मातर/ *सुरेश कुमार* ६०
राष्ट्रीय गीतों के लेखक कविवर प्रदीप/ *सतीश चंद्र चतुर्वेदी* ७६

कविता

नई दिशाओं की ओर/ *सुनीता चौधरी* १०
गंगा अवतरण/ *वीरेंद्र निर्झर* १६
मन की बात/ *सूर्यनारायण गुप्त 'सूर्य'* ४१
राम करें वनवास तो'''/ *रामनिवास 'मानव'* ४९
आपका चेहरा बयाँ है/ *विज्ञान व्रत* ५५
बुद्धि/ *गोपेश शरण शर्मा 'आतुर'* ६१
क्या सीखा हमने/ *सुकीर्ति भटनागर* ५३
प्रेरक दोहे/ *माणिक मृगेश* ६६
आओ, मेरा संधान करो/ *नीरज कुमार* ७७

ललित-निबंध

धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र/ *श्रीराम परिहार* ३४

व्यंग्य

सेलिब्रिटीज के शिक्षाप्रद कथन/ *अश्विनी कुमार दुबे* ५०

राम झरोखे बैठ के

आज की मुखौटा सदी/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४४

साहित्य का भारतीय परिपार्श्व

ढलान/ *बलजीत सिंह रैना* ५६

साहित्य का विश्व परिपार्श्व

हम सतत परिवर्तनशील प्रवाह में हैं/ *ग्युंटर ग्रास* ६४

यात्रा-संस्मरण

महाकाल की नगरी उज्जयिनी में दो दिन/ *प्रेमपाल शर्मा* ६८

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ७८
वर्ग-पहेली ७९
साहित्यिक गतिविधियाँ ८०

संपादकीय

मोदी सरकार का नोटबंदी का ऐतिहासिक कदम

आठ नवंबर के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के राष्ट्र के नाम उद्‌बोधन के उपरांत सबका ध्यान केवल ५०० और १००० रुपए के नोटों के विमुद्रीकरण से उत्पन्न समस्याओं पर है। प्रधानमंत्री ने विमुद्रीकरण का प्रयोग अपने भाषण में नहीं किया था। उन्होंने तो केवल इतना कहा कि आठ नवंबर को रात बारह बजे के बाद विनिमय की दृष्टि से ये नोट कानूनी तौर पर मान्य नहीं होंगे। यानी बारह बजे के बाद उनका कोई मूल्य नहीं होगा। उन्होंने जनता से सहयोग, धैर्य बनाए रखकर कुछ समय तक कुछ परेशानियाँ सहने के लिए निवेदन किया। साथ ही कहा कि किसी प्रकार के पैनिक की आवश्यकता नहीं है। उन्होंने एक बड़े उद्‌देश्य को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय लिया है, अतएव जनता का सहयोग अपेक्षित है। इसके पीछे सरकार का उद्‌देश्य है—कालेधन को समाप्त करना, भ्रष्टाचार को रोकना, नकली नोट, जो नेपाल और बँगलादेश के रास्ते भारत में आ रहे हैं उनको रोकना एवं आतंकवादियों की आर्थिक सहायता का बड़ा स्रोत कालाधन, उसको रोकना। वास्तव में आठ नवंबर की घोषणा प्रधानमंत्री की पिछली नीति के अनुरूप ही है, जिसके अंतर्गत दो न्यायाधीशों की देख-रेख में विशेष एक जाँच दल (एस.आई.टी.) की स्थापना की गई थी और जिसकी निगरानी सर्वोच्च न्यायालय करता है।

संयोग से चूँकि उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा कुछ अन्य प्रदेशों के चुनाव अगले वर्ष होने हैं, विपक्ष द्वारा उनसे इसे जोड़ दिया गया है। चुनाव के लिए जो पैसा इकट्‌ठा किया जाता है, उसका लाभ अन्य दल न उठा सकें, इसलिए यह नोटबंदी की कारवाई की गई है। बीजेपी के लिए कहा जा रहा है कि इसका सुराग उसको पहले ही लग गया था, अत: समय रहते उसने बैंकों में इंतजाम कर लिया था। विरोधी दलों ने जब देखा कि आम जनता को परेशानियाँ हो रही हैं तो उन्होंने जनता की कठिनाइयों पर जोर देना शुरू किया। संसद् के शीतकालीन सत्र में सरकार को घेरने की योजना बनाई। डर यही है कि शीतकाल का सत्र वैसे ही छोटा है, महत्त्व के कई बिल पारित होने हैं, नोटबंदी की समस्या को लेकर तीन दिन से संसद् ठप्प है। जी.एस.टी. से संबंधित तीन बिल सदन के सामने हैं, उनको कैसे पारित किया जाएगा। प्रारंभ के इन तीन दिनों में ही संसद् के दोनों सदनों में विरोधी दलों की मंशा मालूम पड़ रही है कि योजनाबद्ध तरीके से संसद् को चलने नहीं दिया जाए। विपक्षी नहीं चाहते कि कोई सार्थक कार्य हो और जिसका श्रेय एन.डी.ए. ले सके। विपक्ष राज्यसभा में प्रधानमंत्री को बयान देने के लिए बुलाने की जिद पर अड़ा हुआ है। बहरहाल किसी-न-किसी बहाने सदन स्थगित हो रहे हैं। आम जनता के हित में किया जानेवाला यह बड़ा कदम जनता की कठिनाई के बहाने कहीं बलिदान न हो जाए।

विमुद्रीकरण देश में पहले भी दो बार हो चुका है। द्वितीय युद्ध के बाद १९४६ में जब युद्ध के दौरान कालाबाजार और भ्रष्टाचार का लंबा दौर रहा, आशा थी कि कालाधन पकड़ा जाए। इसमें कुछ सफलता भी मिली। इसके बाद जनता पार्टी की सरकार ने भी बड़े नोटों का चलन बंद किया कि आर्थिक व्यवस्था में स्वच्छता और पारदर्शिता आए। देश में समानांतर अर्थव्यवस्था समाप्त हो। पर यह आशा करना कि एक बार की कारवाई से सब साफ हो जाएगा, यह संभव नहीं है। बदलते समय की आर्थिक परिस्थितियों पर ध्यान देना होगा। क्यों और कैसे कालाधन पैदा होता है, उस पर विचार करना होगा। इसके कारणों में भी बदलाव होता रहता है, अतएव सतत इस ओर निगाह रखने की जरूरत है। इसी कारण डॉ. भीमराव अंबेडकर ने अपने ग्रंथ 'इंडियन रुपी' में लिखा है कि इस प्रकार की कारवाई हर दस साल के बाद होनी चाहिए।

विमुद्रीकरण के लिए गोपनीयता अनिवार्य है। आगाह करने का मतलब होगा कि गलत काम करने वाले अपना सब ठीकठाक कर लें। यकायक कारवाई करने से कुछ कठिनाइयाँ आएँगी, इसलिए प्रधानमंत्री ने अपने उद्‌बोधन में कुछ सुविधाओं का जिक्र किया था कि कहाँ-कहाँ और कब तक पुराने नोट स्वीकार किए जाएँगे। पर ये शायद काफी नहीं हैं और बहुतों ने उनका मतलब ठीक ढंग से नहीं समझा। वास्तव में भारत में बैंकों का फैलाव अभी भी बहुत कम है। गाँव हैं, दूर-दराज के क्षेत्र हैं, जहाँ न बैंक हैं और न पोस्ट ऑफिस की सुविधा है, साधारण लोगों को पुराने नोट बदलने की बहुत कठिनाई होती ही है। क्या और किस प्रकार की असुविधाएँ विभिन्न क्षेत्रों में हो सकती हैं, उन पर अधिकारियों को विचार करना आवश्यक था। अनेकों उद्योगपतियों एवं अर्थशास्त्रियों ने प्रधानमंत्री के निर्णय का स्वागत किया है। सामान्य जन की भी प्रतिक्रिया है कि प्रधानमंत्री का निर्णय सही है, यद्यपि उनके लिए कुछ समस्याएँ भी पैदा हो गई हैं, जो जल्दी ही दूर हो जाएँगी। विपक्षी दल तुले हुए हैं कि जनता की कठिनाइयों की चर्चा बराबर चलती रहे। जिससे यह गफलत फैले कि एन.डी.ए. सरकार जनविरोधी है। सरकार न तो संयुक्त संसदीय कमेटी द्वारा जाँच और न अपने विमुद्रीकरण के निर्णय को वापिस लेने के लिए तैयार है। लेकिन वह इस विषय के हर पक्ष पर बहस करने और स्पष्टीकरण के लिए तैयार है। जेडीयू अध्यक्ष नीतिश कुमार ने प्र.मं. मोदी की कारवाई का स्वागत किया है और कहा कि बेनामी जो प्रोपर्टी है, उस पर भी कारवाई होनी चाहिए। पूर्व वित्तमंत्री चिदंबरम का भी कहना है कि उद्‌देश्य उचित है, पर कार्यान्वयन सही नहीं हो रहा है। वास्तव में कोई भी दल सीधे भ्रष्टाचार व कालेधन का समर्थन नहीं कर सकता है। कई दलों के नेताओं के विरुद्ध आमदनी से अधिक संपत्ति रखने के मुकदमे चल रहे हैं। ममता बनर्जी एवं टी.एम.सी. की अध्यक्ष सबसे अधिक मुखर हैं, वे भी सारदा और नारद के घोटाले की छाया में हैं; उनके कई नेताओं और सांसदों के खिलाफ इन घोटालों में लिप्त होने के आरोप हैं। दिल्ली में कुछ विरोधी

दलों ने राष्ट्रपति के यहाँ उनसे मोदी के फैसले को वापस लेने की माँग की। केजरीवाल के साथ आजादपुर मंडी की सभा में यह भी कह डाला कि अगर सरकार तीन दिन में अपना फैसला वापस नहीं लेती तो वे सड़कों पर उतरेंगे। विरोधी दलों के लिए 'जनता की तकलीफें इस समय शिखंडी' का काम कर रही हैं।

आम आदमी के सामने जो कठिनाइयाँ हैं, उसकी चर्चा लगातार टीवी चैनलों पर और समाचार-पत्रों में हो रही है, कभी-कभी बहुत बढ़ा-चढ़ाकर होती है, अतएव उसके अधिक विवेचन में जाने की आवश्यकता नहीं है। कुछ विशेष पक्षों का जिक्र अवश्य हम करना चाहेंगे। जो प्रतिदिन काम खोजते हैं, अन्य राज्यों से आए ऐसे मजदूर कष्ट में हैं। हर प्रकार के बाजार प्रभावित हुए हैं। सब्जी या फल वाले न अधिक माल ला सकते हैं और न खरीदने वाले खरीद सकते हैं। सबसे अधिक कठिनाई आम लोगों को हो रही है, क्योंकि १०० रुपए, ५० रुपए और छोटी रेजगारी भी उपलब्ध नहीं है। ए.टी.एम. के सामने घंटों खड़े और बैंकों के सामने कतार लगाए लोग न तो पुराने नोट जमा करा पाते हैं और न उनके एवज में नए प्राप्त कर पाते हैं। बहुत से गरीब लोगों और महिलाओं के अपने बैंक खाते नहीं हैं, उनके पास उनका कमाया हुआ धन है, पर वे उसका उपयोग इस समय नहीं कर पा रहे हैं। कुछ के पास पहचान-पत्र नहीं हैं। रोज कमाने-खाने वाले लोग ज्यादा कष्ट में हैं। गेस्ट हाउस या घर से बाहर रह रहे विद्यार्थियों को यातायात और खाने-पीने की दिक्कत हो रही है। नौकरी-पेशा लोग अपना काम छोड़कर समय बरबाद करें, इसमें राष्ट्रीय हानि ही है। गाँवों में किसान रबी की फसल के लिए बीज और रासायनिक खाद प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। उद्योग और बाजार में खरीद-फरोख्त में भी अवरोध हो रहा है। व्यापार पर भी इसका खराब असर पड़ा है। वे सचमुच परेशानी में हैं।

यह शादी का मौसम भी है, पुराने नोट बैंकों से निकालकर लोग शादी की तैयारी कर रहे थे, वे नोटबंदी से सकते में आ गए। शादी-ब्याह में छोटी रेजगारी की बहुत जरूरत होती है, वह उपलब्ध नहीं है। उधर लोग बंगलुरु में जनार्दन रेड्डी की बेटी की शादी की शानशौकत के बारे में पढ़ते-देखते हैं तो रोष पैदा होता है। समाचार-पत्रों का कहना है कि शादी का खर्चा ५००-६०० करोड़ का है। १५ हेलीपैड बनाए गए, हजारों मोटरें विशिष्ट लोगों को लाने के लिए खड़ी हैं। पूरी तरह विजयनगर साम्राज्य के वैभव को प्रदर्शित करने की कोशिश की गई है। इस प्रकार का दिखावा और व्यर्थ का खर्च देश में वितृष्णा ही पैदा करेगा—इस समय तो और अधिक। रेड्डी के विरुद्ध मनी लांडरिंग के मुकदमे हैं। लोग देख रहे हैं कि हर दल के विशिष्ट व्यक्ति शादी में शामिल हो रहे हैं, तो उनको लगता है कि वास्तव में देश दो हिस्सों में बँटा है—भारत और इंडिया में, अथवा लगता है, भारत में दो राष्ट्र हैं। एक ओर जनार्दन रेड्डी जैसे लोग और दूसरी ओर साधारण परिवार, जो अपने यहाँ की छोटी-मोटी शादियाँ भी ढंग से नहीं कर पा रहे हैं। आयकर विभाग के अधिकारी भले ही इस मामले में जाँच-पड़ताल करें भी, पर इससे सामान्य जन में एक तरह की अवमानना और पृथकत्व की भावना पैदा होती है।

सरकार ने शादी-ब्याह, किसान, व्यापारी आदि के लिए नई सुविधाओं की घोषणा की है। किंतु सबसे आवश्यक है कि छोटे नोटों के पहुँचाने की सुविधा हो। ऐसा लगता है कि जब रुपए की क्रयशक्ति इतनी कम हो गई है, तब ५०० रुपए के नोट को अमान्य करना समझ में नहीं आता है। निरीह से निरीह भी दो दिनों में ५०० कमा लेता है। १००० के नोट अमान्य करने के कुछ दिनों बाद ५०० के नोट अमान्य किए जा सकते थे। मूल बात यह है कि अभी देश 'कैशलेस' अर्थव्यवस्था की श्रेणी में नहीं आया है। यह ध्येय अच्छा है, पर उसको प्राप्त करने के लिए समय चाहिए। देश को उस ओर बढ़ने के लिए बहुत प्रयास करने होंगे। आज के संकट को दूर करने के लिए इस समय आवश्यकता है, बाट जोहती जनता के हाथों में कैश पहुँचाने की, ताकि उसको अहसास हो कि उसका अपना मेहनत से कमाया हुआ पैसा सुरक्षित है। बैंक भी अपनी प्रशासनिक व्यवस्था में सुधार करें, जैसे महिलाओं और वरिष्ठ नागरिकों के लिए बैठने का इंतजाम और अलग कतार, तो भी कुछ तसल्ली होती। कुछ नागरिकों ने पानी और नाश्ते का इंतजाम किया है, यह सिविक सेंस प्रशंसनीय है।

इसके विपरीत कुछ धन्नासेठों ने अपने कालेधन को सफेद में परिवर्तन करने की गुहार अपने यहाँ काम करने वाली महरियों और नौकरों, ड्राइवरों आदि से की कि २.५ लाख रुपए अपने-अपने खातों में जमा कराएँ। टीवी चैनल दिखा रहे हैं कि कितने कमीशन पर पुराने नोटों को नए नोटों में बदला जा सकता है। यह ठीक है कि बड़े मगरमच्छ कालाधन केवल नोटों में नहीं रखते हैं। उससे सोना, हीरा, जवाहरात और प्रसिद्ध चित्रकारों की पेंटिंग आदि खरीदे जाते हैं। हम समझते हैं कि सरकार इस ओर सतर्क है। बाहर बैंकों में जो कालाधन जमा है, उसको लाने की कोशिशें सरकार कर ही रही है। १००० और ५०० के नोटों का विमुद्रीकरण उसी कड़ी में एक कदम है। समय-समय पर यह आकलन करने की आवश्यकता भी है कि कहीं सरकारी नीतियाँ ही तो कालाधन उत्पन्न करने में उत्तरदायी नहीं हैं। पूर्व में ऐसा हो चुका है। टैक्सेशन की दर इतनी ऊँची थी कि बहुत से चतुर उद्योगपतियों, व्यापारियों और राजनेताओं ने इनकम टैक्स तथा एक्साइज से धन बचाकर विदेशों में बेनामी कंपनियाँ स्थापित कीं। सुनियोजित ढंग से सरकार को इन सब मुद्दों तथा इससे संबद्ध अन्य मुद्दों पर कड़ी निगाह रखनी होगी। सरकार को हर प्रकार से सोच-समझकर जन साधारण की कठिनाइयों को दूर करने का प्रयास पहले करना चाहिए। यदि वास्तव में विरोधी दल जनहित को बढ़ावा देना चाहते हैं, तो दीर्घकालीन परिप्रेक्ष्य में उन्हें सरकार के इस प्रयास में सहभागी बनना चाहिए।

दिल्ली की जानलेवा प्रदूषण-समस्या

एक और भीषण समस्या है, जिसे केवल दिल्ली और आस-पास के इलाके ही नहीं, किसी-न-किसी रूप में पूरा देश झेल रहा है, वह है प्रदूषण की समस्या। जहाँ तक दिल्ली और एन.सी.आर. का क्षेत्र है, वहाँ की हवा इतनी दूषित है कि आम आदमी जहर की साँस ले रहा है। अन्य बड़े शहर और पास के नगर भी इससे बचे नहीं हैं, जैसा समय-समय पर पता चलता है। समाचार-पत्रों में पन्ने के पन्ने इस समस्या, विशेषकर दिल्ली की दुर्दशा पर आ रहे हैं। यह समस्या केवल इसी वर्ष पैदा नहीं हुई, कई वर्षों से चल रही है। जब समस्या बढ़ जाती है तो कोई-न-कोई या कुछ एन.जी.ओ.,

जो पर्यावरण संबंधी समस्याओं की खोज करते रहते हैं, वे उच्च अदालत और दिल्ली की शीर्ष अदालत में जाते हैं, तब अदालतें सरकार को और कभी-कभी केंद्र सरकार को आदेश देती हैं, फटकार भी लगाती हैं। हरित या ग्रीन ट्रिब्युनल भी प्राय: अपनी भूमिका अदा करता है। इस वर्ष भी वही हुआ। दिल्ली में डेंगू और चिकनगुनिया के प्रकोप के साथ ही प्रदूषण का संकट भी पैदा हो गया। कवायद फिर हुई। सब जानते हैं कि पर्यावरण की समस्या पूरे विश्व की है। अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में इसके निदान के लिए भारत काफी सक्रिय है। जहाँ तक दिल्ली का सवाल है, इस विषय में दिल्ली सरकार की न कोई नीति है, और न कोई कार्यक्रम। मुख्यमंत्री केजरीवाल ने अपने पास कोई विभाग नहीं रखा है, सब दायित्व उपमंत्री सिसोदिया को सौंप दिए। केजरीवाल तो प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी पर दैनिक दोषारोपण में अन्यथा पंजाब, गुजरात, गोवा की चुनाव व्यवस्था में ही व्यस्त हैं। दिल्ली की हवा के दूषित होने के क्या कारण हैं, इस पर कोई आम सहमति नहीं है। अलग-अलग कारण बताए जाते हैं, पर उसके विवेचन में जाने की आवश्यकता नहीं है। इस समय हमारा केवल प्रश्न यह है कि क्या दिल्ली सरकार का दायित्व नहीं है कि प्रतिवर्ष होनेवाली समस्या के निदान के लिए पहले से ही नीति निर्धारित करे, उसके अनुरूप कार्यक्रम बनाए, उसके लिए साधन प्रदान करे और संकट गहन होने के पहले से उस कार्यक्रम का अनुपालन प्रारंभ हो जाए? दीपावली के बाद दमघोंटू वातावरण था, लोग जहर की साँस ले रहे थे, जब कुछ निर्णय लिये गए, वे भी अदालतों के दवाब में। क्या पहले से कुछ तैयारी नहीं हो सकती, दूषित वायु की समस्या तो प्राय: पूरे वर्ष ही रहती है, यह शीत काल में बढ़ जाती है। दिल्ली के मुख्यमंत्री की पहली जिम्मेदारी अपने राज्य के प्रति है, यह समझना जरूरी है।

अमरीकी राष्ट्रपति का चुनाव

अमरीका में हुए इस वर्ष राष्ट्रपति के चुनाव में पूरे विश्व की विशेष दिलचस्पी रही। एक तरफ शासन और राजनीति की जानकार हिलेरी क्लिंटन डेमोक्रेटिक पार्टी की प्रत्याशी और दूसरी ओर रिपब्लिकन पार्टी के प्रत्याशी डोनाल्ड ट्रम्प, जो बहुत बड़े उद्योगपति हैं और जिनके दस-बारह प्रोजेक्ट भारत के कई शहरों में हैं। उन्हें किसी राजनीतिक या प्रशासनिक पद का कोई अनुभव नहीं है। ज्यादातर कयास यह था कि हिलेरी क्लिंटन जीतेंगी; हालाँकि चुनाव टक्कर का था। इस प्रकार की आशा थी कि हिलेरी अमरीका की प्रथम महिला राष्ट्रपति होंगी। चुनाव के दौरान बहुत गहमागहमी रही। डोनाल्ड ट्रम्प ने चुनाव के मध्य बहुत से वर्गों के विरुद्ध अभद्र भाषा का प्रयोग किया। परंतु नतीजा आशा के विपरीत आया। जीत डोनाल्ड ट्रम्प की हुई। ऐसा क्यों हुआ, इसके तरह-तरह के विवेचन आ रहे हैं। पर एक कारण पर प्राय: मतैक्य है कि वैश्वीकरण की दौड़ में गोरे लोग पीछे रह गए, उनकी नौकरियाँ छिन गईं, इस प्रकार की भावना उनमें व्याप्त हो गई। वैसे अमरीका देश ही समय-समय पर बाहर से आनेवालों का ही है, जो वहाँ के नागरिक हो गए। सबको रोजगार देने और अमरीका को पुन: महान् बनाने के ट्रम्प के नारे ने अपना काम किया और वे जीत गए। चुनाव के बीच ट्रम्प ने कहा कि चुने जाने के बाद वे ओबामा की सभी नीतियों में परिवर्तन करेंगे। बाहर से आनेवालों पर रोक लगाएँगे। आई.एस. को समाप्त करने का पूरा प्रयास करेंगे। नाटो के माध्यम से अमरीका ने जो क्षेत्रीय दायित्व लिये हैं, उन्हें खत्म करेंगे। पेरिस समझौता, जो पर्यावरण के विषय में पिछले दिनों हुआ, उसको नकार देंगे, आदि-आदि। उनकी क्या विदेश नीति होगी, यह सब अनिश्चित सा है। अमरीका इस समय एक विभाजित राष्ट्र है। ट्रम्प के विरोध में जगह-जगह आंदोलन भी हो रहे हैं। पर २० जनवरी, २०१७ को डोनाल्ड ट्रम्प ही राष्ट्रपति की शपथ लेंगे। उनकी कैबिनेट किस प्रकार की होगी, तरह-तरह की अटकलबाजियाँ हो रही हैं। अमरीका की विदेश और आंतरिक नीतियाँ क्या होंगी, सभी जानने को आतुर हैं। ट्रम्प के एक परामर्शदाता ने कहा कि सिलीकन वैली में बाहर के बहुत से सी.ई.ओ. हैं। क्या अमरीका अपने को वहाँ तक वैश्वीकरण से अलग करेगा और किस प्रकार अमरीका की महानता को बनाए रखेगा, यह एक प्रश्न है। भारत के प्रति ट्रम्प प्रशासन की क्या नीति होगी? चीन और पाकिस्तान की ओर कैसा रुख होगा? यह कहना इस समय कठिन है। लोकसभा अध्यक्ष के भोज में प्रधानमंत्री मोदी ने बताया कि ट्रम्प से उनके रिश्ते अच्छे हैं और भारत को रिपब्लिकन शासन से सदैव लाभ हुआ है। यह आगे देखना होगा। इस समय तो शंका और अनिश्चितता का वातावरण है।

उ.प्र. में गंगा सफाई का सच

एक और चिंता का विषय है। पिछले दिनों देश समझ रहा था कि गंगा के स्वच्छीकरण का कार्यक्रम सुचारू रूप से चल रहा है, पर यह समाचार पढ़ा तो धक्का लगा कि हरित ट्रिब्युनल ने उत्तर प्रदेश सरकार को आदेश किया है कि वह रख-रखाव को छोड़कर, गंगा के किनारे की योजनाओं पर कोई पैसा खर्च नहीं कर सकती। हरित ट्रिब्युनल का कहना है कि बिना पूरी जानकारी के विभिन्न योजनाओं पर पैसा खर्च किया जा रहा है। करोड़ों रुपए व्यर्थ बरबाद किए गए हैं। हरित ट्रिब्युनल को नाराजगी हुई, जब केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और उत्तर प्रदेश के अधिकारी गंगा, उत्तर प्रदेश जल निगम समेत गंगा के किनारे कितनी औद्योगिक इकाइयाँ हैं तथा वे कितना दूषित कचरा एवं पानी गंगा में फेंकते हैं, इसकी सही जानकारी नहीं दे सके। यह खतरे की घंटी है। पूरे विवरण में जाना अनावश्यक है। केंद्रीय सरकार को सतर्कता के साथ इस मामले को देखना है। उ.प्र. सरकार का तो सीधा दायित्व है ही। गंगा के बिना उत्तर प्रदेश का कोई अस्तित्व ही नहीं है। उसे इस विषय को रुटीन रूप में नहीं लेना चाहिए। आशा है, उ.प्र. के मुख्यमंत्री इस ओर ध्यान देंगे।

२०१६ का वर्ष समाप्त हो रहा है। नूतन वर्ष का स्वागत करने को विश्व तैयार है। हम चाहेंगे कि अगले वर्ष में केंद्र सरकार और राज्य सरकारें मिलकर यह प्रण करें कि वे बालक और बालिकाओं के कुपोषण की समस्या का हल निकालेंगी। शर्म आती है, जब कुपोषण की तसवीरें हम देखते हैं। भूख से मरनेवाले बालक और बालिकाओं की संख्या भी हमारे देश में सबसे अधिक है। २०१७ के लिए भारत का संकल्प होना चाहिए कि देश के किसी क्षेत्र में हम बालक-बालिकाओं को, जो देश का भविष्य हैं, कुपोषण का शिकार नहीं होने देंगे।

त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

(त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी)

मंदिर की देहरी

● शंकरदयाल सिंह

साहित्यकार-राजनीतिज्ञ शंकर दयाल सिंह सन् १९७१ से १९७७ तक लोकसभा के तथा सन् १९९० से १९९५ तक राज्यसभा के सदस्य रहे थे। राज्यसभा के सदस्य रहते हुए ही २६ नवंबर, १९९५ को पटना से टुंडला के रास्ते ट्रेन में ही उनका निधन हो गया। साहित्य और राजनीति के बीच उन जैसा सेतु विरला होता है। साहित्य मनीषी अज्ञेय तो उन्हें हिंदी का 'फील्ड मार्शल' ही बुलाते थे। राजनीति को संस्कारशील बनाने और साहित्य को बलवती करने के लिए ही उन्होंने राजनीति के कीचड़ में रहना स्वीकार किया था। वे राष्ट्रभाषा के जितने बड़े हिमायती थे, उतने ही बड़े पक्षधर वे जनभाषा के भी थे। उनकी तीस से अधिक पुस्तकें उनकी रचनाधर्मिता का मुखर प्रमाण हैं। इन पुस्तकों में उनके यात्रा-वृत्तांत, व्यक्ति संस्मरण, निर्बंध निबंध, सामयिक विचार, कहानियाँ और यहाँ तक कि कविताएँ भी—या यों कहें कि उनका पूरा रचना-संसार सहेजा हुआ है।

दंडवत् देते-देते महादे की छाती छिल आई थी, लेकिन उसके जीवन का यह क्रम था, जिसे वह किसी प्रकार तोड़ना नहीं चाहता था। आज बीस वर्षों से लगातार हर चैत और कार्तिक में पड़नेवाले छठ व्रत के समय वह देव के मेले में आता, भोर का तारा आकाश में देखकर वह सूर्यकुंड में स्नान कर गीली धोती पहने कुंड की सीढ़ियों से ही दंडवत् देना शुरू करता और सूर्य मंदिर की देहरी पर जाकर, भीड़ से अलग हटकर आधा घंटे के करीब आँखें बंद किए ध्यानमग्न भगवान् भास्कर को समर्पित वाक्य गुनगुनाता रहता और फिर हर मूर्ति, सीढ़ी, दरवाजे को मस्तक नवाता, हर घड़ी-घंटे को बजाकर फिर किसी कुएँ पर जाकर स्नान करता।

पिछले बीस वर्षों से उसके जीवन के इन क्रमों में कभी कोई व्यवधान नहीं आया था और उसका मानना था कि बीस साल की उम्र से, जब से उसने छठ के समय से भगवान् भास्कर को दंडवत् देना शुरू किया, सूर्यकुंड में स्नान और सूर्य-मंदिर में दर्शन प्रारंभ किया, तभी से उसके जीवन का स्वर्णिम-विहान शुरू हुआ। बुधनी-सी पत्नी मिली, दो बैलों की खेती शुरू हो गई, सोने-सा लड़का पैदा हुआ, जिसका नाम पंडितजी के अनुसार उसने भास्कर रखा। दूसरे किसानों के खेतों में जहाँ पानी नहीं निकलता था, उसके खेतों में तीन पोरसे में ही लबालब पानी निकल आया और सालों भर फसल लहलहाने लगी। वह सोचता था कि यह सब सूर्य भगवान् की ही कृपा है।

भास्कर जब बड़ा हुआ और उसने बगल के कस्बे के स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास की तो महादे ने उसकी पढ़ाई आगे जारी रखने के लिए पटना में नाम लिखवाया। गाँव के दूसरे बाबू भइयों के लड़कों से भास्कर के 'जिट' में कोई कमी न आए, इसलिए उसने गाँव के महाजन से कर्ज लेकर घड़ी, साइकिल और ट्रांजिस्टर खरीदकर दिया, टेरेलिन की कमीज और बुश्शर्ट सिलवाई और बेटे को दो सौ रुपए महीने का खर्च भी भेजना शुरू किया। उसके शरीर में बाप का एक ऐसा दिल था, जो धड़क-धड़ककर कह रहा था कि इस शरीर का खून और मांस बेचकर भी वह भास्कर को पढ़ाता रहेगा और बड़े बाबुओं के लड़कों की पंक्ति में उसे बैठाएगा और एक बार किसी ऊँची कुरसी पर, जिस पर जज, कलक्टर, एस.डी.ओ. या प्रखंड का बी.डी.ओ. बैठता है या पुलिस का बड़ा हाकिम बैठता है, बैठा देखेगा और तब भगवान् को लाख-लाख धन्यवाद देकर अपनी आँखें मूँद लेगा।

शहर से जब बेटे की पहली चिट्ठी आई तो वह फूला नहीं समाया। अपने फेंटे में बाँधकर वह हफ्तों इधर-उधर घूमता रहा, जिस-तिस से उसे पढ़वाता रहा और जैसा कि बेटे ने लिखा था, एक और बुश्शर्ट तथा पैंट बनवाने के लिए, उसने गाँव के महाजन से, जिससे पहले ही पाँच सौ रुपए कर्ज ले चुका था, दो सौ रुपए और लेकर तुरंत ही मनीऑर्डर किया।

कार्तिक में छठ के समय उसने दंडवत् देते समय भगवान् को फिर लाख-लाख धन्यवाद दिया और अगहन-पूस में भगवान् ने उस पर अपना आशीर्वाद और उड़ेला, इस रूप में कि जिन खेतों में पिछली बार उसे डेढ़ सौ मन धान हुआ था, इस बार पूरे तीन सौ मन पैदावार हुई, क्योंकि उसने इस बार उन्नत किस्म का बीज ब्लॉक से लिया था तथा कृषि पदाधिकारी ने फर्टिलाइजर वालों को कहकर उसके खेतों को नुमायशी खेत बनवा दिया था, उसमें मुफ्त में पूरी खाद डलवा दी थी। और भगवान् भी जब देते हैं तो छप्पर फाड़कर—इस बार गल्ले का भाव भी आसमान को छू रहा था। पिछले साल चावल का भाव साठ-सत्तर रुपए मन तक चला गया था तो किसानों के चेहरों पर नई रौनक आ गई थी, लेकिन इस बार तो शुरू में ही नया चावल पचहत्तर-अस्सी रुपए मन बिक रहा था।

महादे ने मन-ही-मन हिसाब लगाया—एक सौ मन खेहन-बिहन के लिए रखकर बाकी धान या चावल बेच देने पर महाजन का कर्ज लौटे जा रहा था, भास्कर का साल भर का खर्च पूरा हो जा रहा था तथा दो

बैलों का और लेना आवश्यक था, वह समस्या भी हल हो रही थी।

□

सबके बावजूद शहर और गाँव दो इकाई हैं। शहर जहाँ चकाचौंध है, रेशमी डोरे हैं, फूल हैं, पार्क हैं, चमचमाती सड़कें हैं, सिर उठाए बड़े-बड़े मकान एवं भवन हैं, होटल हैं, बार हैं, बड़ी-बड़ी दुकानें हैं, सजी-सँवरी मृदुभाषियाँ हैं, चमचमाती कारें हैं और मोहक वातावरण है, वहीं आज भी भारत के गाँव किसी टूटे हुए जीर्ण-शीर्ण मंदिर के भग्नावशेष की तरह मेंड़ों, खपरैलों, घास-फूँस की झोंपड़ियों, कीच-कादों-कोहवर-कोयल-कौआ-खैनी-बीड़ी-अँगोछा-अँगिया-करती-बिछुआ-हँसुली और चोपे हुए तेलों की धार के बीच मोटी माँग से होकर गुजरती पाव भर सिंदूरी रेखा के समान ही बेतरतीब हैं।

शहर, जो किसी नागिन की लट और साँप की फुफकार के जीवित प्रतिबिंब हैं और भारत के गाँव परंपरा-बोधों के अंदर जकड़े आर्थिक टूटन और कसमसाहट में साँस लेते सत्य-ज्ञान। पहले की पीड़ा अशेष कामना है और दूसरे का दर्द अगाध विश्वास।

शहर अमलतास का गदराया गुच्छा है तो देहात सेमल का फूल, जो मुरझाकर बिखर रहा है। एक की अन्विति रंग-रूपों और मधु-सपनों का अनगिनत ज्वार है तो दूसरे की व्याप्ति क्षीर-सागर से प्राप्त विष का पान।

आज भारत नदी के इन दोनों किनारों के बीच से अपनी नाव खे रहा है और प्रयास कर रहा है समन्वय या संतुलन का, परंतु विषमता की खाई इतनी बड़ी है जो सुलझाने की जिज्ञासा में समस्याओं को और उलझा देती है।

इसलिए गाँव का आदमी जब पहली बार शहर में पाँव रखता है तो उसके दिल की धड़कन तेज हो जाती है, मोटर का हॉर्न सुनकर वह चौंक जाता है, किसी आदमी ने डाँट दिया तो बेहोश होने लगता है तथा किसी शो-केस में सजाई गई औरत के बुत को असली समझकर आँखें लड़ाने की कोशिश करने लगता है और यह सोचता है कि कैसी बेशरम औरत है, जो पलक भी नहीं झपझपाती।

लेकिन वही आदमी शहर में चाहे कोई काम करने आए या पढ़ने आए, जब अपने गाँव में कुछ दिनों के बाद वापस आता है तो शहर उसके ऊपर इस प्रकार सवार हो जाता है कि हर गाँववाला उसे 'मुच्छड़' लगने लगता है तथा गाँव का यह माहौल भयानक, बीभत्स, पिछड़ा, दकियानूस एवं असांस्कृतिक।

□

पटना से छह महीने बाद भास्कर जब अपने गाँव कंचनपुर पहुँचा तो यह कहना कठिन था कि उसके लिए गाँव बदल गया था या गाँव के लिए वह बदल गया था। पैंट और बुश्शर्ट उसके शरीर पर वैसे ही चिपक गए थे जैसे गोंद के दोनों हिस्सों पर पानी लग जाने से टिकटें चिपक जाती हैं। गाँव के हर गली-कूचे को देखकर उसे उबकाई आती; बराबर भिन्नाता—कितने गंदे और बदतमीज और गए-गुजरे हैं ये लोग कि न रहना आता है, न पहनना और न उठना-बैठना।

''बप्पा, बैलों को जहाँ बाँधते हो, वहीं चारपाई भी क्यों डाल देते हो? और जिस हाथ से उन्हें सानी देते हो उसी हाथ से खैनी भी खाते हो। छिह-छिह!'' जब-तब भास्कर अपने बाप को झिड़क देता। और महादे की समझ में बात नहीं आती कि इसमें भला क्या बुरा हो गया? आखिर वर्षों से यही क्रम तो चला आ रहा है और भास्कर को भी तो उसने ऐसे में ही बड़ा किया है।

एक दिन भास्कर ने अपने थाल की रोटी माँ के सामने उठाकर फेंक दी और माँ के ऊपर बरसा, ''जिस हाथ से उपले थापती हो, गोबर निकालती हो, उसी हाथ से आटा भी गूँधती हो! रोटी में गोबर की गंध है, मैं ऐसी रोटी नहीं खाता। मेरा तो जी नहीं करता है कि इस गंदगी भरे घर में एक मिनट भी रहूँ।''

और बुधनी अपने बेटे को फटी आँखों देखती रह गई। पैदा हुआ उसी दिन से इसी तरह से खिला-पिलाकर बड़ा किया, पता नहीं आज इसे हो क्या गया है?

□

आश्विन के बाद कार्तिक आया और छठ-पूजा धूम फिर शुरू हुई। देव मेले की तैयारी में सारा इलाका लग गया। आस-पास के गाँवों से ही नहीं, दूर-दराज से बैलगाड़ियों में, ट्रैक्टरों पर, बसों में, टैक्सियों में भर-भरकर 'परबइता' आने लगे। 'उपास' के दिन भारी रेला-पेला, लाखों की भीड़, तिल रखने को जगह नहीं, सिर पर 'दउरी' और 'सूप' लिये अर्ग दिलवाने जा रहे मर्द और नई साड़ी पहने, नाक तक सिंदूर लगाए, छठ मैया के गीत गाती औरतें।

इन्हीं लाखों की भीड़ में एक महादे भी है—पस्त-त्रस्त-हारा-थका-चूर-चूर महादे, जिसने विगत इक्कीस-बाईस सालों की तरह आज भी दंडवत् दिया है, व्रत रखा है, सूर्य-मंदिर की देहरी पर जाकर माथा नवाया है, लेकिन प्रार्थना कुछ और ही की है।

उसकी आँखों में न रोशनी है, न हृदय में किसी प्रकार का उत्साह, न भावनाओं का ज्वार, न किसी प्रकार की लालसा। मंदिर के कोने में 'गुलायची' के पेड़ की जड़ के पास बैठा हुआ मंदिर के स्वर्ण-कलश की ओर निहार रहा है और बार-बार सोचता है कि 'सूर्यकुंड' में अगर डूबने भर पानी होता तो वह अपनी इहलीला आज ही समाप्त कर देता।

पैंतालीस-पचास साल का महादे सहसा महसूस करता है कि वह सत्तर-अस्सी साल का बूढ़ा हो गया है। उसकी कमर झुक गई है, आँखों की रोशनी चली गई है और वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता है। उसकी गीली धोती, जिसे पहनकर उसने दंडवत् दी है, बालुओं, कीचड़ों और खुरदरी सड़क की गिट्टियों में मिलकर रीठ आई है और वह गीली धोती बदन से सटकर 'लीज-लीज' हो गई है।

भगवान् ने उसकी सारी बातें अब तक मानीं, उसे अच्छी पत्नी दी, शादी के दो साल के अंदर बच्चा दिया, हल-बैल दिए, खेती-गृहस्थी दी, अच्छा स्वास्थ्य दिया और जब भी महादे ने जिस चीज की कामना की, वह उसे मिली। लेकिन आज भगवान् से उसने कुछ और ही माँगा है। क्या भगवान् आज उसे निराश कर देंगे?

□

भास्कर के शहरी-जीवन का यह चौथा वर्ष था और उसके कॉलेज की पढ़ाई का भी चौथा साल। इस बार दशहरे की छुट्टियों में भास्कर जब घर आया तो वह बिल्कुल बदला हुआ भास्कर था। माथे पर झूलते हुए लंबे-लंबे बाल, जैसे शादी-ब्याह में महादे ने नचनियों के सिर पर देखे थे, पिता के सामने ही सिगरेट पीकर 'फक-फक' धुएँ के छल्ले छोड़ना, जैसे बड़े-बड़े साहबों के मुँह से महादे ने देखा था। रात में बक्से से बोतल निकालकर गटागट कुछ पी जाना और फिर अनाप-शनाप बकना।

और बात यहीं रुकती तो भी गनीमत थी, लेकिन उसने अपने माँ-बाप से इस बार एक हजार रुपयों की फरमाइश की थी और जब महादे ने यह कहा कि इतना रुपया एक साथ वह कहाँ से लाएगा, इस बार तो पैदावार की हालत भी खराब है, तो वह गरजा था—''मैं यह सबकुछ भी सुनने को तैयार नहीं हूँ, तुम लोगों ने मेरा एडमीशन पटना में क्यों कराया था जब पूरे पैसे नहीं दे सकते? पैदा ही क्यों किया था, जब सँभालने की ताकत नहीं थी? पढ़ाने का मंसूबा क्यों बाँधा था जब गाँठ में कूवत नहीं थी?

''बूढ़े, सुन लो आँख खोलकर, मैं एक हजार रुपए लिये घर से नहीं जाऊँगा। और परसों तक मुझे यह पैसा चाहिए—चाहे तुम बैल बेचो, खेत बेचो, मकान बेचो या अपने आपको बेचो!''

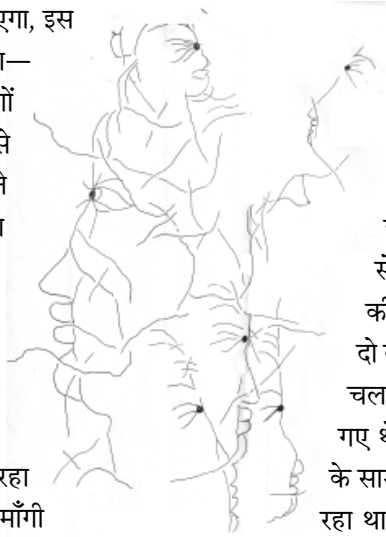

यह बोतल का लाल रंग बेटे के मुँह से बोल रहा था, जिस बेटे के लिए महादे ने भगवान् से वर्षों मिन्नतें माँगी थीं, एक शाम खाकर, पैसे जुगाड़ कर भेजता रहा था, महाजन के सामने गिड़गिड़ाकर, चिरौरी-विनती करे कर्ज लेकर भी कभी दो सौ, कभी तीन सौ रुपए महीने भेजता रहा था, खद के शरीर पर कभी 'मिरजई' नहीं हो सकी थी, लेकिन बेटे को टेरेलिन की बुश्शर्ट और पैंट बनवाता रहा था, बेटे के लिए बड़ी-बड़ी, ऊँची-ऊँची कुरसियों के ख्वाब देखे थे—वही इकलौता बेटा किसी मुगल के समान उसके कलेजे पर सवार था—'एक हजार रुपया चाहिए परसों तक, नहीं तो घर-मकान में आग लगा दूँगा!'

माँ से यह अपमान कि बेटा अपने बाप को इस प्रकार बूढ़ा कहे सहा न गया और वह बीच में ही बोल पड़ी, ''भास्कर, जरा अपने बाप का तो खयाल किया कर, शरीर चिंता से टूट रहा है, किस-किस प्रकार से तुझे रुपया भेजा जाता है और तुझे इस प्रकार बोलते शरम नहीं आती।''

बुधनी के मुँह से यह शब्द निकलना था कि भास्कर ने अपने पाँव से चप्पल निकाली और अपनी माँ पर चला दी, ''चुप रह, बुढ़िया! मैं एक भी बात तुम लोगों की नहीं सुन सकता।''

और उसके बाद घर में महाभारत छिड़ गया था। महादे को लगा था कि वह अपने बेटे का खून ले लेगा, ढलती उमर थी, लेकिन देहात का खाया-कमाया शरीर था। उसने भास्कर को पटककर उसका गला दबोचा, ''हरामजादे, आज मैं तेरा खून कर दूँगा। जिस माँ की कोख से पैदा हुआ, उसी से इस तरह बातें करता है।'' महादे के दिल में चार साल से बसा गुस्सा एक साथ बाहर आ गया था।

भास्कर की आँखें निकलने लगीं और वह 'औ-औ' करने लगा। बोतल का लाल रंग उड़ता नजर आया। बुधनी लपकी, उसने भरपूर ताकत से महादे की बाँह को झकझोरा, ''भास्कर के बप्पा, ऐसा न करो, तुम्हें मेरी कसम है। जिस समय इसे पेट में लेकर नौ महीने बिताए थे, मैंने सारा दरद सहा था। इसकी बातें भी इसी प्रकार सह लूँगी। छोड़ दो, भास्कर के बप्पा, छोड़ दो।''

बुढ़िया का करुण विलाप महादे को कँपा गया और उसका हाथ ढीला हो गया, लेकिन उसका दिल ढीला न हो सका। वह चिल्लाया, ''कमीने, निकल जा अभी इसी समय इस घर से, नहीं तो तेरी हड्डी-पसली एक कर दूँगा।'' बाहर दरवाजे की ओर उसने इशारा किया और ऐसी परिस्थिति में भास्कर के लिए चारा ही क्या था। वह घर से बाहर हो गया, लेकिन उसके थोड़ी ही देर बाद महादे के मकान के पास पूरा गाँव जमा था। विचित्र भाग-दौड़ मची थी। किसी के हाथ में बाल्टी थी, किसी के हाथ में लोटा, तो कोई डंडे से खपरैल, छप्पर को पीटे चला जा रहा था—पश्चिम की ओर से मकान में आग लगी थी। चार कमरों के घर में दो कमरे बिल्कुल स्वाहा हो गए थे, दो को बचाने का प्रयास चल रहा था। भाग-दौड़ में दो बैल और एक बछिया झुलस गए थे, चावल की कोठी से बदबू फूट रही थी और मकान के सामने खड़ा महादे अपलक नयनों से इस 'स्वाहा' को देख रहा था। बार-बार उसका जी करता कि वह चिल्लाकर कहे कि छोड़ दो, मत बुझाओ इस आग को—लेकिन उसके मुँह से बोली नहीं निकलती थी।

आग जब शांत हुई तो लोगों की भीड़ ने उसे घेर लिया, ''कुछ पता चला, किसने आग लगाई, कैसे आग लगी?'' लोग पूछ रहे थे।

''कान खोलकर सुन लो, मैंने स्वयं इन्हीं हाथों से अपने घर में आग लगाई थी!'' चुप्पी तोड़ता हुआ महादे गरजा, ''मैं पूछता हूँ, तुम सब क्यों आए आग बुझाने? मैंने तो किसी को बुलाया नहीं था।''

और भीड़ धीरे-धीरे छँट गई। कोई बोल रहा था, ''भले का जमाना नहीं है, जिसके लिए चोरी की, वही कहे चोर।'' तो कोई यह कहता हुआ जा रहा था, ''महादे का दिमाग खराब हो गया है!''

दूसरे दिन गाँववालों को यह भी पता चला कि आग की लपटों में बुधनी भी फँस गई थी, किसी प्रकार बाहर निकली और चार बैलों में से दो बैल झुलसकर मर गए। महादे का कहीं पता नहीं था, चार दिन बाद ही छठ का व्रत था, शायद वह देव की ओर चला गया था।

देव का सूर्य-मंदिर जिसके निर्माण, जिसके काल, जिसकी तिथि के संबंध में कितनी किंवदंतियाँ प्रसिद्ध हैं, आसमान की ओर सिर उठाए खड़ा था। इसके संबंध में यह कहा जाता है कि बावन पोरसे के इस मंदिर का निर्माण स्वयं विश्वकर्मा ने अपने हाथों से किया।

तिथि, काल, निर्माण—कोई भी हो, बिहार में कला और शिल्प की दृष्टि से यह सूर्य-मंदिर अद्वितीय है। यों तो हर रविवार को यहाँ हजारों

की संख्या में दर्शनार्थी आते हैं, लेकिन सूर्य-पूजा यानी 'छठ-व्रत' जिसकी बिहार में सबसे अधिक महत्ता है, उस समय दर्शनार्थियों की संख्या लाखों में हो जाती है।

पूरे इलाके में इस मंदिर की बड़ी प्रसिद्धि है और दुखी मनुष्य भगवान् की देहरी पर बड़ी आशा लेकर आता है।

महादे हिला, जैसे कोई शव या प्रेत-छाया हिले। बढ़ी दाढ़ी, खिचड़ी बने बाल, कादो-कीचड़ से सना पूरा शरीर तथा शरीर से तिलचट्टे के समान सटी धोती। वह मंदिर की देहरी तक बहुत मुश्किल से डगमगाता हुआ पहुँचा और दंडवत् की मुद्रा में गिर पड़ा और उसके मुँह से अस्पष्ट शब्द निकले—''हे भगवान्! अगले जीवन में निरवंश रखना, लेकिन ऐसा बेटा मत देना।''

लोगों की भीड़ आती रही; जाती रही, लेकिन महादे वैसे ही पड़ा रहा। अंत में कुछ लोगों ने उसे उठाने की कोशिश की; लेकिन वह इसके पहले ही उठ चुका था।

महादे उठ गया, लेकिन छोड़ गया सदा के लिए एक सवाल—शिक्षा और संस्कृति की धरती और प्रबुद्ध केंद्र क्या कटे या टूटे अभिषेक की सृष्टि तो नहीं कर रहे हैं, जहाँ एक नहीं, कई भास्कर रोज-ब-रोज कितने महादेवों का खून पी रहे हैं और छोड़ रहे हैं—आस्थाहीनता का ऐसा प्रश्न, जिसका उत्तर ढूँढ़े नहीं मिलता।

कविता

नई दिशाओं की ओर

● सुनीता चौधरी

वक्त की गुनगुनाहट

तब से वक्त गुनगुना रहा
वही मधुर संगीत युगों से
जब से झिलमिलाती है
रोशनी सुदूर सागर के तट पर
खड़ा अजनबी कोई
चहलकदमी करता
लहरों पर दृष्टि टिकाए अविराम
गूँज उठती है हृदय की ताल
संग लौटती प्रतिध्वनि
स्वर्णिम लालिमा की ओट से तर
डूबते सूरज को देखता हुआ
चला जा रहा निरंतर अपने पथ पर।

माटी का प्रेम

बगावत कर लेता है आटा भी
कभी-कभी छलनी से
पर मेरे गाँव की माटी
कतई ठहरती नहीं छलनी में
बिछोह मरुस्थल से सह नहीं पाती
घुल-मिल जाती उसी में हर बार।

स्त्री की चाह

हर उम्र में औरों के लिए
लड़ती आई मैं
अब अपने लिए लड़ना चाहती हूँ
अपना हर पल हर क्षण
औरों को दिया
अब अपने लिए भी जीना चाहती हूँ
स्वार्थी न कहो मुझे
अब अपनी रिहाई चाहती हूँ
खुद के लिए भी
कुछ कर गुजरना चाहती हूँ ।

गाँव अब भी बाकी है

भोर ने अपना आँचल फहराया
सूरज की किरणों ने धरती को गरमाया
मोर की पीहू-पीहू से मन हर्षाया
मुरगों की बाँग ने नींद से उठाया
मंदिर की घंटियों से दिल ने सुकून पाया
चरवाहों की टोलियाँ निकल पड़ीं
नई दिशाओं की ओर
कौन कहता है कि गाँव गाँव नहीं रहे
अभी भी गाँव की मिट्टी
सुगंध से भरपूर है
रातों में जुगनुओं की चमचमाहट
दूर तक फैली उसकी खामोशी
फागुन में फाग के गीतों की गूँज
त्योहारों में एक-दूसरे के घर बैठकें
करकर उनका आनंद लेना
अभी भी गाँवों के वातावरण में
शुद्धता घुली-बसी हुई है
टीलों की ठंडी मिट्टी का मजा
रात की सनसनाहट
दिन की लू भरी आँधियाँ
तन-मन को जला देनेवाली गरमी
अभी भी बहुत बाकी है
गाँव की बालू रेत में सोंधी खुशबू।

अपरिहार्य दुःख

क्या परिभाषा दुःख की
कहाँ से उत्पन्न हुआ यह शब्द
कोई जानता है? कोई कहे
कठिनाइयों का ढेर लगे
तो वह दुःख है
सुख में पड़ी बाधा को
दुःख कहते हैं
शांत पानी में कंकड़ फेंकने पर
हुई हलचल को भी
दुःख का ही रूप कहा जाता है।
पर यह भी सत्य है
गर्भवती स्त्री के दुःखते शरीर से
सुख का आगमन होता है
दुःख कोई आश्चर्यजनक शब्द नहीं
दुःख की भाषा सुख जानता है
परम सुख में भी बसा रहता है
अपरिहार्य दुःख।

'सुविवेका'
६५, श्याम नगर
साईं धाम मंदिर के पास, पाल रोड
जोधपुर-३४२००८ (राजस्थान)

पुरस्कार

● विद्या विंदु सिंह

वह गला फाड़-फाड़कर चीख रहा था, ''बनवा लो, टूटा-फूटा बरतन बनवा लो।''

अपने-अपने घरों की खिड़कियों और दरवाजों से कुछ आकृतियाँ प्रकट हुईं। कुछ आवाजें उभरीं—

''ऐ बरतन वाले! जरा ठहरो।''

उसके चेहरे पर राहत झलक आई। आज सुबह से एक भी काम नहीं मिला था। सुरसतिया बुखार में तप रही थी। उसको दवा चाहिए। माई की खाँसी जोर पकड़ रही है। ठंड आ रही है, उसके लिए कुछ ओढ़ना, कथरी, झुलवा का जुगाड़ भी करना है। पारसाल मरते-मरते बची है। यह मुई ठंड आती है तो अपने साथ ढेर सारे सोच भी गरीब मनई के लिए लाती है और नोहरी कह रही थी कि घर में अनाज बिल्कुल नहीं है। लकड़ी-गोइंठा भी नहीं है।

कंधे का झोला रखकर बैठ गया। बैठते हुए लगा, पिंडलियाँ बहुत थक गई हैं। चलते रहो तो पता ही नहीं चलता कि थकान कितनी है। अब तो प्यास-भूख भी लग आई है।

'बँगला तो काफी अच्छा है। बड़े लोग हैं। कुकुर, बिलार, खरगोश आदि पाले हैं।' उसकी आँखों में एक चमक आ गई और साथ ही भूख भी और जाग गई। माँगूँ, शायद एकाध रोटी पड़ी हो।

'पर नहीं, अभी नहीं। काम कर लूँ, फिर कहूँगा कि बहूजी, पानी पिला दीजिए। सब बड़े मनई कठोर नहीं होते। कितनों में तो बड़ी दया-माया होती है। हो क्यों नहीं, भगवान् का दिया सब भरा है।

'अरे, बहूजी आ रही हैं। कैसे सरग की अप्सरा की नाई रूप है। घर मा यतना बढ़िया कपड़ा पहिने है कि नजर बिछल जाए।'

ठीक इसी समय चीकट चिथड़ा बनी धोती पहने हुए अपनी औरत की आकृति आँखों में घूम गई।

सुंदर तो वह भी कम नहीं थी, पर गरीबी की मार सबसे पहले चेहरे पर ही पड़ती है।

सोच की धारा फिर मुड़ी कोठी वाली बहूजी की ओर, 'जैसा रूप है वैसा ही सुभाव भी तो होगा।'

जानी-मानी साहित्यकार। कुल ६८ कृतियाँ, जिनमें छह बाल कहानी संग्रह, आठ कविता संग्रह, उन्नीस कृतियाँ लोकसाहित्य पर, पाँच नाटक, आठ बाल साहित्य (नवसाक्षर), तीन लघु उपन्यास, व्याकरण पुस्तकें, आठ संपादित ग्रंथ तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं एवं ग्रंथों में २००० से अधिक रचनाएँ प्रकाशित एवं संकलित।

छोटे-बड़े दर्जनों पुरस्कारों से सम्मानित।

गृह-स्वामिनी ने पीछे मुड़कर नौकर को आवाज दी, ''रामेश्वर, बालटी ले आओ।''

'आहा! आवाज भी कितनी मधुर है और नौकरों के साथ व्यवहार भी अच्छा दिखता है। कैसे कायदे से 'रामेश्वर' कह रही हैं और कोई होता तो कहता रमेसर या रमेसुरा।

'अब मेरा ही देखो, नाम तो यज्ञेश्वर है, पर कोई जग्गू कहता है, कोई जगेसर तो कोई जगेसरा। अरे, मैं खुद भी तो नहीं जानता था कि मेरा असली नाम क्या है। मैं तो जगेसर को ही सही समझता था, परंतु वकील बाबू के बड़े लड़के जोगिंदर बाबू ही तो एक दिन हँसते हुए बोले थे, अरे जगेसर, तुम्हारे और मेरे नाम को लोगों ने बिगाड़ दिया है, तुम यज्ञेश्वर से जग्गू, जगेसर बन गए और मैं योगेंद्र से जोगिंदर।'

बहूजी की आवाज से वह फिर सचेत हुआ, ''कितने पैसे लोगे?''

उसके मन में आया, अपनी व्यावसायिक आवाज में कह दे, '२० रुपए होंगे। मालकिन, केवल राँगा से काम नहीं चलेगा, नीचे पेंदा छन्नी हो गया है। टिन का चिप्पक लगाकर ऊपर से राँगा धर दूँगा।'

पर रुपए वाली बात के अलावा और बाकी सब कह गया, इतना और जोड़कर, ''जो वाजिब समझें, दे दीजिएगा।''

पतली-पतली मुलायम गेहूँ की रोटियाँ और खुशबूदार मसालेवाली सब्जी के चटपटे स्वाद की कल्पना उसकी जीभ गीली कर रही थी।

''नहीं भाई, तुम पहले बता दो, नहीं तो बाद में तुम लोग झिकझिक करते हो।''

''अरे बहूजी, आप तो खुद समझदार हैं, मेहनत समुझि के दे दीजिएगा।''

सहसा उसे लगा कि कहीं बाद में सौदा पटाने में मेमसाहब का मिजाज बिगड़ न जाए, इसीलिए पहले ही पानी पीने को माँग लूँ।

उसने बालटी अपनी ओर सरकाते हुए कह ही दिया, ''बहूजी, बड़ी तेज प्यास लगी है, पानी पिलवा दीजिए।''

बहूजी की कृपा बरसाती हुई आवाज फिर सुनाई दी, ''अरे रामेश्वर, जरा बालटी वाले को पानी पिला दो।''

अब उसकी उत्कंठा रामेश्वर के उस हाथ की ओर केंद्रित हो उठी, जिसमें वह केवल एक लोटा पानी लेकर आ रहा था। वह उदास हो गया।

'क्या बेहया बनकर रोटी माँग लूँ? आँतें चीख रही थीं। हाँ-हाँ, माँग ले, पर विवेक डाँट रहा था, क्या तू भिखारी है रे, मेहनत करके खाता है। फिर कहीं तू जीभ के मुलाहिजे में अपनी मजूरी न कम अँकवा ले। फिर सुरसतिया की दवाई, अनाज, लकड़ी-गोइंठा, माई के कपड़े···'

पर अभी तो और ग्राहक भी आएँगे, क्योंकि आवाज तो दो-तीन खिड़कियों से आई थी। हाँ, बालटी और बक्सों की खटर-पटर हो तो रही है, 'अरे, ये एक बहिनजी तो बालटी लेकर इधर ही आ रही हैं, दूसरी अपने दरवाजे पर निकालकर रख रही है।

'अब वक्त बेकार करना ठीक नहीं। अभी दो मील चलना पड़ेगा। कहीं चक्कर खाकर गिर गया तो कौन सी दवाई, अनाज, कपड़े आ जाएँगे। जान है तो जहान है।'

उसने रोटी माँगने के लिए हिम्मत बटोरी, ''बहूजी! सरकार! बहुत जोर की भूख लगी है। खाली पेट में पानी गोली की माफिक लगेगा। एकाध रोटी बची हो तो···''

बहूजी ने गंभीर आवाज में सिर हिलाकर आश्वासन देते हुए रामेश्वर से कहा, ''रामेश्वर, देखो कुछ बचा हो तो लेते आओ।''

रामेश्वर दो रोटी पर सब्जी के कतरे रखकर ले आया।

जग्गू की भूख उस स्वाद को पाकर लगा कि और जग गई। पर अब और माँगना तो बेहयाई ही होगी। उसने पानी से अतृप्त पेट को तृप्त करने की कोशिश की।

गमछे से हाथ-मुँह पोंछकर जग्गू काम में जुट गया। बहूजी ने भी पैसे के लिए मोल-भाव नहीं किया।

जग्गू ने सोचा कि सुभाव अच्छा है, स्वयं ही दे देंगी। बड़े लोगों से छोटी बात न करो तो वे खुश रहते हैं।

अब तक अड़ोस-पड़ोस की कई बालटियाँ और बक्से जमा हो गए थे। जग्गू खुश था। बोहनी अच्छे लोगों की हो जाए तो दिनभर कमाई ही कमाई है।

फिर सोचने लगा कि कितना देंगी बहूजी। २० रुपए मैं माँगता तो बात पटते-पटते १५ रुपए पर आ ही जाती। अब तो अपने मन से जो देंगी, वही लेना पड़ेगा। उन्होंने पहले ही कह दिया है कि बाद में झिक-झिक करते हो तुम लोग।

अब कुछ-कुछ पछताने लगा कि दो रोटी के पीछे देखो कितना मुलाहिजा करना पड़े।

उसे सुरसतिया की कराह सुनाई देने लगी, 'बापू, कपार फटा जात है।'

नोहरी की बड़बड़ाहट भी कानों में गूँज रही है, 'जब कमाई क बूता नाय रहा तौ का करे क मेहरी लरिका कै लिह्या (जब कमाने की सामर्थ्य नहीं थी तो औरत-बच्चे क्यों कर लिए)।'

वह उसके संकोची स्वभाव को भी बार-बार कोसती है, 'तुम्है सरम लागथै भाव-ताव करै मा। जैसे सारी दुनिया दया-माया के मारे तोहरे हाथे मां खजाना सौंपि देई। अरे चंदुआ तोहँसे कम काम करथै मुला साँझ कै डेढ़ सौ से कम कब्बो नाय लावत। ओकर मेहरी लरिका हमरी नाय झंखतै नाय। अरे ऊ तो बालटी बक्सा बनावत हैं तौ वह में कौनो ढील जरूर छोड़ि देत हैं, जौने फिर बनावै क बोलावा जाए। और एक ठू तू हया कि ऐसन पोखता बनउबा कि फिर बजरौ के मारे न टूटै-फूटै।'

(तुम्हें भाव-ताव करने में शर्म लगती है। जैसे कि सारी दुनिया दया करके तुम्हारे हाथ में खजाना सौंप देगी। अरे, चंदुआ तुमसे कम काम करता है, पर कभी भी साँझ को डेढ़ सौ रुपए से कम नहीं लाता। उसकी औरत और बच्चे मेरी तरह झींकते-पछताते नहीं। वह तो बक्सा-बालटी बनाने जाता है तो कोई न कोई ढील जरूर छोड़ देता है, जिससे कि फिर जल्दी टूटे तो फिर बनवाए। पर एक तुम हो कि ऐसा पुख्ता बना दोगे कि वज्र की मार से भी न टूटे।)

मन हुआ, राँगा एक तरफ पतला रख दे। दो महीने तक तो बालटी चल ही जाएगी। फिर आऊँगा, फिर दो रोटी, स्वाद वाली सब्जी और ठंडा पानी। पर नहीं, यह तो धोखा है। चंदुआ दे धोखा, मैं क्यों दूँ? और फिर अन्नदाता को धोखा दूँगा तो वहाँ क्या जवाब दूँगा। बकने दो नोहरी को, जोरू का सुभाव ही चिनचिनहा है।

पर पहले तो ऐसी नहीं थी। बात-बात पर शरमाती थी, पूजा-पाठ, धरम-करम करती थी, भगवान् की दुहाई देती थी, पर जब से बाबू गुजरे, उनके किरिया-करम में उसके गले की चाँदी की हँसुली बिक गई, तब से वह बदल गई।

सुरसतिया के जनम के समय मैंने डरते-डरते 'पछेला' बेचने को कहा तो पहली बार खौखिया उठी थी, 'सरम नाहीं आवत माँगत कै,

एक्कौ सूत गढ़ावै कय बूता नाय। जौन बाय उहौ नोचि खसोटि ल्या। हम्मे सोंठि मसाला के भूखि नाहीं न, पछेला ना देबै।'

(शर्म नहीं आती माँगते। एक भी सूत गढ़ाने की तो सामर्थ्य नहीं। जो है, वह भी नोच-खसोट लो। हमें सोंठ-मसाले की भूख नहीं है, पछेला नहीं दूँगी।)

पर वही नोहरी मेरी बीमारी में अपना सारा कुछ धीरे-धीरे लच्छू सोनार के यहाँ दे आई।

मरा तपेदिक का रोग, कहते हैं, पहले बड़ों को, राजा बाबुओं को होता था पर अब तो गरीबों से उसने दोस्ती कर ली। राजा-प्रजा सबको जब एक बराबर करने की कोशिश है, फिर रोग ही काहे भेदभाव करे। रोग तो ठीक हो गया, पर कमजोरी इतनी छोड़ गया कि चलता हूँ तो चक्कर आते हैं। डॉक्टर कहते हैं कि आराम करो, खूब खाओ-पिओ। गरीब भला आराम भी करे और ठीक से खाए भी, ऐसा कैसे हो सकता है? अरे, रूखी रोटी तो इतनी मशक्कत के बाद मिलती है।

नोहरी जब-जब अलमारी की खाली शीशियों को देखती है तो उसके मुँह से एक आह निकल जाती है। शायद उन शीशी-बोतलों के पीछे उसे अपने जान से प्यारे गहने नजर आ जाते हैं। मैं देखकर भी कुछ नहीं कहता।

बालटी बन गई थी। पर जग्गू उस पर तन्मय भाव से राँगा चढ़ाए जा रहा था।

पड़ोस की बहूजी इन बहूजी से कह रही थीं, ''बड़े मन से बालटी बना रहा है यह बालटीवाला। पिछली बार तो एक आया था, मरा ऐसी बना गया कि पंद्रह दिन भी बालटी नहीं चली।''

जग्गू को लगा कि उसकी ईमानदारी का पुरस्कार उसे मिल गया। अब उन बहूजी के साथ भी कुछ रियायत करनी पड़ेगी। आखिर कितने लोग ऐसे होते हैं, जो खुले दिल से किसी की तारीफ कर सकें।

''लीजिए बहूजी, बालटी बन गई।''

''रामेश्वर, जरा देखो ठीक बनी है?'' बहूजी की इस आवाज से कुछ भीतर ही भीतर टूट गया।

रामेश्वर ने बालटी की परीक्षा की, फिर कहा, ''ठीक है।''

बहूजी ने कहा, ''दस रुपए दे दो, रामेश्वर!'' और उठकर चल दी।

रामेश्वर का दिया हुआ दस का नोट उसकी मुट्ठी में था।

दूसरी बहनजी अपनी तीन बालटियों का हिसाब तीस रुपया बता रही थीं। रेट तय हो चुका था, अब जग्गू कैसे बढ़ा सकता था?

सड़क पर बालटियों और बक्सों का जमाव होता जा रहा था, पर जग्गू की आँखों में अँधेरा छाने लगा था। उसकी साँस और फूलने लगी थी। पिंडलियाँ उकड़ूँ बैठे रहने के कारण दर्द से ऐंठने लगी थीं। कानों में माई की खाँसी, नोहरी के ताने, सुरसतिया की कराहें, दवा की दुकान, कपड़े की दुकान, अनाज मंडी आदि कई दृश्य गड्डमड्ड होने लगे थे।

'श्रीवत्स' ४५, गोखले बिहार मार्ग, लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९३३५९०४९२९

सुधी पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक अथवा बैंक-ड्राफ्ट साहित्य अमृत के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. १११०७३४३९३ अथवा CBIN ०२८०२९७ में साहित्य अमृत के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- पत्रिका न मिलने पर १५ से २० तारीख तक सूचित कर दें, ताकि वह अंक नए अंक के साथ भेजा जा सके।
- आपको अगर साहित्य अमृत का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया कार्यालय दिवस में २ से ५ बजे तक फोन नं. ०११-२३२५७५५५, २३२७६३१६ अथवा sahityaamrit@gmail.com पर इ-मेल करें।

आदिवासी विद्रोह एवं मानगढ़ की शहादत की गौरव-गाथा

● ज्ञान प्रकाश पिलानिया

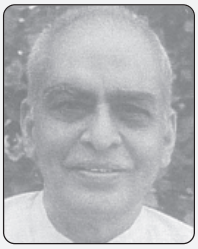

लोकप्रिय राजनेता एवं लेखक। राज्यसभा के सम्मानित सदस्य रहे।

भारत में आदिवासियों के दमन, शोषण और उनके द्वारा किए जाते रहे प्रतिरोध एवं संघर्ष की लंबी परंपरा रही है। आजादी के लिए भारतीय जनता ने अंग्रेजों के विरुद्ध जो लड़ाई लड़ी, उसमें आदिवासी संघर्ष अहम स्थान रखता है। प्रतिरोध की अपनी परंपरा में आदिवासियों ने अपने सभी अंचलों में अंग्रेजी सत्ता (चाहे वह ईस्ट इंडिया कंपनी थी या ब्रिटिश राज) के द्वारा अपने ऊपर हो रहे शोषण और अत्याचारों के विरुद्ध संघर्ष किया, जो १७७०-७१ के पलामू विद्रोह से नागारानी गाईदिल्यू (१९३२-४७) तक जारी रहा। राजपूताने में, ब्रिटिश काल में, अंग्रेजों और रियासती सत्ता ने मिल-जुलकर आदिवासी क्षेत्रों में जो अत्याचार किए, वह इतिहास का एक त्रासद काल-खंड है। इस दौर में आदिवासियों के पुश्तैनी वन-संपदा और जल-जमीन-जंगल के अधिकार से छेड़छाड़ की गई। बेगार की प्रथा का बोझ पहले से चला ही आ रहा था। ऊपर से कृषि-करों में भी भारी वृद्धि कर दी गई। राजे-रजवाड़ों और उनके अधीनस्थ जागीरदारों-हाकिमों व छुटभैया सहायकों के खर्चों का भार काफी सीमा तक आदिवासियों पर पड़ा। इसके विरुद्ध आदिवासियों द्वारा जगह-जगह बगावतें की गईं।

राजस्थान (अतीत का नाम राजपूताना) उन्नीस रियासतों का प्रदेश था, जहाँ तिहरी गुलामी स्थापित थी। फिर भी यह भारत के उन कतिपय राज्यों में से था, जहाँ १८५७ में प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के साथ ही क्रांति की ज्वाला भड़क चुकी थी। राजस्थान में क्रांति की जोत तात्या टोपे के माध्यम से जली। सन् १८५८ में क्रांतिवीर तात्या टोपे ने मध्य प्रदेश की सीमा पार कर बाँसवाड़ा में प्रवेश किया तो भील-आदिवासियों ने उनका साथ दिया; क्योंकि वनवासी वन-संपदा को अपनी संपत्ति मानते थे, जो अंग्रेजी सत्ता (ईस्ट इंडिया कंपनी) से १८१८ की संधि के बाद उनसे छीन ली गई थी। बाँसवाड़ा तात्या टोपे के अधिकार में आ गया। प्रारंभ में ही राजस्थान के लगभग चार हजार आदिवासी उनके साथ हो गए। कई वीर राजपूत जागीरदारों ने भी जगह-जगह उनका खुलकर साथ दिया। किंतु किसी ने उन्हें धोखे से पकड़वा दिया। अंत में अंग्रेजों ने उन्हें फाँसी पर लटका दिया। लेकिन वह खून रंग लाया और अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह भड़कते ही गए। इसी क्रम में वर्तमान राजस्थान के दक्षिणांचल के बाँसवाड़ा में स्थित मानगढ़ पर्वत पर शहादत की अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना १७ नवंबर, १९१३ (मार्गशीर्ष पूर्णिमा) को घटित हुई थी। इस संदर्भ में राजस्थान के बागड़ प्रदेश के भीलों के प्रथम उद्धारक के रूप में लोकप्रिय संन्यासी गोविंद गिरी का नाम इतिहास के स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना अपेक्षित है।

वर्ष १८५८ में डूँगरपुर जिले में बेड़सा गाँव में बंजारा परिवार में गोविंद गिरी का जन्म हुआ, जिन्होंने भीलों में जनजागरण तथा समाज-सुधार के लिए आंदोलन प्रारंभ किया। पत्नी एवं बच्चों के असामयिक निधन ने उन्हें अध्यात्म की ओर आकर्षित किया। वे संन्यासी बन गए। बूँदी-कोटा अखाड़े के साधू राजगिरी से दीक्षा लेकर अपने गाँव में 'धूनी' स्थापित की तथा निशान (ध्वज) आरोपित कर आसपास के भीलों को अध्यात्म की शिक्षा देने लगे। शीघ्र ही इनका आध्यात्मिक पंथ बागड़ के भीलों में लोकप्रिय हो गया। भील सदियों पुराने सामाजिक-धार्मिक बंधन व रूढ़ियों से स्वतंत्र होकर हीन भावना से मुक्त होने लगे। उनके विचारों ने भीलों में सामाजिक जागरूकता का प्रसार किया। भील सोचने लगे कि उनको वर्तमान राजा व ठाकुरों ने दलित बनाया है, जबकि वे (भील) भूमि के स्वामी थे एवं उन्हें पुन: इस पर (भूमि) राज करना चाहिए। कालांतर में गोविंद गिरी आदिवासी चेतना के पुरोधा बन गए।

उल्लेखनीय है कि गोविंद गिरी के धर्म व समाज-सुधार आंदोलन का प्रभाव मुख्यत: डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, कुशालगढ़ (राजस्थान), ईडर, पोल, सूंथ (गुजरात) के भीलों में सर्वाधिक था, जहाँ भीलों की संख्या अत्यधिक थी। वे गुजरात के पड़ोसी राज्यों में भी अपने पंथ को फैलाने में सफल रहा। १९११ में उन्होंने अपने पंथ को नए रूप में संगठित किया तथा धार्मिक शिक्षाओं के साथ-साथ भीलों की सामंती व औपनिवेशिक शोषण से मुक्ति की युक्ति भी समझाने लगा। उसने प्रत्येक भील गाँव में अपनी 'धूनियाँ' स्थापित कीं तथा इनकी रक्षा हेतु कोतवाल नियुक्त किए गए थे। गोविंद गिरी के द्वारा नियुक्त कोतवाल केवल धार्मिक मुखिया ही नहीं थे, बल्कि अपने क्षेत्र के मामलों के प्रभारी भी थे। वे भीलों के मध्य विवादों का निपटारा भी करते थे। इस प्रकार अन्य अर्थों में गोविंद गिरी की समानांतर सरकार चलने लगी थी। किंतु दूसरी

ओर राजा व जागीरदारों द्वारा गोविंद गिरी व उनके शिष्यों का उत्पीड़न भी जारी था। गोविंद गिरी के सुधार आंदोलन के प्रभाव में भील आदिवासी शराब पीना छोड़ने लगे थे। बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, कुशालगढ़, सूंथ, ईडर राज्यों के राजस्व का एक-तिहाई से षष्ठांश भाग शराब से प्राप्त होता था। अत: अधिसंख्य आदिवासियों द्वारा शराब छोड़ने से राज्य एवं शराब के ठेकेदार चिंतित होने लगे थे।

गोविंद गिरी के शिष्यों की संख्या तथा सामाजिक-धार्मिक गतिविधियाँ दिन-ब-दिन बढ़ रही थीं। इससे राजाओं, जागीरदारों तथा अधिकारियों में बेचैनी बढ़ने लगी थी। वे गोविंद गिरी के बढ़ते हुए प्रभाव से भयभीत थे कि कहीं उनकी सत्ता पलट न जाए अथवा दुर्बल न हो जाए। अत: वे इन उपदेशकों अथवा प्रचारकों को अपने राज्य अथवा जागीर की सीमाओं से बाहर निकल जाने पर मजबूर करने लगे थे, जिससे वर्गीय कटुता बढ़ने लगी थी, इससे यह समाज एवं धर्म सुधार आंदोलन राजनीतिक स्वरूप प्राप्त करने लगा था। गोविंद गिरी के नेतृत्व में १९०५ में आरंभ आदिवासी भीलों का समाज एवं धर्म-सुधार आंदोलन १९१३ में राजनीतिक व आर्थिक विद्रोह में परिवर्तित हो गया।

आदिवासी प्रतिरोध के नायक गोविंद गिरी ने लोगों में जागृति लाने के लिए विलायती शासन की मुखालफत अपने एक गीत से की थी, जिसकी मुख्य पंक्ति थी, 'नी मानु रे भूरेटिया', यानी 'रे भूरेटिया (अंग्रेज), मैं माननेवाला नहीं हूँ। अपनी लड़ाई लड़ता रहूँगा, जो आदिवासियों के अधिकारों और राष्ट्र की आजादी की लड़ाई है और मेरा लक्ष्य है, अंत में दिल्ली की गद्दी पर कब्जा करना। यह देश तुम्हारे चंगुल से आजाद होकर रहेगा। हम इसे आजाद कराएँगे।' गोविंद गिरी की अगुवाई में गठित 'संप सभा' ने तत्कालीन डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, मेवाड़, कुशलगढ़, प्रतापगढ़ और गुजरात की ईडर और संतरामपुर रियासतों के भील आदिवासियों को ब्रिटिशराज और देशी रियासतों के शोषण और अत्याचारों के विरुद्ध लामबंद होकर आजादी के लिए अपनी लड़ाई लड़ने के लिए प्रेरित किया। आदिवासियों की एकजुटता और प्रतिरोध को ब्रिटिश और रजवाड़ी सत्ताओं ने विद्रोह की संज्ञा दी और उसे कुचलने का षड्यंत्र रचा। डूँगरपुर के महारावल ने अंग्रेज अधिकारी (पॉलिटिकल एजेंट, राजपूताना) को स्थिति की गंभीरता के बारे में लिखा था कि 'भीलों को शांत करने में हो रहे विलंब का बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है।'

गोविंद गिरी अक्तूबर १९१३ में अपने शिष्यों के साथ गुजरात व राजस्थान की सीमा पर स्थित मानगढ़ की पहाड़ी पर पहुँचे तथा दशहरा व दीपावली के अवसर पर डेढ़ माह के मेले का आयोजन आरंभ किया। पहाड़ी पर अपनी 'धूनी' स्थापित कर तथा 'ध्वज' लगाकर धार्मिक कार्यों में संलग्न हो गया। हजारों की संख्या में भील इस पहाड़ी पर एकत्र होने लगे थे तथा झुंड-के-झुंड आदिवासी पहुँच रहे थे। अंग्रेजों के दस्तावेजों अनुसार लगभग ४००० भील एक साथ इस पहाड़ी पर एकत्र थे। बाँसवाड़ा, डूँगरपुर, सूंथ व ईडर के राजाओं व सामंतों में भारी बेचैनी बढ़ने लगी थी। अत: इन्होंने भीलों को कुचलने के लिए अपने अंग्रेज हुक्मरानों से विनती की। ६ से १० नवंबर, १९१३ के मध्य मानगढ़ की पहाड़ी के समीप हजारों सैनिक (अंग्रेजी सेना) पहुँचे, जिनमें मेवाड़ भील कोर, १०४ वेलेजली राइफल व ८वीं राजपूत रेजीमेंट के सैनिक सम्मिलित थे। सैनिक अभियान का नेतृत्व बंबई सरकार के उत्तरी संभाग के अंग्रेज आयुक्त के हाथ में था। उसके प्रयासों से भीलों से १० नवंबर, १९१३ को संवाद आरंभ हुआ था एवं गोविंद गिरी ने समझौते के लिए अपनी ओर से ३३ सूत्री माँगपत्र प्रस्तुत किया। इस माँगपत्र में गोविंद गिरी ने भीलों के राजनीति, आर्थिक, सामाजिक व धार्मिक अधिकारों का उल्लेख किया था। गोविंद गिरी को कहा गया कि पहले वह पहाड़ से आदिवासियों के जमावड़े को तितर-बितर करे, तदुपरांत ही माँगपत्र पर विचार किया जा सकता है। जबकि गोविंद गिरी का कहना था कि पहले उनकी माँगें मानी जाएँ और उसके बाद ही समझौता संभव है।

अंतत: १७ नवंबर, १९१३ को अंग्रेजी फौजों ने मानगढ़ की पहाड़ी पर आक्रमण कर दिया। मानगढ़ की पहाड़ी के सामने दूसरी पहाड़ी पर अंग्रेजी फौजों ने तोपें व मशीनगनें तैनात कर रखी थीं एवं वहीं से गोला-बारूद दागे जाने लगे थे। लगभग एक घंटे तक मानगढ़ पर भीलों ने सेना का सफल मुकाबला किया, किंतु आधुनिक युद्ध-सामग्री के समक्ष अधिक समय तक नहीं टिक सके। मानगढ़ की पहाड़ी के नीचे तैनात अंग्रेजी फौज ने पहाड़ी को घेरते हुए ऊपर पहुँचकर भीलों को अंधाधुंध गोलियों से भूनना आरंभ किया। कुछ ही समय में भीलों ने आत्मसमर्पण कर दिया। उसके बाद भी भीलों का 'कत्लेआम' जारी रहा। अंग्रेजों के दस्तावेजों के अनुसार कुल १०० भील मारे गए थे तथा ९०० भीलों को बंदी बना लिया गया, जबकि अन्य स्रोतों का कहना है कि लगभग १००० भील शहीद हुए थे। बाबा गोविंद गिरी को भी गिरफ्तार कर लिया गया था तथा उन्हें ११ फरवरी, १९१४ को मृत्युदंड की सजा सुनाई गई, किंतु इनकी लोकप्रियता के कारण इस सजा को आजीवन कारावास में तब्दील कर दिया गया, जिसे बाद में दस वर्ष सजा में बदल लिया गया। डूँगरपुर रियासत से देश-निकाला दे दिया गया।

आश्चर्य की बात तो यह है कि इतना बड़ा हत्याकांड (जो कि जालियाँवाला बाग जैसा ही वीभत्स था) की उपेक्षा राष्ट्रीय स्तर पर हुई। परंतु बागड़ के भील आदिवासियों की यह शहादत बेकार नहीं गई। इस घटना के बाद बाबा गोविंद गिरी द्वारा रखी अधिकांश माँगों को संपूर्ण आदिवासी क्षेत्रों (मेवाड़ सहित) में आंशिक तौर पर मानकर लागू कर दिया गया। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि सदियों पुराने अंधकार से निकलकर भील आदिवासियों ने नए सवेरे की रोशनी में आँखें खोली। इस भूले-बिसरे शहादत के स्वर्णिम अध्याय को सेवा-निवृत्त पुलिस महानिरीक्षक हरिराम मीणा ने उजागर कर शहीदों का स्तुत्य श्राद्धकर्म किया है। आज मानगढ़ एक तीर्थ-स्थान है, जहाँ १७ नवंबर को 'शहीदी मेला' आयोजित होने लगा है और शहीदों को आंचलिक स्तर पर पर श्रद्धांजलि दी जाने लगी है।

डी-१४८ ए/२ दुर्गा मार्ग
बनी पार्क, जयपुर-३०२०६१
दूरभाष : ०१४४-२२०१३३३

गंगा अवतरण

● वीरेंद्र निर्झर

सुरापगा को जब मिला, धरती का अधिवास।
ब्रह्म कमंडल से निकल, गंगा हुई उदास॥

अनंत दिव्य दान-सी पुनीत पुण्य प्राण सी,
अमोघ पाप नासिनी तरंगिनी अभय करी।
चली सुब्रह्मलोक से ससोच ओक छोड़ के,
स्नेह-नेह तोड़ के विशोक-शोक से भरी।
सरोष-रोष भाव से अमर्ष से प्रभाव से,
समस्त भूमि भाग को डुबो चली प्रलय घरी।
उलाँघती-फलाँगती हिमाद्रि के उत्तुंग-तुंग
शृंग तोड़ती बही उमंड चंड निर्झरी॥ १॥

विलोक रूप रौद्रता प्रलय प्रवाह की घटा,
विचिंत्य हो उठा दिगंत काँपने लगी धरा।
दिनेश शेष कल्मले प्रभावहीन हो चले,
नगाधिराज के भले ढहे प्रशीर्ष हरहरा।
समग्र मृत्युलोक में विशोक छा गया नया,
पयोधि में हिलोर पे हिलोर की बढ़ी त्वरा।
अदेव-देव मंडली भयाभिपन्न हो चली
महा महाधिदेव त्राहिमाम् पाहि शंकरः॥ २॥

सुरक्ष रक्ष देव है दयाभिधान दानशील,
नीलकंठ कील कील कील क्लेशकारिका।
प्रलय प्रताप से भरी चली विक्षुब्ध सुरसरी,
विरुद्ध क्रुद्ध भाव की प्रभाव की प्रचारिका।
समग्र देवलोक, ब्रह्मलोक, नागलोक मर्त्य-
लोक, लोक-लोक के लिए बनी संघारिका।
जगद्हिताय देव हे प्रसीद पार्वतीपते,
सुशांत हो, सुशांत हो, सुशांत ब्रह्मदारिका॥ ३॥

प्रसन्न हों प्रसन्न देव की कृपा अनन्य अन्य,
और कौन अन्य धन्य अब विलंब नाटिए।
समाधि त्याग विश्वनाथ कीजिए सदय सनाथ,
हाथ दीजिए अभय अनय अरिष्ट छाँटिए।
प्रदोष दोष को दरेर आशुतोष हाथ फेर,
शीघ्र दंभ द्वंद्व की अनिष्टता उपाटिए।
नमोस्तुते त्रिलोचनाय हे शिवे सदा हिताय,
चंद्रशेखराय हो सहाय कष्ट काटिए॥ ४॥

प्रभो उबारिए समस्त सृष्टि कृष्टि नाश से,
विनाश से बचाइए, बचाइए दई दई।
भगीरथी प्रयत्न की प्रशस्त स्वस्ति कामना,
विभावना हुई विभाव ना हुई दई दई।

महेश एक आप ही समर्थ हैं महाधिदेव,
नेव कीजिए पसीजिए प्रभो दई दई।
दई-दई असाध व्याधि रोकिए प्रलंबबाहु,
जागिए समाधि त्याग जागिए दई दई॥ ५॥

प्रलाप आप्त ताप से समाधि शंभु की खुली,
धुली-धुली महामहिम्न तेज राशि छा गई।
समग्र लोक लोकपाल कष्ट से हुए निहाल,
काल के प्रभाव की मनो अला-बला गई।
विक्षुब्ध देशकाल को विलोक शोक साल को,
निमेष में समस्त भाव भूमि दृष्टि आ गई।
विलोक रूप ब्रह्म का अनंत तेज रम्यता,
प्रणाम कर प्रणम्यता स्वरूप में समा गई॥ ६॥

विराट् पाद पद्मजा प्रशस्त धर्म की ध्वजा,
भुजा अशेष वेष जिष्णु-विष्णु की विभा नई।
उबारने मनुष्य को कृतांत पाप पंक से,
कलंक अंक क्षालने क्षपांत सी प्रभामयी।
अशांत क्लांत चीखती पद प्रहार पीटती,
विध्वंस को उलीचती हरी-हरी शुभाशयी।
तरंगिता तरंग गंग की उतंग देख के,
अनंगजीत को विनीत भाव राशि भा गई॥ ७॥

प्रमोद मोद से भरे गिरीश शीश में शिरीष,
पुष्प सी प्लवंग गंगधार को सँभारने।
सहर्ष दिव्य धौल हिम प्रखंड पर अतौल,
चंद्रमौल हो गए खड़े लगे जटा निवारने।
जटाटवी अशेष खोल केश व्योम केश से,
निमेष ही महेश वेष को लगे पसारने।
डिमिड् डिमिड् डिमिन्निनाद नाद नांत हो उठा,
दिशा दिशांत तक लगी प्रकांतता प्रचारने॥ ८॥

उझक-उझक उदग्र भाव नृत्य दीप्त द्रुत हुआ,
धगद्-धगद्-धगद् धरा धरेंद्र डोलने लगे।
उत्ताल ताल-ताल पर त्रिनेत्र व्याघ्र छाल धर,
विसर्ग सर्ग के अनेक सर्ग खोलने लगे।
विभूति भूति भावनी लपेट सर्प दावनी,
उछल-उछल उछालकर त्रिशूल तौलने लगे।
विशेष हाव-भाव से उमंग से उछाव से,
प्रभाव पर प्रभाव के प्रभाव घोलने लगे॥ ९॥

विकर्ष कर्ष का प्रकर्ष तीव्र तीव्रतर हुआ,
प्रखर हुआ डिमिड् डिमिन्निनाद ताल-ताल पे।
कराल काल की करालता विमुग्ध हो गई,
विक्षुब्ध क्षुब्धता हुई प्रलुब्ध चंद्रभाल पे।
उदंग गंग की तरंग पे तरंग सी चढ़ी,
बढ़ी प्ररोध तोड़ रीझ खीझती दुकाल पे।
घरी-घरी भरी-भरी घरी-घरी ढरी-ढरी,
घरी-घरी हरी-हरी डरी-डरी उफाल पे॥ १०॥

चली विचिंत्य मानिनी भयाभिपन्न अनमनी,
गिरी-गिरी-गिरी गिरीश शीश पै उतान सी।
उसीस शीश तल्प पा विकल्प कल्प खो गए,
अटक गई प्रकर्ष कर्ष में लता प्रतान सी।
प्रसन्न धूर्जटी जटा समेट बाँधने लगे,
प्रपन्न हो निबंध बंध से झरी अमान सी।
विमुक्त हो जटाभिपाश से विलास लासिनी,
बही चली सुरापगा विलोल सामगान सी॥ ११॥

कलल कलल कलल कलोलनी कलोलती हुई,
प्रखर प्रवाह वाह में गिरींद्र से उतर चली।
उछंग कूदती कहीं उलंघ जूझती कहीं,
कहीं कछार कूल में दुकूल-सी लहर चली।
चली अपाथ पाथ से जलाभिस्रोत साथ ले,
सरस्वती यमी च गंडकी को बाँह भर चली।
भगीरथी रथी चले जहाँ-जहाँ वहाँ-वहाँ,
पदानुगत सगरसुतों को तारने सुघर चली॥ १२॥

सुरापगा मनुष्य के लिए सुखाभिषेक हो,
अनेक नेक रूप में हरे मनुष्य की बला।
वसुंधरा सदा समृद्धि सिद्धि से भरी रहे,
हरी-भरी प्रसन्न धन्य भूमि भाव वत्सला।
अनंत तेज राशि पाप शाप मोचनी बने,
दरिद्र दुष्टता पछार छारती हला हला।
भगीरथी प्रयत्न की अपूर्व पुण्य रत्न-सी, सुधावधौत,
विष्णु के पदारविंद की कला॥ १३॥

जो अनंत का दान है शिव मस्तक का मान।
भगीरथी सुरसरि सदा, करे जगत् कल्यान॥

एम बी/१२०, 'स्वास्ति सदन', न्यू इंदिरा कॉलोनी,
पार्ट-बी, बुरहानपुर (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५९५१२९७

कहानी

अपना-अपना सूरज

● रश्मि कुमार

सुप्रसिद्ध कथाकार। पाँच कहानी संग्रह, दो उपन्यास तथा एक आलोचना ग्रंथ प्रकाशित। प्रसाद स्मृति वातायण (संपादन)। सर्जना सम्मान, शिंगलू स्मृति पुरस्कार, हिंद प्रभा सम्मान, पहरुआ सम्मान, युवा साहित्यकार सम्मान एवं अन्य सम्मान।

''सत्यानाश'', हे भगवान् ई कोन विपत्त पड़ गया रे बाप! रसोईघर में काम करती कनक के कानों मे यह आवाज पड़ी तो पहले तो ध्यान ही नहीं दिया, ध्यान देने की उसे फुरसत भी नहीं थी और आज तो बिल्कुल नहीं। छठ पूजा की शाम, घंटे भर पहले पूरा परिवार अर्घ्य डालकर घाट से लौटा था। हमेशा की तरह इस त्योहार में पूरा कुनबा जुटा था। सबकी रसोई बनाने का जिम्मा कनक पर ही था। वैसे भी घर की मालकिन आशा देवी के मुख से यह उद्‌गार घर की जीर्ण-शीर्ण दीवारों के रचे-बसे थे। सत्यानाश, सर्वनाश, अनर्थ, हाय रे देव, अरे बाप रे बाप, खत्म। इन शब्दों का उच्चारण इस घर में कोई नई बात नहीं थी। कारण कुछ भी हो सकता था। दूध उफन जाना, आँगन में सूखते कपड़ों का बारिश में भीग जाना, कनक के मन में आता कि दाल में नमक कम पड़ जाना और सब्जी में तेल अधिक पड़ जाना भी इसी में जोड़ दें। परंतु आज जब सत्यानाश और अनर्थ के साथ ही चार वर्षीया बबली यानी कि कनक की बेटी भी करुण स्वर में रो पड़ी तो कनक चिहुँक उठी। समझ गई कि और दिनों से भयंकर कुछ हुआ है, लपककर रसोई से निकलकर आँगन में जो आई तो सामने का दृश्य भयावह था। नन्ही बबली पूजाघर के द्वार पर गिरी पड़ी थी और उसके ताऊ, जो उसे घसीटते हुए आँगन की तरफ ला रहे थे। बरामदे में आशा देवी सिर पर हाथ धरे बैठी थीं और बबली की ताईजी उनकी पीठ सहला रही थीं, धीरज भी बँधा रही थीं, ''शांत रहिए माँजी, हम पंडितजी से पूछते हैं, कोई-न-कोई रास्ता अवश्य निकलेगा।'' बबली एक बार फिर जोरों से रो पड़ी, ताऊजी ने एक तरह से उसे घसीटते हुए आँगन में लाकर पटक ही दिया। कनक से रहा नहीं गया, जाकर बेटी को उठाकर चुप कराने लगी, ''न-न, रोते नहीं, चुप हो जा।''

''ताऊजी ने मारा माँ।''

''कोई बात नहीं, वे बड़े हैं तुमसे।''

''लात से मारा माँ।'' बबली की हिचकी बँध गई। कनक ने कठिनाई से खुद को रोका। तथाकथित पढ़े-लिखे परिवार में इस तरह के जंगली दृश्य की कल्पना आमतौर पर नहीं की जा सकती, परंतु आशा देवी का परिवार नया-नया संपन्न होने के बावजूद कुछ आदिम परंपराओं को आज भी निभा रहा था। यह बात और थी कि घर के बड़े तथा छोटे बेटे के परिवार इस दायरे से बाहर निकल गए थे। लिहाजा दकियानूसी परंपराओं का सारा बोझ घर के मँझले बेटे के कंधे पर आ पड़ा था, जो बबली के पिता थे और इस वक्त किसी काम से हमेशा की तरह साइकिल से बाजार गए हुए थे। लात से मारे जाने की बात सुनकर कनक बोल उठी, ''तूने ऐसा क्या कर दिया बिटिया, जरूर कुछ किया होगा।'' मन-ही-मन उबलते हुए कनक ने जेठ का मान रखने की भरसक कोशिश की, परंतु जो सुना, उससे तो उसका कलेजा ही मानो हिम हो गया। बबली की छोटी चाची बोल उठी, ''पूछती हैं, क्या किया, अरे और कुछ होना बाकी है क्या?''

कनक अवाक्, घर की पढ़ी-लिखी छोटी बहू के सामने वैसे भी वह चुप ही रहती है, सो उसने देवर की ओर देखा, जो अपने सालभर के बेटे को गोद में लिये हुए जोर-जोर से उसका माथा सहला रहा था, कनक को अपनी ओर देखते पाकर वह बोल उठा—

''जानती भी हैं कि आपकी लाड़ली ने क्या किया है?''

''क्या किया छोटे भैया?'' विनीत होकर बोलना कनक की आदत थी। परंतु यही सुनकर तो छोटा चाचा उग्र स्वर में बोल उठा—

''छठ पूजा की डाली से ठेकुआ चुराकर खा रही थी यह बबलिया, पूरा प्रसाद जूठा दिया इसने। अब छठ बरत का क्या होगा, घोर विघ्न डाल दिया इस छोकरी ने।''

बेटी के इस अविश्वसनीय, अकल्पनीय, अक्षम्य अपराध को सुनकर धर्मभीरू कनक की बोलती बंद हो गई, वह सुन्न रह गई।

''क्या कह रहे हैं, छोटे भैया!'' बड़ी मुश्किल से दो-चार शब्द फूटे। पूजा की डलिया का प्रसाद सुबह का अर्घ्य डालने के बाद ही खाया जा सकता है, उसके पहले नहीं, यह बात कनक जानती थी। थोड़ी देर पहले ही तो डलिया सँभालकर पूजाघर में रखी थी, अभी तो आधा अनुष्ठान बाकी था। उस बीच यह कैसी घोर विपत्ति, कैसा भयानक विघ्न, वह भी उसी की पुत्री के हाथों।

''और नहीं तो क्या, यह झूठ बोल रहे हैं, बेटी को यही सिखाया है आपने। चोरी करके खाना, राम-राम, मेरे बच्चे की मनौती की डाली झूठा दी इस लड़की ने। अब मैं क्या करूँ?'' बबली की पढ़ी-लिखी आधुनिक चाची गँवई औरतों की तरह रोना भी जानती थी।

कनक किंकर्तव्यविमूढ़ की तरह काठ की माटी सी खड़ी रह गई। छठ-पर्व, सबसे ज्यादा नियम-निष्ठा वाला व्रत। आशा देवी खुद सालों से

व्रत रखती आई हैं। पूरे चौबीस घंटे का निर्जल व्रत, उसके पहले चौबीस घंटे का फलाहार या गुड़ की खीर-सोहारी; घी लगी रोटी, नमक बिल्कुल नहीं। वैसे आजकल की नाजुक महिलाएँ खीर-सोहारी की जगह चने की दाल, केरवा चावल भी सेंधा नमक के साथ ले लेती हैं, पर आशा देवी पूरे विधि-विधान से व्रत रखती हैं। इतना ही नहीं, प्रसाद के लिए ठेकुआ बनाने से पहले अपने हाथ से गेहूँ चुनना, धोना, सुखाना, वह भी ऐसे कि चिड़िया भी चोंच न मार सके। फिर गेहूँ को घर की चक्की में अपने हाथों पीसना और अंततः ठेकुआ छानना। छठ-पूजा का प्रसाद बनानेवाले को भी व्रत रखना पड़ता है, जो कि कनक रखती है और बनाती भी है। एक तरह से आधा व्रत तो उसका भी हो ही जाता है। फिर भी निर्जल रहकर जल में शाम की वेला सूरज डूबने तक तथा सुबह मुँह अँधेरे जल में उतरकर सूरज उगने तक खड़े रहने का कठिन कार्य तो आशा देवी ही करती हैं। उन्हीं के पुण्य प्रताप का फल है कि परिवार के दिन फिरने लगे हैं। बड़ा बेटा ओवरसियर है, इंजीनियर तो हो ही जाएगा; छोटा बेटा नया-नया सिपाही भरती हुआ है, छठ-परमेश्वरी की किरपा रही तो जल्दी वह भी इंस्पेक्टर बन जाएगा। आखिर आशा देवी का खर-जिउतिया और छठ का व्रत रखना बेकार थोड़े ही जाएगा। रहा मँझला बेटा, तो वह भी शहर के एक स्कूल में पढ़ाता है, आशा देवी के स्वर्गीय पति की पेंशन भी है। सो मँझले का गुजारा भी हो ही जाता है। तीनों बेटे माँ को सिर-आँखों पर रखते हैं तो बहुओं को भी रखना पड़ता है।

वैसे आशाजी आजकल जी-जान से अपने छोटे बेटे-बहू पर फिदा हैं। उसी को साल भर पहले पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई है, इसलिए इस बार का छठ विशेष है। पर इस छोकरी की वजह से जो अनहोनी हो गई, उसका क्या करे आशा देवी। कितने मन से इस बार के व्रत का सारा खर्चा छोटे ने उठाया था। देसी घी में सारा प्रसाद बनवाया। तरह-तरह के फल और सूखे मेवे तो वह पटना से साथ लेकर आया था। काजू, किशमिश, बादाम तो थे ही, उस पर चटख लाल बिलायती सेब, हरे रंग की कीवी, टमाटर के साइज के बड़े-बड़े गुलाबी अंगूर, उनकी सजी हुई डलिया देखकर घाट पर सबकी आँखें खुली की खुली रह गई थीं, वरना इस गाँव के लोगों को छठ की डलिया सजाने के लिए जुटता ही क्या है। फल-सब्जी मिलाकर डलिया सजाई जाती हैं। अदरक, नीबू, लौकी, मूली से लेकर फल के नाम पर गाजर, गन्ना, पपीता, शरीफा और नारियल के साथ अगर किसी की डलिया में संतरा-सेब दिख जाए तो वही बड़ी बात होती है। उस पर अधिकतर गुड़ के साथ बना हुआ आटे का ठेकुआ। छठ की डलिया में रखने के लिए लोग महीनों घर में लगे नीबू और नारियल की रखवाली करते, घर के जरूरी खर्चों में भी कतर-ब्योंत करना पड़ता, आशा देवी स्वयं वर्षों से यही सब करती आई हैं, तब जाकर छठ संपन्न हो पाता। इस बार छठ का सारा खर्चा छोटे ने अकेले उठाया था, बड़े बेटे का छोटे भाई के प्रति अचानक उदार हो जाने का एक कारण यह भी था। आशा देवी भी मन-ही-मन मगन थीं कि इस बार बाँस की डलिया सही, अगली बार छोटे बेटे से कहकर चाँदी का सूप बनवा लेंगी, घुँघरू लगा हुआ, पर इस छोकरी ने जो भयंकर कांड कर डाला था, उसके बाद क्या पता, छोटा अगले साल छठ में घर आएगा या नहीं। आज सुबह जब आशा देवी ने अपने मन की मुराद अपनी बेटी सुशीला को बताई तो वह हमेशा की तरह उनकी बात काट बैठी, ''तुम भी न माँ, क्या-क्या सोच लेती हो, अब चाँदी के सूप की कौन सी सनक सवार हुई भला!''

''सनक काहे का, भगवान् जब दे रहे हैं तो।''

''अरे भगवान् यह कब कह रहे हैं कि चाँदी का ही सूप लाओ।''

''अरी, धीरे बोल धिया, तेरी भाभी सुन लेगी।''

''लो, बहू से डरती हो तो ऐसा महँगा शौक क्यों रखती हो?'' सुशीला धीरे बोलना नहीं जानती थी। दो टूक और स्पष्ट बोलना उसकी आदत थी। अपने तीनों भाइयों से उम्र में ही बड़ी नहीं थी, जहीन भी थी। गर्ल्स हाई स्कूल में प्रिंसिपल थी। बातचीत में सलीका था और आत्मविश्वास भी। अपितु कभी-कभी तो कनक को लगता ही नहीं कि वह उसी घर की बेटी है। पर तीनों भाई लठमार भाषा बोलने के बावजूद बहन का लिहाज रख लेते थे। सुशीला आत्मनिर्भर होने के साथ-साथ कर्तव्यपरायण भी थी। उसके खुले विचारों ने कई बार पूरे परिवार को अंधविश्वास से निकालने में मदद की थी। संकट में भी वह साथ रहती। आज भी सुशीला ने वही किया। जब पूरा परिवार इस तथाकथित चोरी कांड की वजह से सकते में था तो सुशीला ने बीच में आकर बबली को गोद में उठा लिया, कड़क स्वर में बोली, ''बस बहुत हो गया, ठेकुआ खा लिया, कोई गो हत्या नहीं की है।''

''पर अब होगा क्या, मेरे बच्चे की मनौती का क्या होगा, अब क्या उपाय करें हम?''

छोटी बहू नई आई थी, घर के सबसे अधिक कमासुत की पत्नी, बड़ी ननद की उपस्थिति को संज्ञान में लेना उसने कतई जरूरी नहीं समझा, उसी तरह रोकर बोल उठी—

''इससे तो अच्छा था, मैं मायके में ही छठ करवा लेती, परसाद चढ़वा लेती।''

आशा देवी को अपनी आशंका सच साबित होती दिखाई दी, ''अरे-रे, ऐसे अधैर्य मत होओ दुल्हीन, हम अभी पुरोहितजी से उपाय पूछते हैं।'' आशा देवी भी मिश्री घुली बोली बोल सकती हैं, कनक का चौंकना स्वाभाविक था।

''उपाय मुझे मालूम है, मेरे ससुराल में भी ऐसा हो गया था।''

''फिर, क्या उपाय किया।''

''करेंगे क्या, पुरोहितजी बोले, अगले साल छठ में बच्चे के नाम की एक की जगह दो डलियाँ सजाकर चढ़ा लेना बस, दोष खत्म हो जाएगा।''

''सच कहती हैं जीजी!'' बड़ी बहू पूछ बैठी।

''छठ-पर्व के दिन झूठ बोलूँगी, मुझे भगवान् का डर नहीं है क्या रे बड़की!''

''अच्छा ठीक है, यही सही, हम अपने मायके में भी पुछवा लेंगे, भगवान् मुन्ने की रक्षा करें।'' आखिर छोटी बहू का रोना बंद हुआ। इतनी देर से काठ की माटी सी खड़ी कनक को लक्ष्य कर सुशीला बोल उठी—

''क्यों री मँझली, दो दिन को मायके आई ननद को भूखा मारने का इरादा है, खाना नहीं बनाएगी?''

कनक को मानो होश आया, चारों तरफ देखा, सभी अपने-अपने कमरे में जा चुके थे, सभी को भोजन का इंतजार था, कनक को फुरसत कहाँ थी, लपकती हुई चौके में पहुँची, जल्दी-जल्दी आटा गूँधने लगी, मानो बेटी के किए भयंकर अपराध का प्रायश्चित्त कर रही हो।

आशा देवी बरामदे में ही निढाल होकर दीवार से पीठ लगाकर बैठी रह गईं। बबली को गोद में लेकर सुशीला उनके पास आकर बैठ गई, आशा देवी ने उसकी ओर देखा, फिर बोलीं—

''छोकरी सो गई तो गोद में काहे टाँगे हो। जाकर इसकी माँ को देकर आ।''

''मँझली भाभी रोटी बना रही हैं।''

''हाँ तो रोटी भी बनाए और बच्चे का भी ध्यान रखे, तू कोई नौकरानी लगी है उसकी।''

''नौकरानी काहे की, बुआ हूँ इसकी, इसे क्या, इसके बाप को भी घंटों टाँगे रहती थी।''

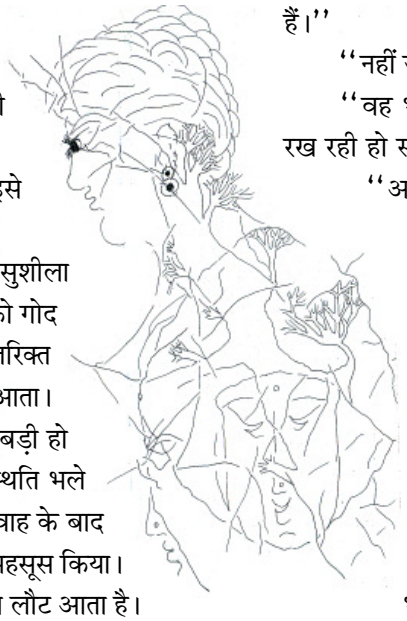

कुछ याद कर आशा देवी चुप रह गईं, सुशीला उनकी सबसे बड़ी संतान, बचपन छोटे भाइयों को गोद में खिलाते ही बीता। सुशीला की कभी कोई अतिरिक्त देखभाल की हो, आशा देवी को याद नहीं आता। अपने छोटे भाइयों को पालते हुए सुशीला कब बड़ी हो गई, उन्हें पता ही नहीं चला। सुशीला की उपस्थिति भले ही उन्होंने कभी महसूस नहीं की, पर उसके विवाह के बाद उसकी अनुपस्थिति को अवश्य बेहद तीव्रता से महसूस किया। आज भी सुशीला को देखकर उनके मन का बल लौट आता है। घर में अभी-अभी जो भयंकर कांड हो गया, आखिर आज भी उसका हल सुशीला ने ही निकाला। बबली उसकी गोद में ही सो गई थी। आधा खाया हुआ उसके हाथ का ठेकुआ आँगन में गिरा हुआ था। कुछ सोचकर सुशीला बबली को गोद में लेकर उठ खड़ी हुई, आँगन में आकर अधखाया ठेकुआ उठा लिया, आँचल से झाड़कर सिर से छुआ लिया कि आशा देवी बोल उठीं, ''अरी, अब इस जूठे ठकुआ का क्या होगा?''

''काहे का जूठा माँ, चार बरस के बच्चे का क्या जूठा मानना।'' कहते हुए उसे आँचल में बाँध लिया और रसोई में कनक के पास आ बैठी, बोली, ''क्यों री, जेठ का सारा गुस्सा आटे पर निकाल देगी?''

''अरे नहीं जीजी, गुस्सा तो इस छोकरी पर आ रहा है मुझे, कितना बड़ा कांड कर डाला।''

''यह नन्ही सी जान, बड़ा कांड कर डालेगी!''

''सो तो इसने किया ही।''

''सारा दोष तुम्हारा है, मँझली।''

पहले से ही अपराध-बोध से ग्रस्त कनक का मन यह सुनकर और डूब गया, भरे हुए गले से बोली—

''ठीक कह रही हैं जीजी, पहले पता होता तो छोकरी को कमरे में बंद करके रखती।''

''बिल्कुल, इतना तो तुम कर ही सकती हो, रोटी बनाने के साथ-साथ।''

''भारी गलती हो गई जीजी, अब क्या होगा?''

''होगा क्या, तुम गरम-गरम रोटी सेंको, पूरा परिवार पेट भरकर खाएगा और सोएगा, तब तुम फुरसत से बैठकर रोना। अभी रोओगी तो तुम्हारी जिठानी-देवरानी आकर रोटी पका देंगी?''

कनक के हाथ का बेलन वहीं थम गया, बोली, ''अब उनसे क्या कहूँ, दो दिन को आती हैं।''

''मेहमान की तरह और इस दो दिन में तुम्हारे चार हाथ-पैर हो जाते हैं।''

''नहीं जीजी, पर सबके खाने-पीने का ध्यान तो रखना ही पड़ेगा।''

''वह भी नहीं कर पाती हो। देख रही हूँ, दो दिन से कितना ध्यान रख रही हो सबका।''

''आप ठीक कह रही हैं जीजी, मुझसे कोई काम नहीं सँभलता।''

''और नहीं तो क्या, दो दिन से देख रही हूँ, लड़की दिनभर रोती रहती है, न समय से खाना, न सोना, न समय से नहाना, तुम्हारे पास जाती है तो डाँटकर भगा देती हो।''

''छठ का काम ही ऐसा है जीजी, गेहूँ धोने-सुखाने में कहीं बबलिया का हाथ न लग जाए, इसी डर से भगा देती हूँ।''

अब सुशीला के अंदर की हेड मिस्ट्रेस जाग उठी, कड़क स्वर में बोली, ''पूजा का गेहूँ तुम्हारे लिए बच्चे की भूख से ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया री मँझली! बच्ची को भूखा मार देगी। घर के और लोग गेहूँ की रखवाली नहीं कर सकते?''

''अरे नहीं जीजी, कोई रोज का काम थोड़े ही है।''

''बच्चे को भूख तो रोज लगती है।''

''वही तो, एक दिन देर-सबेर क्या हो गया, इसने तो पूजा की डाली ही जूठी कर दी।''

''चलो, यह तो बच्ची है। पूजा, प्रसाद, डलिया, छठ नहीं समझती, भूख लगी, जो सामने दिखा, उठाकर खा लिया, पर इस घर के बड़े, इतना भयंकर कांड हो गया तो क्या खाना नहीं खाएँगे, एक दिन भूखे सोकर प्रायश्चित्त करेंगे?''

''ऐसा थोड़े ही होता है, भूखे थोड़े ही रहा जाता है।''

''बिल्कुल नहीं रहा जाता, पर भोजन के साथ-साथ काम में हाथ भी बँटाया जाता है। घर की बाकी बहूरानियाँ कहाँ हैं?''

''अब उनसे कैसे कहूँ, दोनों नाराज जो हैं मुझसे, मेरी वजह से ही इतना बड़ा विघ्न पड़ गया, वह भी छठ-पर्व में।''

''देख मँझली, तेरी जिठानी और देवरानी जैसी एक हजार लड़कियों को मैं रोज सँभालती हूँ, देखती हूँ। यह नाराजगी काम से बचने का बस बहाना भर है। तुमने सारा काम अपने सिर ले रखा है। क्या वे अपने बच्चों

के साथ-साथ इस बबली को भी समय से खिला नहीं सकती थीं। इस ठेकुआ कांड से पहले आखिर ताई-चाची हैं। देख रही हैं कि बच्ची दिनभर टुअर की तरह इधर-उधर भटक रही है और इसकी माँ को मरने की भी फुरसत नहीं है।''

कनक चुप रही, किसी की शिकायत करना उसकी आदत नहीं थी, बोली, ''अच्छा हुआ, आपने उपाय बता दिया जीजी।''

''वह तो मुझे बताना ही था, नहीं तो बेकार का झगड़ा शांत कैसे होता!''

''यानी किसी पंडित ने नहीं बताया है ऐसा।'' कनक का कलेजा फिर बैठने लगा।

''पंडित की जरूरत किसे है मँझली, मैं किसी पंडित से कम लगती हूँ तुझे।'' सुशीला परिहास कर उठी, फिर बोली, ''चिंता मत कर, कहीं सुना था मैंने। समझ ले, मन के भय को दूर करने का एक टोटका भर है, मैं पूरी तरह मानती नहीं हूँ, पर करने में नुकसान क्या है।'' इस बार सुशीला गंभीर थी।

''पर जीजी, ऐसे कैसे···।''

''ऐसा ही है मँझली। तूने सुना नहीं, मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। मन ही तो सबकुछ है, मन का भ्रम दूर हो गया तो सब ठीक है। ईश्वर हमारे मन के भीतर है। कहीं बाहर नहीं, इतनी मोटी सी बात तू नहीं समझती।''

''क्या ऐसा हो सकता है, जीजी?''

''ऐसा ही होना चाहिए मँझली, पूजा-पाठ, व्रत-उपवास सब ठीक हैं, पर यह बेकार के ढकोसले, अंधविश्वास इनका क्या मतलब है। बच्ची की नादानी की इतनी बड़ी सजा!''

कनक का गला भर आया, ''पर जीजी, दोष तो लग ही गया, माँजी पंडित से जरूर पूछेंगी।''

''पूछने दो, पंडित एक की जगह सात खर्चे बताएगा, पर इनका उसी में भला है। नया-नया पैसा हुआ है। फालतू खर्च किए बिना संतोष कहाँ! इन्हें लगता है, पैसा खर्च करने से सारा दोष मिट जाएगा, पूजा-पाठ न हुआ, आज का भ्रष्ट सिस्टम हो गया। इसी सिस्टम ने सबका दिमाग खराब कर रखा है। ईश्वर तक को नहीं बख्शते ये लोग। इन्हें लगता है, पैसा है तो सबकुछ इनकी मुट्ठी में है।''

''पैसा बहुत बड़ी चीज है दीदी।'' कनक के मन की कसक जाग उठी।

''मानती हूँ, पैसा बड़ी ही नहीं, जरूरत की चीज भी है, पर सबसे बड़ी चीज तो नहीं, इनसान से बड़ी नहीं, इस अबोध बच्ची से बड़ी तो नहीं। यह सब करने से कन्या को लात मारने का दोष कम हो जाएगा? कन्या-पूजन का पुण्य मिल जाएगा इन्हें?''

कनक रो पड़ी, बोली, ''यही तो दुःख है। एक ही संतान, वह भी कन्या, अब तो भोर के अरग में सूरज भगवान् माफ कर दें हमें भी और इसे भी।''

''इसका तो अपराध मैं मानती ही नहीं हूँ, पर हाँ, तुम्हें माफी मिल सकती है, वह भी अभी, भोर होने से पहले।''

''वह कैसे?''

''ले, इसे कलेजे से लगा ले, मुँह-हाथ धुलाकर कुछ खिला-पिला दे, बेचारी आधा ठेकुआ और ताऊ की लात खाकर रोते-रोते ही सो गई।'' बबली को कनक की गोद में देती हुई सुशीला बोली। स्वर में भाई के प्रति छुपा क्रोध झलक ही आया।

''पर जीजी, बाकी सब, देर हो गई है, भोरे-भोर सूरज भगवान् को अरग डालने भी निकलना है।''

''यही तुम्हारा सूरज है मँझली। ईश्वर ने यह कन्या रत्न तेरी झोली में डाला है, यही तुम्हारे जीवन में उजाला भरेगी।''

कनक किंकर्तव्यविमूढ सी बैठी रही तो सुशीला फिर बोली, ''बज्र मूर्ख है री तू मँझली, इतनी सी बात नहीं समझती, बच्ची को भूख लगेगी तो वह माँ की ही तरफ देखेगी न, सूरज भगवान् की तरफ नहीं। अगर यह बच्ची तुम्हारा सूरज है तो तू भी इसका सूरज है, बच्चे माँ में ही भगवान् को देखते हैं। सबका अपना-अपना सूरज होता है री!''

कनक का डूबता मन जैसे उबरने लगा और सुनने की चाह में बैठी रही, सुशीला आगे बोली, ''न, मैं यह नहीं कहती कि मैं पूजा-पाठ में विश्वास नहीं रखती, नास्तिक नहीं हूँ मैं। सुबह सूर्य को अर्घ्य डालने मैं भी चलूँगी तुम लोगों के साथ, इसीलिए तो आई हूँ। उगते हुए बाल सूर्य को देखना भला लगता है। जल, उजाला, ऊष्मा का साथ मन को भरता है, पवित्र करता है, जीवंत करता है। नई आशा का संचार करता है। इसी बहाने परिवार भी जुड़ता है, उसमें व्यर्थ के क्लेश का स्थान नहीं होना चाहिए। अपितु मैं तो पूरी प्रकृति में ही ईश्वर को देखती हूँ। सूरज, चाँद, गगन, तारे, जल, वायु, अग्नि, पेड़, पौधे सभी। ये सभी हमारा आँचल भरते हैं। हमें कुछ-न-कुछ देते हैं। तुम भी तो कभी चाँद को पूजती हो, कभी बरगद को, पीपल को। पर अभी इस कन्या को सींचने की जरूरत अधिक है। यही इस घर का उजाला बनेगी और छाया भी। नहीं तो क्या मेरे ये तीनों भ्राताश्री घर का नाम रोशन कर रहे हैं। देख तो रही हो।''

''आपकी तरह बनेगी जीजी।'' कनक भरे कंठ से बोली।

''वह अपनी तरह ही बनेगी, बहुत अच्छी और सयानी। आखिर बेटी है इस घर की, बेटा नहीं, जो जनमते ही लायक हो जाते हैं। बेटी को तो लायक बनना पड़ता है, बनाना पड़ता है री मँझली। छठ-पर्व के अनुष्ठान से कहीं अधिक कठिन और आवश्यक अनुष्ठान है यह।'' बबली को गोद में सँभालते हुए उठ खड़ी हुई कनक। सुशीला ने आँचल में बँधा हुआ अधखाया ठेकुआ निकाला, कनक को देती हुई बोली, ''आँगन में गिरा हुआ था, धूल-मिट्टी लग गई है, कल बबली के हाथ से चिरई, चुनमुन को खिला देना।'' ठेकुआ हाथ में थामते हुए कनक के मन का अँधेरा छँटने लगा, भोर होने में अभी देर थी, परंतु उजाले का आभास महसूस करने लगी वह।

२/४३, विपुल खंड, गोमती नगर,
लखनऊ-२२६०१० (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४१५४०८४७६

प्रेमचंद : शोध की नई दिशाएँ

● कमल किशोर गोयनका

प्रेमचंद आधुनिक हिंदी साहित्य के एक ऐसे लेखक हैं, जो अपनी लोकप्रियता के साथ अध्ययन, अध्यापन और अनुसंधान की दृष्टि से आज भी केंद्र में हैं। प्रेमचंद पर लगभग दो सौ शोध-प्रबंधों के बावजूद नए-नए शोध की उत्सुकता बनी हुई है, जिसका प्रमुख कारण है कि प्रेमचंद के अज्ञात एवं अप्राप्य साहित्य की खोज का सिलसिला अभी टूटा नहीं है। प्रेमचंद के छोटे पुत्र अमृतराय ने सन् १९६२ में प्रेमचंद की जीवनी के साथ आठ पुस्तकें उनके अज्ञात एवं अप्राप्य साहित्य की प्रकाशित की थीं, जो इतने विपुल अनुपलब्ध साहित्य को खोजने का अनोखा उदाहरण था। हिंदी संसार में इसका दिल खोलकर स्वागत हुआ और यह मान लिया गया कि प्रेमचंद का संपूर्ण प्राप्य-अप्राप्य साहित्य सामने आ चुका है, किंतु इन ग्रंथों के प्रकाशन के दो वर्ष बाद मैंने जब दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रेमचंद पर अपना शोध-कार्य शुरू किया तो मुझे धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगा कि संपूर्ण साहित्य की खोज का दावा ठीक नहीं है और उनके निजी जीवन के दस्तावेजों तथा साहित्य की खोज के सिलसिले को कायम रखना होगा। इस प्रकार प्रेमचंद साहित्य पर शोध-कर्म के साथ उनके जीवन से संबंधित दस्तावेजों, पत्रों, पांडुलिपियों, फोटोग्राफों के साथ उनके अन्य लुप्त एवं अज्ञात साहित्य को भी खोजने एवं उसे समय-समय पर प्रकाशित करने का दायित्व भी जुड़ गया।

प्रेमचंद पर शोध-प्रबंध पूरा करने के बाद प्रेमचंद पर निरंतर खोज करने, अनुपलब्ध खोजे साहित्य को प्रकाशित करने तथा उसकी नई व्याख्या करने को मैंने अपने जीवन का मिशन बना लिया, परंतु यह विद्वत सभा क्या सोचेगी, मैंने अपने जीवन के पाँच दशक इस लक्ष्य को अर्पित कर दिए। मेरे लिए प्रेमचंद की संपूर्ण मूर्ति का प्रकाशन तथा समग्रता में उसका मूल्याकंन एक बहुत बड़ा काम है और उसे एक जीवन दिया जा सकता है। मेरे इस शोध-कर्म ने प्रेमचंद के संबंध में इन तीन दिशाओं को खोला—

१. उनके जीवन के दस्तावेजों की खोज और उनके अज्ञात तथ्यों का प्रकाशन।

२. हिंदी-उर्दू की अज्ञात एवं दुर्लभ रचनाओं को खोजना एवं प्रकाशित करना।

३. प्रेमचंद के विचार पक्ष का तथ्यों एवं प्रमाणों के आधार पर मूल्यांकन और दुराग्रही आलोचना से मुक्त करना।

मैं सबसे पहले उनके जीवन को लेता हूँ। प्रेमचंद के पुत्र अमृतराय ने अपने पिता की जीवनी 'प्रेमचंद : कलम का सिपाही' के नाम से लिखी थी और मदन गोपाल ने अंग्रेजी में 'मुंशी प्रेमचंद' तथा हिंदी में 'कलम का मजदूर' शीर्षक से लिखी थी। मैंने प्रेमचंद की जीवनी कालक्रम से तथा शोधात्मक रूप में लिखी थी, जो सन् १९८१ में 'प्रेमचंद विश्वकोश' के प्रथम खंड 'जीवनी' के नाम से छपी थी। मुझे उनके जीवन के कुछ ऐसे मूल दस्तावेज मिले, जिनके आधार पर नए सिरे से उनका जीवन लिखना आवश्यक हो गया। उनके परीक्षाओं के प्रमाण-पत्र, सर्विस बुक, पत्र, बैंक की पास-बुकें, डायरी आदि के सैकड़ों दस्तावेज मुझे खोज में मिले, जिनमें उनके जीवन के अनेक अज्ञात प्रसंगों, घटनाओं तथा स्थितियों की कहानी छिपी थी और जिनका उल्लेख उनके पुत्र अमृतराय तक ने उनकी जीवनी में नहीं किया था। मैं यहाँ कुछ का उल्लेख करूँगा, जिससे उनके जीवन के अज्ञात तथ्यों की जानकारी मिल सके—

प्रेमचंद साहित्य के मर्मज्ञ एवं सुप्रसिद्ध साहित्यकार। इकतालीस वर्षों से दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन। अब तक प्रेमचंद पर लगभग दो दर्जन पुस्तकों के अलावा अन्य साहित्यकारों पर भी बीस पुस्तकें प्रकाशित। इसके अलावा 'गांधी की पत्रकारिता' पर एक अनूठी पुस्तक। प्रेमचंद साहित्य के विशेषज्ञ के रूप में देश-विदेश में प्रसिद्धि। लंबी साहित्य-साधना के लिए विभिन्न संस्थाओं, एकेडमियों द्वारा सात पुरस्कार तथा मॉरीशस से एक सम्मान से सम्मानित।

आपने पढ़ा है कि प्रेमचंद गरीबी में पैदा हुए, गरीबी में जीये और गरीबी में मर गए। यहाँ तक कि उनके पास कफन तक के पैसे नहीं थे, किंतु सत्य इसके विपरीत है। उनकी सर्विस बुक उनके वेतन की कहानी कहती है। सन् १९०० में उनका वेतन २० रुपए मासिक था और १९२१ में १०० रुपए मासिक तथा १९३४ में बंबई में ८०० रुपए मासिक था। उनकी कहानियाँ हिंदी-उर्दू दोनों में छपती थीं, दोनों से लगभग २० रुपए कहानी का मिलता था। 'रंगभूमि' छपा तो सन् १९२४ में १८०० रुपए एडवांस मिला, सन् १९३६ में दिल्ली रेडियो स्टेशन पर कहानी का पाठ किया तो १०० रुपए मिले। यह १०० रुपए आज की मुद्रा में डेढ़ लाख रुपए होते हैं। सन् १९२९ में उन्होंने पुत्री के विवाह में ७००० हजार रुपए खर्च किए, जो आज लाखों रुपए होते हैं। उनकी बैंक की पासबुक मृत्यु से १४ दिन पहले का बेलेंस बताती है, जो ४४७१ रुपए है तथा दूसरी बैंक में ३०० रुपए बचे हैं। वह सारे तथ्य दस्तावेजों के आधार पर हैं। इनके उद्घाटन से हिंदी समाज में बड़ी हलचल हुई, किसी ने आलोचना की

और किसी ने प्रशंसा, किंतु कोई भी आलोचक दस्तावेजों को झूठा कहने का साहस नहीं कर पाया। हमारे प्रगतिशील आलोचक तो बौखला गए और अभद्र भाषा पर उतर आए। असल में सवाल मुझसे नहीं, अमृतराय से करना चाहिए था कि उन्होंने अपनी जीवनी में प्रेमचंद के आर्थिक जीवन के इन पक्षों को क्यों छिपाया?

प्रेमचंद ने अपनी पुत्री कमलादेवी का विवाह सन् १९२९ में किया था। उनके समधी के पत्रों से स्पष्ट है कि उन्होंने पुत्री के विवाह में दहेज दिया और विवाहोपरांत पुत्री की बीमारी पर पं. रामदास गौड़ से भूत-प्रेत को शांत करने के लिए यज्ञ कराया था।

प्रेमचंद की पत्नी शिवरानी देवी ने लिखा है कि मृत्यु से पूर्व उन्होंने कहा था कि उनका एक दूसरी स्त्री से संबंध था, किंतु अमृतराय ने इसका उल्लेख नहीं किया। मैंने उसे खोजने की कोशिश की, किंतु तब बहुत देर हो चुकी थी।

प्रेमचंद ने मार्च, १९३० से 'हंस' का प्रकाशन शुरू किया था, किंतु निरंतर घाटे के कराण उन्होंने उसे महात्मा गांधी को सौंप दिया। प्रेमचंद ने 'हंस' इस शर्त पर दिया था कि वह उनकी प्रेस में छपेगा और वे प्रेस के घाटे से बचे रहेंगे, किंतु ४ जुलाई, १९३६ को वर्धा में हुई 'हंस लिमिटेड' की बैठक में तय हुआ कि 'हंस' सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली से छपेगा और इस प्रकार ५० रुपए मासिक की बचत होगी। प्रेमचंद ने इस फैसले के बाद 'हंस' के संपादक पद से इस्तीफा दे दिया, किंतु महात्मा गांधी को, सेठ गोविंददास के नाटक 'सिद्धांत स्वातंत्र्य' के 'हंस' में छपने पर उसे बंद करना पड़ा।

प्रेमचंद की एक प्रेस थी—सरस्वती प्रेस। इसके मैनेजर थे प्रवासीलाल वर्मा 'मालवीय'। वह सन् १९२८ से १९३५ तक प्रेस में रहे और प्रेमचंद ने उन्हें गबन के आरोप में निकाल दिया। 'मालवीय' ने मामला महात्मा गांधी तक भेजा, किंतु कुछ समय बाद प्रेमचंद का देहांत हो गया। मुझे 'मालवीयजी' से लगभग २८ मूल पत्र मिले, जो प्रेमचंद ने उन्हें लिखे थे। इन पत्रों से प्रेमचंद का पक्ष कमजोर बनता है। अमृतराय की जीवनी में प्रवासीलाल वर्मा का उल्लेख तक नहीं है, जबकि वह इलाहाबाद में अमृतराय के पास ही रहते थे।

(१) सरस्वती प्रेस में ३-४ सितंबर, १९३४ में हड़ताल हुई तो प्रेमचंद ने मैनेजर को हिदायतें दीं और 'भारत' में दिए अपने स्पष्टीकरण में लिखा कि मैं खुद मजदूर हूँ, मजदूरों का दोस्त हूँ, किंतु कर्मचारियों द्वारा एक्सप्लॉयट हो रहा हूँ।

प्रेमचंद ने मार्च १९३० से 'हंस' का प्रकाशन शुरू किया था, किंतु निरंतर घाटे के करण उन्होंने उसे महात्मा गांधी को सौंप दिया। प्रेमचंद ने 'हंस' इस शर्त पर दी थी कि वह उनकी प्रेस में छपेगी और वे प्रेस के घाटे से बचे रहेंगे, किंतु ४ जुलाई, १९३६ को वर्धा में हुई 'हंस लिमिटेड' की बैठक में तय हुआ कि 'हंस' सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली से छपेगा और इस प्रकार ५० रुपए मासिक की बचत होगी। प्रेमचंद ने इस फैसले के बाद 'हंस' के संपादक पद से इस्तीफा दे दिया, किंतु महात्मा गांधी को, सेठ गोविंददास के नाटक 'सिद्धांत स्वातंत्र्य' के 'हंस' में छपने पर उसे बंद करना पड़ा। प्रेमचंद ने बीमारी की दशा में सरकारी खजाने में एक हजार जमा कराए और 'हंस' को हाथ में ले लिया और उनकी जीवितावस्था में 'हंस' का सितंबर अंक प्रकाशित हुआ और ८ अक्तूबर को उनका देहांत हो गया।

प्रेमचंद के जीवन की एक और घटना का उल्लेख करूँगा। प्रेमचंद के देहांत का जो वर्णन अमृतराय ने 'कलम का सिपाही' में किया है, उसमें वास्तविक तथ्यों की उपेक्षा हुई है। अमृतराय ने लिखा है कि बिरादरी के बीस-पचीस लोग ही उनके अंतिम संस्कार में उपस्थित थे और कोई साहित्यिकार नहीं था, जबकि सत्य यह है कि बनारस के कई साहित्यकार वहाँ उपस्थित थे। इनमें जयशंकर प्रसाद, राय कृष्णदास, परिपूर्णानंद वर्मा, नंदुलारे वाजपेयी, वाचस्पति पाठक आदि का प्रमाण मिलता है। परिपूर्णानंद वर्मा का एक संस्मरण मिलता है, जिसमें शवयात्रा एवं अंतिम संस्कार का वर्णन है। यह वर्मा प्रेमचंद के रिश्तेदार थे और अमृतराय इनसे बखूबी परिचित थे, किंतु उन्होंने उपलब्ध तथ्यों तक का उपयोग नहीं किया।

प्रेमचंद के जीवन के यह कुछ पक्ष हैं, जो मेरे शोध-कर्म से सामने आए हैं और इनका आधार मूल दस्तावेज रहे हैं। अत: इन्हें चुनौती नहीं दी जा सकती, लेकिन प्रेमचंद के जीवनीकारों—अमृतराय तथा मदन गोपाल आदि से यह पूछा जाना चाहिए था कि इन प्रसंगों को उनकी जीवनी में क्यों नहीं दिखाया? यदि यह उनके जीवन के अप्रिय प्रसंग थे, तब भी जीवनी में इन्हें स्थान मिलना चाहिए था।

प्रेमचंद के साहित्य की खोज का कार्य अमृतराय ने अप्राप्य एवं दुर्लभ रचनाओं की आठ पुस्तकों में प्रकाशित कराकर इतनी ऊँचाई पर पहुँचा दिया था कि कुछ और अप्राप्य रचनाओं के प्राप्त होने की कोई आशा बची नहीं थी, लेकिन मेरी जिज्ञासा तथा आशा-संभावना बनी हुई थी और इसके लिए वर्षों तक हिंदी-उर्दू पत्रिकाओं को खोजना एवं देखना तथा प्रेमचंद के समकालीन लेखकों से संपर्क करना आवश्यक था। मेरे पास कुछ ऐसे संकेत भी थे, जिनसें कुछ अनुपलब्ध रचनाओं के मिलने की आशा बनी हुई थी। इस खोज में मैंने अपने जीवन का बहुत बड़ा हिस्सा व्यतीत किया और सैकड़ों घंटों तक पुरानी लाइब्रेरियों की खाक छानी, अनेक लेखकों से संपर्क किया और एक के बाद एक अज्ञात दुर्लभ रचनाएँ सामने आने लगीं। मेरे पास लगभग २५ वर्ष में प्रेमचंद की रचनाओं का जो संग्रह हुआ, उसमें ३१ कहानियाँ, १२२ पुस्तक-समीक्षा, १४७ पत्र एवं प्रेमचंद को लिखे गए १७४ पत्र, २७ भूमिकाएँ तथा ९० लेख हैं तथा दस्तावेजों में अनुबंध-पत्र, इंटरव्यू, डायरी, रचनाओं की अंग्रेजी में लिखी रूपरेखाएँ, सेवा-पुस्तिका आदि के साथ अनेक फोटोग्राफ्स का संग्रह है। इन सबका संग्रह भारतीय ज्ञानपीठ ने सन् १९८८ में 'प्रेमचंद का अप्राप्य साहित्य' (दो खंड) नाम से प्रकाशित किया, जो लगभग १२०० पृष्ठों में है। इसका दूसरा संस्करण इसी वर्ष वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली से हुआ है और लगभग १०० पृष्ठों की और नई सामग्री जोड़ी गई है। प्रेमचंद की लुप्त रचनाओं को खोजने का यह सिलसिला अभी चलना

है, क्योंकि कुछ रचनाएँ अभी ऐसी हैं, जिनकी जानकारी है, किंतु पकड़ में नहीं आई हैं।

इस अप्राप्य सामग्री के मिलने से प्रेमचंद के साहित्य के संबंध में अनेक नई जानकारियाँ मिलती हैं। मैं यहाँ कुछ का ही उल्लेख करूँगा, क्योंकि विस्तार में जाने का समय नहीं है। मैं समझता हूँ, यह जानकारियाँ आप तक पहली बार पहुँच रही हैं। प्रेमचंद के कुछ उपन्यासों, कहानियों तथा लेखों की लेखन पूर्व रूपरेखाएँ अंग्रेजी भाषा में मिलती हैं। 'गो-दान' तक की रूपरेखा उपलब्ध है, जो अंग्रेजी में है और कुछ बिंदुओं, प्रसंगों आदि की रूप-रचना बदल दी है। प्रेमचंद रूपरेखा में गो-दान होरी के बेटे गोबर से कराते हैं, जबकि उपन्यास में धनिया बीस आने से गो-दान करती है। इन रूपरेखाओं से उनकी सर्जन-प्रक्रिया के अनेक रहस्यों का उद्घाटन हुआ है। 'गो-दान' की पांडुलिपि के दो ड्राफ्ट मेरे पास हैं, जिन पर अभी काम होना है। प्रेमचंद की ३१ नई कहानियों में तथा कुछ अन्य कहानियों में कुछ ऐसी कहानियाँ हैं, जिनसे हिंदी संसार प्राय: अपरिचित रहा है। उनकी उर्दू कहानी 'दोनों तरफ से' जो मार्च १९११ में प्रकाशित हुई थी, महात्मा गांधी के भारतीय रंगमंच पर आने से पहले ही वह इस कहानी में दलितों के उत्थान की कथा रच रहे थे, जबकि हमारे आलोचक मानते हैं कि गांधी के प्रभाव के कारण उन्होंने दलितों की समस्याओं की ओर ध्यान दिया था।

प्रेमचंद ने १९२९ में 'गमी' कहानी लिखी थी, जो जनसंख्या के नियंत्रण पर थी। उस समय अविभाजित भारत की जनसंख्या लगभग ३० करोड़ थी, आज १३० करोड़ है, पर कोई लेखक इस विषय पर कहानी नहीं लिखता। प्रेमचंद ने १९२९ में ही 'जिहाद' कहानी लिखी, जो आज के धार्मिक जिहाद की याद दिलाती है। उन्होंने भारत से गए गिरमिटिया मजदूरों पर 'शूद्र' कहानी लिखी, जो 'चाँद' पत्रिका के 'प्रवासी अंक' में छपी और मॉरीशस में होनेवाले अत्याचारों को पाठकों तक पहुँचाया। उनकी कहानी 'कैदी' भी यहाँ उल्लेखनीय है, जो उन्होंने रूस के क्रांतिकारी लेनिन के कामरेडों पर लिखी है, जिसमें प्रेमी-प्रेमिका के रूप में दो कामरेड जार के गवर्नर को मारने के प्रसंग में एक-दूसरे को धोखा देते हैं और प्रेमिका गवर्नर से शादी कर लेती है। प्रेमचंद जिस दृष्टि से रूसी कामरेडों को देख रहे थे, इसकी चर्चा कभी नहीं की गई। एक और कहानी है 'खेल', यह सन् १९३१ में उर्दू में छपी थी। यह गाँव के छोटे-छोटे बच्चों की कहानी है, जिसमें खेल और जीवन एक-दूसरे के पर्याय हो गए हैं।

आपने उनकी 'ईदगाह' कहानी पढ़ी होगी, उनकी विख्यात कहानी है, इसमें हामिद की संवेदनाओं तथा विवेक का सौंदर्य है, लेकिन 'खेल' में गाँव के बच्चे खेल-खेल में बाल-जीवन को साकार कर देते हैं। उनकी 'बालक' कहानी भी ऐसे प्रेमचंद की है, जिसे संभवत: आप नहीं जानते। इस कहानी का नायक जो अपढ़ ब्राह्मण है, अपनी पत्नी के नवजात बच्चों को, जिसका पिता कोई दूसरा व्यक्ति है, इस तर्क से अपनी संतान मानता है, 'यह बच्चा मेरा बच्चा है। मेरा अपना बच्चा है। मैंने एक बोया हुआ खेत लिया, तो क्या उसकी फसल को इसलिए छोड़ दूँगा कि उसे किसी दूसरे ने बोया था।' प्रेमचंद की यह मानवीय नैतिकता इतनी ऊँचाई तक पहुँचती है, जिसकी उस युग में कल्पना नहीं की जा सकती थी। मैं एक और कहानी 'रंगीले बाबू' की चर्चा करूँगा, जो १९३३ की है। इस कहानी का नायक ईश्वर की सत्ता को ललकारता है और अपने जीवन में आए भयंकरतम तथा क्रूरतम दु:ख में भी अपने रँगीलेपन और बाँकपन को बनाए रखता है। वह अपने दुल्हा बने पुत्र की अरथी की बारात निकालता है और इसे विवाह का उत्सव कहता है तथा हमारे लिए जीवन ही सत्य है, शेष सब मिथ्या है। आप 'कफन' कहानी में घीसू-माधव को कफन के पैसों से शराब पीते और मदमस्त होकर 'ठगिनी! क्यों नैना झमकावै' गाते-नाचते और अचेत होते देखते हैं तो मृत्यु की अपेक्षा जीवन ही सत्य प्रतीत होता है। यह दोनों पात्र अपने तर्कों से अपने आप पाप-कर्म को दबाकर अपने जीवन की सबसे बड़ी लालसा पूरी करते हैं। यद्यपि उनकी यह आनंदानुभूति अल्पावधि की है, परंतु वह उनके जीवन के सर्वोत्तम क्षण हैं। अत: 'कफन' मौत की नहीं, जिंदगी की कहानी है।

मैंने यहाँ कुछ ही उदाहरण रखे हैं, जिनसे हिंदी संसार प्राय: अपरिचित ही रहा है और मेरा कहना है कि 'ठाकुर का कुआँ', 'पूस की रात', 'सद्गति', 'कफन' आदि कहानियों को बार-बार चर्चा के केंद्र में लाकर प्रेमचंद के इस वैविध्यपूर्ण संवेदनात्मक संसार को दृष्टि से ओझल कर दिया गया है। आप प्रेमचंद को तीन या तेरह कहानियों से तथा उन्हें एक छोट से कठघरे में बाँधकर उनकी संपूर्ण रचनात्मकता के सौंदर्य की कैसे अनुभूति कर सकते हैं? प्रेमचंद के संदर्भ में आलोचकों के इस आधे-अधूरे मूल्यांकन और प्रस्तुतीकरण को अस्वीकार करते हुए उनके व्यापक वाङ्मय और सैकड़ों पात्रों के साथ-साथ चलना होगा और उन्हें संपूर्ण रूप से समझकर ही निष्कर्ष तक पहुँचना होगा।

प्रेमचंद के शोध की तीसरी दिशा है—उनका विचार पक्ष, जो प्रेमचंद आलोचना में इतनी बार चर्चा में रहा है कि किसी नई व्याख्या के सामने आने पर आलोचकों का आक्रमण शुरू हो जाता है। प्रेमचंद को विशेषत: दो विचारधाराओं से देखने तथा समझने की प्रवृत्ति रही है—एक गांधीवाद तथा दूसरा समाजवाद। प्रेमचंद की जीवितावस्था में उनके समकालीन आलोचकों ने प्राय: उनकी रचनाओं को गांधी के स्वराज्य आंदोलन के संदर्भ में देखा और स्वाधीनता के बाद रामदीन गुप्त की पुस्तक 'प्रेमचंद और गांधीवाद' ने उनकी गांधीवादी चेतना को और अधिक महत्त्व मिला, किंतु 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन को आधार बनाकर तथा डॉ. रामविलास शर्मा द्वारा कम्युनिस्ट पार्टी के नेताओं की सहमति के बाद अपनी प्रेमचंद पर लिखी दूसरी पुस्तक 'प्रेमचंद और उनका युग' से उन्हें समाजवादी घोषित करके एक वैचारिक आंदोलन शुरू कर दिया। 'प्रगतिशील लेखक संघ' से जुड़े लेखकों, प्रोफेसरों आदि का देश में एक विचार-समूह बन गया और पाठ्य-पुस्तकों, आलोचनात्मक ग्रंथों, संगोष्ठियों और बहसों में बस प्रेमचंद की मार्क्सवादी चेतना एवं समाजवाद को उनकी प्रमुख विचारधारा के रूप में स्थापित किया जाता। मेरे लिए यह एक चुनौती थी और मुझे इस मत की सत्यता एवं प्रमाणों को खोजना था। प्रेमचंद के साहित्य में इन दोनों ही विचारों के सूत्र मिलते हैं, जिनके

इतिहास को हमें देखना होगा। रूस के मार्क्सवाद से उनका परिचय गांधी के बाद में हुआ था। गांधी १९१५ में दक्षिण अफ्रीका से भारत आ गए थे और १९१६ में प्रेमचंद ने 'कर्मवीर गांधी' की भूमिका लिखी थी। गांधी के असहयोग आंदोलन पर उन्होंने सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया और आंदोलन पर कहानियाँ और 'प्रेमाश्रम' एवं 'रंगभूमि' जैसे उपन्यास लिखे। उनकी पत्नी शिवरानी पिकेटिंग में जेल गईं और प्रेमचंद ने गांधी-इर्विन पैक्ट का समर्थन किया तथा बहिष्कार आंदोलन पर कहानियाँ और उपन्यास लिखे। गांधी का वह स्वयं को 'चेला' मानते थे और उन्हें स्वाधीनता के 'जीते-जागते अवतार' कहते थे। उन्होंने अपने लेखों, टिप्पणियों में गांधी की बार-बार प्रशंसा की है और उनकी अहिंसा, सत्य, न्याय, धर्म, रामराज्य, ट्रस्टीशिप, ग्राम चेतना तथा पश्चिमी सभ्यता के विरोध का समर्थन किया है।

समाजवाद के समर्थन और विरोध १९१९ से मिलते हैं, परंतु इनमें समर्थन में कम और विरोध में ज्यादा हैं। रूस में बोल्शेविक क्रांति अक्तूबर १९१७ में हुई थी, किंतु प्रेमचंद फरवरी १९१९ में छपे अपने लेख 'नया जमाना, पुराना जमाना' में रूस की नई सभ्यता की चर्चा करते हैं और कुछ के समर्थन के बाद लिखते हैं कि इस जनतंत्र का अत्याचार पूँजीपतियों से भी अधिक घातक सिद्ध हो सकता है। वह २१ दिसंबर, १९१९ को एक पत्र में लिखते हैं कि मैं करीब-करीब बोल्शेविक उसूलों का कायल हो गया हूँ, लेकिन इसके बाद प्रकाशित उपन्यास 'प्रेमाश्रम' और 'रंगभूमि' में वह गांधी के दर्शन को प्रमुखता देते हैं और उसे अपने प्रतिपाद्य का अंग बनाते हैं। प्रेमचंद इसके बाद रूस की समाजवादी व्यवस्था और उसकी रीति-नीति की आलोचना करते चलते हैं। वह 'स्वदेश' में १८ मार्च, १९२८ को लिखते हैं कि साम्यवाद में पूँजीवाद की विषमता, अन्याय और स्वार्थपरता अणु मात्र भी कम नहीं होगी बल्कि उससे भी भयंकर होने की संभावना है। उन्होंने २२ मई, १९३३ में लिखा कि रूस भी 'विचार का साम्राज्य' चाहता है और मानते हैं कि वह भ्रम में थे कि रूस ने पूँजीवाद पर विजय प्राप्त करके नई समाज व्यवस्था कायम कर ली है। प्रेमचंद इसी समय यह भी भविष्यवाणी करते हैं कि रूस में जनता शासन के प्रजा विरोधी होने पर उसे बदल देगी।

इसी कारण वह अंतिम वर्षों में बार-बार कहते हैं कि वह लाल क्रांति नहीं चाहते, श्रेणियों में संग्राम नहीं चाहते, क्योंकि क्रांति बुरी डिक्टेटरशिप में पहुँचा सकती है। हमारे प्रगतिशील आलोचक 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन में १० अप्रैल, १९३६ को दिए गए व्याख्यान को प्राय: उद्धृत करते हैं और उसे प्रेमचंद की समाजवादी मान्यताओं की स्वीकृति के रूप में प्रस्तुत करते हैं, लेकिन इसमें एक भी शब्द ऐसा नहीं है, जो समाजवादी दर्शन की स्थापना करता हो। प्रेमचंद इस व्याखान में 'प्रगतिशील' शब्द को ही निरर्थक कहते हैं और 'आध्यात्मिक आनंद', 'आध्यात्मिक संतोष' आदि की बार-बार चर्चा करते हैं तथा 'मन का संस्कार' को साहित्य का लक्ष्य मानते हैं। डॉ. नामवर सिंह, डॉ. शिवकुमार मिश्र जैसे मार्क्सवादी आलोचक मानते हैं कि प्रेमचंद को समाजवाद का शास्त्रवत तथा संगत ज्ञान नहीं था, लेकिन यह उनका बचाव का तर्क है। उन्होंने १९२५ के एक लेख में मार्क्स का उल्लेख किया है, लेकिन भाईचारा एवं समता का श्रेय हजरत मोहम्मद को देते हैं। उनके लेखों में जार, लेनिन, स्टालिन, वर्ग-संघर्ष, क्रांति, सर्वहारा आदि की बराबर चर्चा मिलती है। अत: उन्होंने मार्क्स के समाजवादी दर्शन की पूरी जानकारी के बाद उसे अस्वीकार कर दिया था।

अंत में प्रेमचंद की विचारधारा के निर्धारण में उनके इन लक्ष्यों को ध्यान में रखना आवश्यक है। प्रेमचंद ने लिखा है कि उनके लेखन के दो उद्देश्य हैं—स्वराज्य की प्राप्ति और भारतीय आत्मा की रक्षा। यह दोनों परस्पर संबद्ध हैं। स्वराज्य मिलेगा तो भारतीय आत्मा एवं भारतीय चेतना तथा भारतीय विवेक की रक्षा होगी। इसी भारतीय आत्मा के साथ उनका साहित्य-दर्शन 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' जुड़ा है। इसमें जो आदर्श है, वह भारतीय आत्मा का ही प्रतीक है। प्रेमचंद साहित्य की विराटता और विविधता में भारतीयता के दर्शन होते हैं। भारतीय आत्मा की खोज और उसकी रक्षा उस युग का धर्म था। इसी भारतीय आत्मा को गांधी 'हिंद स्वराज्य' में, मैथिलीशरण गुप्ता 'भारत भारती' में, प्रेमचंद 'सोजेवतन' में तथा जवाहरलाल नेहरू 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' में तलाश रहे थे। अत: प्रेमचंद को इस भारतीयता का लेखक कहना मुझे सार्थक लगता है। प्रेमचंद की भारतीयता में जो भारतीय आत्मा है, वह अनेक रूपात्मक है और उसके अंग है—राष्ट्रप्रेम, स्वराज्य, सांस्कृतिक एवं मूल्यवादी उत्कर्ष, इतिहास की समकालीनता, सामाजिक जागरण और सामरस्य एवं एकता, गांधी के सत्य-अहिंसा-धर्म और न्याय, दलित-पीड़ित-शोषित की मुक्ति तथा समतामूलक जीवन, धर्म एवं धन के अतिचारों का विरोध, मुनष्य का देवत्व तक उत्कर्ष, आदर्श जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा, सांप्रदायिक समरसता आदि।

प्रेमचंद की यह भारतीयता भारत राष्ट्र की समग्र चेतना है और समग्र राष्ट्र जीवन का आधार है। इस भारतीयता में वर्जना और ग्रहणशीलता, यथार्थ और आदर्श दोनों हैं। केवल यथार्थवाद के आधार पर प्रेमचंद की भारतीयता की कल्पना अधूरी है। इसमें तुलसीदास का यह भाव समाहित है, 'मंगल भवन अमंगल हारि'। प्रेमचंद ने कहा था कि वह उपन्यास और कहानी के योरोपीय कलेवर पर भारतीयता की छाप लगाना चाहते हैं। यही कारण है कि उनकी भारतीयता में हिंदूवाद, राष्ट्रवाद, गांधीवाद, मानववाद, साम्यवाद आदि सभी किसी-न-किसी रूप तथा मात्रा में समाविष्ट हैं। इसमें से कोई भी एक विचारधारा प्रेमचंद के विराट् औपन्यासिक संसार को प्रकट करने का दावा नहीं कर सकती, इसीलिए वे भारतीय आत्मा के शिल्पी हैं। इसी कारण प्रेमचंद वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास, कबीर आदि की परंपरा में आते हैं और उनके समान ही कालत्रयी बनते हैं। भारतीय साहित्य तथा भारतीयता के गायकों एवं कथाकारों का यही सत्य है। भारत की समग्र अस्मिता, आत्म-बोध एवं समग्र विवेक चेतना को वाणी देनेवाला साहित्यकार ही भारत के लोकमानस का हृदय-सम्राट् बन सकता है।

ए/९८, अशोक विहार, फेज प्रथम, दिल्ली-११००५२
दूरभाष : ९८११०५२४६९

सुधा आज भी रोती है

● वासुदेव

''अरे सोम! गाड़ी निकालो!''

''जी, छोटी मालकिन! अभी निकालता हूँ।''

''पहले गुलाब का एक फूल मेरे बालों में लगा दो।''

''लेकिन क्या ऐसा करना मेरे लिए ठीक होगा?''

''क्या ठीक होगा, क्या नहीं, यह मैं नहीं जानती। पर मैंने जैसा कहा, वैसा करो। कॉलेज को देर हो रही है।''

''देर हो रही है, इसके लिए मैं कहाँ से दोषी हूँ? मैं तो तैयार हूँ। लेकिन मैं अपने हाथ से आपके बालों में फूल नहीं लगा सकता!''

''क्या कहा रे? तू अपने हाथ से फूल नहीं लगा सकता?···मतलब कि तू मेरा कहा नहीं मानेगा? तो ठीक है, आज मैं भी कॉलेज नहीं जाती! मालिक को जवाब देना।''

''नहीं छोटी मालकिन, आप ऐसा नहीं कर सकतीं। पर आप ही सोचिए, यदि मैं अपने हाथ से आपके बाल में फूल लगाऊँगा तो जो देखेगा, वह क्या समझेगा?''

''समझे मेरी जूती!''

''आप गुस्सा न हों, छोटी मालकिन। मैं अभी आपके लिए फूल लेकर आता हूँ और···''

''अरे लाल नहीं, सफेद गुलाब!''

''हाँ, ऐसे···! जरा मन से···हाँ!''

''मुझे शरमिंदा न करें छोटी मालकिन!''

''हाय! कैसा मादक स्पर्श है रे! मेरा तो सारा बदन रोमांचित···।''

''मुझे माफ कर दीजिए, छोटी मालकिन। आपके कहने पर···।''

''ऊँ हूँ! ऐसे माफ नहीं करूँगी! पहले वादा करो कि कल से हर रोज कॉलेज चलते समय तू इसी तरह मेरे बालों में अपने हाथों से फूल सजा दिया करेगा।''

''नहीं छोटी मालकिन, मैं ऐसा नहीं कर सकता।''

''क्यों नहीं कर सकता?''

''मैं एक मामूली सा ड्राइवर, ऐसी गुस्ताखी भला कैसे कर सकता हूँ?''

''सोम···ऊपर आओ।''

''अभी आया बड़ी मालकिन!''

''खबरदार, जो ऐसी गुस्ताखी फिर कभी की तो मैं तुम्हारी चमड़ी उधेड़ दूँगी।''

सुपरिचित साहित्यकार। अब तक 'इस जंगल के लोग', 'नई बहू की आँखें', 'पुँश्चली', 'दहशतगर्द', 'शामगाह', 'महापाश', 'सुबह के इंतजार में', 'निगोड़ी' (कहानी-संग्रह); 'अरण्यगाथा', 'गाँव-गंध', 'नई बहुरिया' (उपन्यास) प्रकाशित। कई सम्मान तथा पुरस्कारों से सम्मानित।

''जी बड़ी मालकिन।''

''उसकी कोई गलती नहीं है। फूल लगाने को मैंने कहा था। तुमने तो नाहक इसे थप्पड़ मार दिया।''

''तुम चुप रहो लड़की। मार लगी, ठीक हुआ। अब यह दुबारा ऐसी हिम्मत नहीं करेगा। यदि करेगा तो मैं इसकी जान ले लूँगी।''

''नहीं करूँगा बड़ी मालकिन, कान पकड़ता हूँ।''

''चलो, बड़ा आया कान पकड़नेवाला। कॉलेज को देर हो रही है।''

''सोम, गाड़ी धीरे चलाओ, तुम से बात करनी है।''

''लेकिन मुझे आपसे कोई बात नहीं करनी है।''

''तो क्या तुम गुस्से में हो?''

''आप से गुस्सा करके मैं कहाँ रहूँगा, छोटी मालकिन? परंतु यदि मेरी पिटाई से आपको सुकून मिलता है तो···।''

''एक मामूली ड्राइवर अपने मालिक की खूबसूरत जवान बेटी के बाल में फूल सजाते हुए रँगे हाथ पकड़ा जाए और सजा के तौर पर एक-दो थप्पड़ मारकर उसे छोड़ दिया जाए, क्या यह भी कोई सजा है?''

''यानी मेरी पिटाई से आप खुश हुईं न!''

''कैसी खुशी सोम? तुम कब समझोगे कि थप्पड़ तो तुम्हें पड़ा, पर चोट मुझे लगी।''

''छोटी मालकिन···?''

''हाँ सोम, मैं सच कहती हूँ। तुम मुझसे अलग नहीं हो।''

''कॉलेज आ गया, छोटी मालकिन!''

''ओ···हाँ···! ठीक है। ठीक चार बजे आ जाना। मैं आज टिटोरियल क्लास नहीं करूँगी।''

☐

''सोम, जरा मेरे हाथ-पाँव मिस दो। आज मैं बहुत थकी हूँ।''

''नहीं छोटी मालकिन, मैं हाथ जोड़ता हूँ। मैं ऐसा नहीं कर सकता।''

''तो क्या तू मेरा कहा नहीं मानेगा? तुम्हारी ऐसी हिम्मत···।''

''ऐसी बात नहीं है, छोटी मालकिन। भला आपका कहना मैं क्यों नहीं मानूँगा? आपकी सेवा के लिए ही तो मैं हूँ। पर सच तो यह है कि यदि बड़ी मालकिन ने देख लिया तो फिर मेरी खैर नहीं।''

''तो क्या मार के डर से मेरा कहा नहीं मानेगा?''

''मार से तो भूत डरता है, छोटी मालकिन। मैं तो एक अदना सा आदमी हूँ।''

''जब तुमको मालिक-मालकिन का इतना ही डर सताता है तो तू यहाँ से भाग क्यों नहीं जाता?''

''आपने कसम दी है, छोटी मालकिन। इसलिए पूरी कहानी आपको सुननी पड़ेगी। मैं बताने को बाध्य हूँ और आप सुनने को। माँ वैसी चाल-चलन की तो थी नहीं। किसी तरह बचकर भाग निकली थी। पर जब मेरे बाप को पता चला तो उसने माँ को वहाँ जाने से मना कर दिया। पर साहब भला कब माननेवाले थे। वह तो बलजोरी से माँ को अपने पास रखना चाहते थे। बार-बार उनका सिपाही आकर धमका जाता था। जब बाप ने विरोध किया तब एक रात एक फर्जी मुठभेड़ में अपराधी करार देकर उसे मरवा दिया···लोग कहते हैं, उसी के बाद साहब का प्रमोशन···।

''भागकर भी कहाँ जाऊँगा? इस दुनिया में मेरा अपना और कौन है?''

''तो क्या तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं?''

''होते तो मैं यहाँ से भाग नहीं जाता?''

''तो तू बीच-बीच में कहाँ जाता रहता है?''

''आपसे क्या छिपाना, छोटी मालकिन। दरअसल मेरी एक माँ है, धरम की माँ। उसी ने मेरा पालन-पोषण किया है। जब कभी जी घबराने लगता है, मैं जब जीवन से ऊबने लगता हूँ। तब मैं उसी के पास चला जाता हूँ। न जाने क्यों वहाँ मुझे बहुत सुकून मिलता है।''

''ओ···तो ऐसी बात है! लेकिन तुम्हारी वह धरम की माँ रहती कहाँ है?''

''पुलिया के नीचे बहनेवाले नाले के किनारे-किनारे जो ढेर सारी खोलियाँ बनी हुई हैं, वहीं एक खोली में मेरी वह माँ रहती है।''

''अरे, यह तू क्या कहता है? वह तो शहर का वर्जित स्थान है, जहाँ भले लोग भूल से भी नहीं जाते!''

''लेकिन वहाँ जीवन है छोटी मालकिन और जिंदगी भी है।''

''हाँ, है भिखमंगों, कोढ़ियों, लावारिसों आदि की जिंदगी···।''

''तो क्या उनकी जिंदगी जिंदगी नहीं होती, छोटी मालकिन?''

''होती है रे···। तो क्या वह भी भीख माँगती है?''

''भिखारिन भीख ही माँगेगी, छोटी मालकिन।''

''लेकिन तू वहाँ क्यों जाता है?''

''उसकी खोज-खबर लेने और अपना दु:ख-दर्द बाँटने।''

''तो क्या तुम्हारा बाप भी भिखारी ही था?''

''नहीं, एकदम नहीं।''

''तो फिर क्या था?''

''एक अपराधी···!''

''आई मीन क्रिमिनल?''

''शायद···!''

''तो क्या तू एक क्रिमिनल का बेटा है?''

''काश! यह सच होता!''

''क्या मतलब है तुम्हारा?''

''निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मेरा बाप क्रिमिनल था। लेकिन यह सच है कि वह एक एनकाउंटर में मारा गया।''

''लेकिन एनकाउंटर में तो क्रिमिनल ही मारा जाता है।''

''नहीं, ऐसा नहीं होता! कभी-कभी तो निरपराध भी मारे जाते है।''

''मतलब कि तुम्हारा बाप निरपराधी था?''

''शायद आप ठीक कहती हैं, छोटी मालकिन?''

''लेकिन ऐसा तू किस आधार पर कह सकता है?''

''काश, मेरा आधार गलत होता!''

''तो फिर सच क्या है?''

''आपके लिए यही बेहतर होगा छोटी मालकिन कि आप सच्चाई न जानें।''

''लेकिन मैं सच्चाई जानना चाहती हूँ।''

''और मैं आपको बताना नहीं चाहता हूँ।''

''लेकिन क्यों?''

''क्योंकि कभी-कभी सच बहुत कड़वा होता है, छोटी मालकिन।''

''भला तुम्हारे उस कड़वे सच से हमारा क्या मतलब हो सकता है?''

''कहीं आपको ऐसा लगे कि उस कड़वे सच से आपका भी ताल्लुक हो!''

''फिर तो मैं उस कड़वे सच को जानना चाहती हूँ। बताओ, तुम्हें मेरी कसम!''

''कसम देकर आपने मुझे धर्मसंकट में डाल दिया छोटी मालकिन। अब आप सुनना ही चाहती हैं तो सुनिए। मेरी माँ कुँवर साहब के यहाँ दाई का काम करती थी। एक दिन एकांत पाकर साहब ने उसके साथ जोर-जबरदस्ती की।''

''चुप करो, सोम!'' आगे एक शब्द भी मुँह से निकाला तो···।''

''आपने कसम दी है, छोटी मालकिन। इसलिए पूरी कहानी आपको सुननी पड़ेगी। मैं बताने को बाध्य हूँ और आप सुनने को। माँ वैसी चाल-चलन की तो थी नहीं। किसी तरह बचकर भाग निकली थी।

पर जब मेरे बाप को पता चला तो उसने माँ को वहाँ जाने से मना कर दिया। पर साहब भला कब माननेवाले थे। वह तो बलजोरी से माँ को अपने पास रखना चाहते थे। बार-बार उनका सिपाही आकर धमका जाता था। जब बाप ने विरोध किया तब एक रात एक फर्जी मुठभेड़ में अपराधी करार देकर उसे मरवा दिया···लोग कहते हैं, उसी के बाद साहब का प्रमोशन···।

''तो क्या मेरे पिता तुम्हारे बाप के हत्यारे हैं?''

''यह मैं कैसे कह सकता हूँ, छोटी मालकिन!''

''लेकिन अभी-अभी तो तुमने कहा?''

''हाँ, मैंने कहा तो, पर मुँह ने केवल कहा, लेकिन उसने देखा तो नहीं। आँख ने यदि देखा भी तो वह बोल तो नहीं सकती। कान भी केवल सुन सकते हैं पर वह बोल नहीं सकते और न ही देख ही सकते हैं। अब आप किसे सच मानेंगे और किसे झूठ, फैसला तो आपके पास है।''

''उन दिनों कितने वर्ष का था तू?''

''यही कोई तीन-साढ़े तीन साल का।''

''सच बताकर तुमने फिर लीपा-पोती क्यों कर दी?''

''मुझे अपनी औकात की चिंता हो आई थी छोटी मालकिन। मैंने जमीन पर रहकर चाँद पर थूकने का दुस्साहस जो किया था, छोटी मालकिन! आप चाहे तो मेरी धृष्टता की सजा भी दे सकती हैं।''

□

''अरे सोमरा की औलाद, तुम्हारी यह हिम्मत कि तू मेरी बेटी के देह-हाथ छुओ और···! उस दिन मना किया था न कि ऐसी गलती फिर कभी न करना।''

खटाक-खटाक

''स्स्साला···नमकहराम! बदजात! जिस पत्तल में खाता है, उसी में छेद करता है।''

''इसे मत मारो। इसमें इसकी कोई गलती नहीं है। इसे तो मैंने ही कहा था पाँव दबाने के लिए। तुमने तो बिना सोचे-समझे ही इस पर हाथ छोड़ दिया।''

''बेवकूफ लड़की! तू चुप रह, इतनी बड़ी हो गई, पर जरा भी होश नहीं। ड्राइवर-तराइबर से देह-हाथ दबवाती है। यही तुम्हारा स्टैंडर्ड है, आने दो साहब को। आज मैं अपना मुँह जरूर खोलूँगी। और तू भाग यहाँ से। स्साला हरामी का पिल्ला। जिस पत्त में खाता है—उसी में छेद करता है। फिर कभी ऐसी गुस्ताखी की तो गोली मार दूँगी।'' खटाक! खटाक!

''बाप रे, माई रे!''

''तुम कितनी निर्दयी हो। माथा फोड़ दिया। देखो तो, कितना खून निकल रहा है।''

''जाओ, नर्स बनकर उसकी सेवा करो, बेवकूफ लड़की!''

''उपचार तो मैं करूँगी ही। पर तुम उस पर और कितना अत्याचार करोगी? बरदाश्त की भी सीमा होती है। कल वह भाग गया तो? केवल पेट पर एक साथ नौकर, ड्राइवर, नौकरानी—सब। कहाँ से आएगा?''

''तो क्या ड्राइवर को कोकड़ा खा गया है, जो हम अपनी इज्जत-प्रतिष्ठा पर हाथ फेरनेवाले को ड्राइवर बनाए रखें। आखिर इस कुकुर के पिल्ला सोम में ऐसा क्या है कि तुम इसे छाती से लगाए रखना चाहती हो, बेवकूफ लड़की?''

''क्या आप नहीं जानतीं? मुझे तो आप पर तरस आता है।''

''तुम्हें मुझ पर तरस खाने की जरूरत नहीं है। पर यह सच है कि उसके साथ जो कुछ भी होता है, इसका कारण तुम हो, केवल तुम।''

''वाह! रात-दिन तुम इससे बेगार कराओगी। ऊपर से गालियाँ दोगी, खून बहाकर मारोगी और कहोगी कि इसके साथ जो कुछ भी होता है, इसका कारण मैं हूँ!''

''हाँ···हाँ···तुम हो। तू इस ड्राइवर के बच्चे के चलते हम सबकी नाक कटवाने पर तुली हो। आखिर तू इसे अपने से दूर क्यों नहीं रखती है?''

''तुम नौकरानी नहीं रखोगी। नौकरानी का काम ड्राइवर से लोगी। जब मैं उससे अपना काम कराऊँगी, तब तुम इसका गलत अर्थ लगाओगी। और तुम हो कि मेरा काम करोगी नहीं। अब तुम्हीं बताओ कि मैं क्या करूँ?''

''इसका मतलब यह तो नहीं कि तू उससे अपने बालों में फूल लगवाओ, देह-हाथ दबवाओ, पीठ में साबुन लगवाओ, हँसी-मजाक करो, पलंग पर बैठकर चोंच लड़ाओ! निर्लज्जता की भी सीमा होती है।''

''यह सब वह मेरे आदेश पर मर्यादा के अंतर्गत करता है और इन के पीछे उसका कोई गलत उद्देश्य नहीं होता।''

''कैसे कह सकती हो तुम कि उसकी कोई गलत भावना नहीं रहती। जहाँ आग और खर रहेंगे, वहाँ तो आग लगेगी ही!''

''ओ···तो तुमको आग लगने का डर है। तो क्या इस घर में कभी वैसी आग लगी ही नहीं?''

''चुप करो लड़की! कुछ तो शरम करो!''

''चीखो मत! दीवारों के भी कान होते हैं।''

''होते हैं, पर इस घर की दीवारें चीखें सुनती-सुनती बहरी हो गई हैं।''

''मैं तुमसे मुँह लगना नहीं चाहती। साहब को आने दो। वे ही तुमको ठीक करेंगे। लगता है, अब मुझे अपना मुँह खोलना ही पड़ेगा।''

''ऐ, तुम क्या मुँह खोलोगी? पहले अपने अंदर तो झाँको, फिर

मुझ पर तोहमत लगाना। ऊँह! चलनी हँसे सूप को, जिसमें अपने पचहत्तर गो छेद।''

''इतनी बेशर्मी भी ठीक नहीं। धरती फट जाती और मैं उसी में समा जाती तो कम-से-कम यह दिन तो नहीं न देखना पड़ता।''

□

''सोम, क्या तुमको अपने माँ-बाप याद हैं?''

''बाप तो नहीं, पर माँ थोड़ी-थोड़ी याद है।''

''कैसी थी वह?''

''पुलिया के नीचे जो माँ है न, ठीक वैसी।''

''वह मरी कैसे?''

''पता नहीं। पर जैसा मैंने सुना था, बाप के मरने के बाद साहब ने उसे फिर से नौकरानी बनाकर रख लिया था। पर थोड़े ही दिनों बाद एक रात वह मुझे सोया छोड़कर भाग गई, फिर कभी उससे मेरी भेंट नहीं हुई।''

''यह सब तुमको किसने बताया?''

''उसी धरम की माँ ने।''

''यह सब उसे कैसे पता है?''

''क्या पता? मैंने भी कभी पूछा नहीं। पर कहती है कि वह सब जानती है।''

''फिर भी तुम भाग्यशाली हो। कम-से-कम एक वैसी औरत तो है, जिसे तुम माँ कह सकते हो, जिससे अपना दु:ख-तकलीफ बाँट सकते हो। लेकिन मुझे तो अपनी माँ की शक्ल भी याद नहीं है।''

''पर ऐसा कैसे हो सकता है? जिस माँ ने जन्म दिया···!''

''वही तो मैं बता रही हूँ।···जन्म के साथ ही किसी ने मेरा अपहरण कर लिया था। मैं अपनी जन्म देनेवाली माँ से बिछुड़ गई थी। फिर आज तक मेरी वह माँ मुझे नहीं मिली।''

''तो क्या साहब ने तुम्हारी चोरी करवाई थी?''

''हाँ, साहब ने अथवा साहब ने किसी और से।''

''लेकिन क्यों?''

''इसलिए कि उस औरत की अपनी कोई संतान नहीं थी।''

''मतलब कि यह औरत आपकी माँ नहीं है?''

''नहीं। इस औरत ने तो कोई बच्चा जना ही नहीं।''

''यानी इन दोनों को अपनी कोई संतान है ही नहीं?''

''सच्चाई तो यही है!''

''हाँ, तो यह औरत साहब की जिंदगी में कैसे आई?''

''पहली पत्नी की जिंदगी से ही दोनों एक-दूसरे को चाहते थे। जब वह मर गई, तब इस औरत ने अपने पति को छोड़ दिया और यहाँ आकर रहने लगी। फिर तब से यहीं पड़ी है।''

''यह डी.एस.पी. बहुत घटिया विचार का आदमी है। न तो इसका कोई व्यक्तित्व है और न ही कोई चरित्र है।''

''मुझे तो यह औरत भी बहुत खतरनाक लगती है।''

''खतरनाक ही नहीं बल्कि सियारिन जैसी धूर्त और चुहिया जैसी महत्त्वाकांक्षिणी भी।''

''डी.एस.पी. को पोटे हुए है। उसकी कमाई से यह अपना और अपने मैके का घर भर रही है। जाने साहब को इसमें कौन-सी ऐसी चीज दिख गई कि वह इस पर फिदा हो गए!''

''ढलती उम्र में जवान औरत का साहचर्य-सुख और क्या?''

''आप साहब को कुछ नहीं कहतीं?''

''मेरे चित्त पर वह कभी नहीं चढ़े। वैसे भी मुझे इसकी संपत्ति और धन-दौलत से कोई मोह नहीं है। हाँ लो, पीठ में जरा साबुन लगा दो। रगड़कर मैल भी छुड़ा देना। तौलिया वहाँ है।''

''तो क्या आज आपने फिर मार खिलाने का मन बना लिया है।''

''यही तो देखना है कि आज यह क्या करती है? यदि उसने आज फिर कोई हरकत की तो मैं नहीं छोड़ूँगी।''

''लेकिन साहब भी तो इसी का साथ देते हैं।''

''लेकिन एक दिन जब इससे भी मन भर जाएगा तो वह दूध की मक्खी की तरह इसे निकाल बाहर करेगा। बस, नई को आने भर की देर है।''

''लगता है, इनके स्वभाव से आप भली-भाँति परिचित हैं।''

''किसी भी मर्द के लिए औरत का रोग बहुत खतरनाक होता है। जिस मर्द को यह रोग लग जाता है, वह हमेशा नई की तलाश में रहता है। यही सच है। डी.एस.पी. उसी रोग का शिकार है।''

''तब तो आपको भी सावधान रहना पड़ेगा?''

''नहीं। वैसा कुछ भी नहीं। मुझे उससे डरने की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि दुनिया जानती है कि मैं उसकी बेटी हूँ और इसलिए वह मुझे अपना मुँह खोलने का मौका नहीं देना चाहेगा। वैसे मैं सावधान रहती हूँ।''

''एक बेटी को अपने ही बाप से सावधानी! कितनी हास्यास्पद और निकृष्ट बात लगती है यह! हमारे समाज का इससे भी अधिक अधपतन हो सकता है क्या? ऐसे बाप को गोली मार देने में कोई पाप नहीं है।''

''आज हमारे समाज से पाप-पुण्य, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, नीति-अनीति; सब गायब होते जा रहे हैं और वे ही सब बच गए हैं, जो नजर के सामने हैं तथा हमारे समाज में दिन-प्रतिदिन जो घट रहे हैं।''

''छोटी मालकिन, मैं आपको ब्रह्मा और सरस्वती की कथा सुनाता हूँ।''

□

''अरे सोम की औलाद, तुमने तो जैसे हमारी इज्जत-प्रतिष्ठा पर डाका डालने की कसम खा रखी है। मैं तुमको जितना मना करती हूँ, तू तो उतना ही सर चढ़ता जाता है।''

''आज मैं साहब से कहकर तुम्हारा एनकाउंटर करवा दूँगी।''

''अब पानी सिर से ऊपर जाने को है। तुम्हारे लिए अब बस एक ही सजा है, मौत हाँ, मौत!''

''मुझे माफ कर दीजिए बड़ी मालकिन, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मैंने तो केवल छोटी मालकिन का हुकुम बजाया है।''

''छोटी मालकिन का हुकुम! उसने कह दिया और तुमने मान लिया? तब तो इसकी इज्जत-आबरू से खेलने में भी तुमको संकोच नहीं होगा? और तू री कसमिनिया! शरम-हया सब धोकर पी गई। एक मामूली ड्राइवर के साथ इस तरह अर्धनग्न अवस्था में! छिह। तरस आता है तुम्हारी गंदी हरकत पर!''

''खबरदार जो आगे एक लफ्ज भी जुबान पर लाई तो मैं तुम्हारा गला दबोच दूँगी। मैंने इससे प्यार किया है और प्यार में अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, कुछ भी नहीं देखा जाता।''

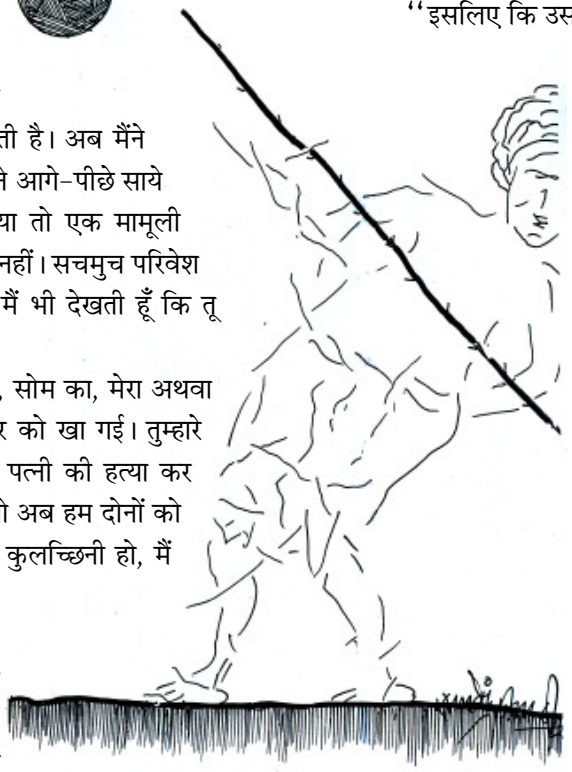

''मेरा संदेह सही निकला। आखिरकार आज तुमने बोल ही दिया कि कुत्ते के इस पिल्ले से तू प्यार करती है। अब मैंने समझा कि तू क्यों इस बदजात को अपने आगे-पीछे साये की तरह रखती है। अरे प्यार भी किया तो एक मामूली ड्राइवर से, जिसके माँ-बाप का भी पता नहीं। सचमुच परिवेश बदलने से संस्कार नहीं बदल जाता।...मैं भी देखती हूँ कि तू कैसे इससे प्यार करती है।''

''किसका एनकाउंटर करवाओगी, सोम का, मेरा अथवा हम दोनों का? पहले तो तू अपने भतार को खा गई। तुम्हारे कारण इस पुलिस अधिकारी ने अपनी पत्नी की हत्या कर दी। फिर भी तुम्हारा हिया नहीं जुड़ाया तो अब हम दोनों को मरवाने पर आमदा हो! तुम कुलटा हो, कुलच्छिनी हो, मैं तुम पर थूकती हूँ!''

□

''आपने ऐसा क्यों कहा छोटी मालकिन? आपने झूठ क्यों कहा?''

''मैं इस लायक कहाँ हूँ कि आपसे प्यार करने की बात सोचूँ। वह साहब से कहेगी और साहब मुझे एनकाउंटर करवा देंगे।...बस, सारा खेल खत्म।''

''मैंने जो कुछ भी कहा है, सोच-समझकर कहा है। हम दोनों बालिग हैं और अपने भविष्य के बारे में फैसला लेने का हमें हक है।''

''लेकिन मुझमें इतनी हिम्मत कहाँ है कि मैं आप से प्यार करने के बारे में सोच भी सकूँ?''

''हिम्मत तो लानी होगी, सोम। सामर्थ्य जुटानी होगी। तभी हम दोनों इस नरक से मुक्त हो सकेंगे!''

''लेकिन मैं तो एक मामूली ड्राइवर हूँ। भला मैं आपको कौन सा सुख दे सकूँगा?''

''थोड़ा सा प्यार, जिसके लिए मैं आज तक तरसती रही हूँ। तू मुझे सच्चा प्यार देगा। उसी में मुझे जीवन का सच्चा सुख मिलेगा।''

''लेकिन मैं वह प्यार आपको कहाँ से कैसे दे सकूँगा? मेरी तो हर एक साँस दूसरे के पाँव तले दबी है।''

''हमें इस गुलामी से तो मुक्त होना ही है। मेरे खातिर तुमको ऐसा करना ही होगा। हम दोनों मुक्ति चाहते हैं, अपनी मुक्ति। चाहे इसके लिए हम दोनों को कोई भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े।''

''लेकिन कैसे?''

''हम दोनों कोर्ट मैरेज करेंगे और इसी शहर के किसी कोने में रहकर अपना जीवन-यापन करेंगे।''

''तो क्या इस अपराध के लिए साहब हमको जीवित छोड़ देंगे?''

''कोई भी डी.एस.पी. कानून को अपने हाथ में नहीं ले सकता।''

''लेकिन उसका जो पिछला रिकॉर्ड है?''

''इसलिए कि उसके खिलाफ कोई खड़ा नहीं होता था। पर अब मैं उसके विरुद्ध खड़ी होऊँगी।''

''ठीक है, छोटी मालकिन। आप तो खुद कानूनविद् हैं। वैसे भी आपके कारण मेरी जान भी चली जाएगी तो भी मुझे दु:ख नहीं होगा।''

''छोटी मालकिन नहीं, आज से केवल सुधा। मैं अब तुम्हारी डियर सुधा हूँ।''

□

अखबार में विगत रात पुलिस के साथ मुठभेड़ में एक आतंकवादी मारा गया। मृतक की शिनाख्त नहीं हो पाई है। उसके पास से एक विदेशी रिवॉल्वर और कई जीवित कारतूस बरामद हुए हैं। मुठभेड़ में एक बुढ़िया भी मारी गई है, जो उस आतंकवादी को पनाह दे रही थी। ऐसा माना जाता है कि उसका उद्देश्य शहर के किसी प्रमुख राजनेता की हत्या करना था। उसी उद्देश्य से वह छद्म नाम से विगत कई माह से इसी शहर में रह रहा था। पुलिस ने अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए घटना को अंजाम देने से पहले ही उस पर धावा बोल दिया था। पुलिस ने जब उसे पकड़ना चाहा, तब उसने पुलिस पर ही फायरिंग शुरू कर दी। जवाबी कारवाई में वह पुलिस के हाथों मारा गया। पुलिस इसके मूल तक पहुँचने का प्रयास कर रही है।

किंतु उस हादसे का सुधा के मन-मस्तिष्क पर सीधा आघात पहुँचा। उसने अपना मानसिक संतुलन खो दिया। वह डी.एस.पी. आवास के एक कमरे में बंद हर आने-जानेवाले से पूछती है, 'तुमने सोम को देखा है?' और कोई जवाब न पाकर बिछोह होकर रो पड़ती है।

धर्मशीला कुटीर
ग्राम : अरंडे, पत्र.-बोड़ेया
जिला : राँची-८३४००६ (झारखंड)
दूरभाष : ९४३०३०३०९४

हिंदी गजल और हिंदी कविता : एक अहसास

● विमल लाठ

गजल शब्द सुनते ही एक प्रकार की उर्दू कविता का बिंब मस्तिष्क में उभरता है, जो स्वाभाविक भी है। पर विगत चार या पाँच दशकों में हिंदी में भी खूब गजलें लिखी जा रही हैं। उन्हें हम 'हिंदी गजल' ही कहेंगे। 'हिंदी गजल' शब्द से बहुत से व्यक्ति चौंकते हैं, क्योंकि हिंदी गजल का अर्थ उनके लिए उर्दू गजल का पर्याय बन गया है। दोनों मे मूलभूत अंतर है, केवल भाषा का ही नहीं, कथ्य का भी। उर्दू गजल में प्रेमिका के साथ बातचीत, सूफियाना फलसफे, साकी और हाला की बुलंदगी तथा वैयक्तिक पीड़ा को ही अधिकतर व्यक्त किया जाता है। हिंदी गजल में वैयक्तिक पीड़ा समाज की पीड़ा बन गई है, प्रेमिका से बातचीत की जगह जिंदगी से बातचीत एवं साकी और हाला की बुलंदगी के स्थान पर अपने चारों ओर फैली विसंगतियों पर तीव्र प्रतिक्रिया हिंदी गजल का कथ्य बनी है। एक आम आदमी ने जिन परिस्थितियों के बीच अपना जीवनयापन किया है और किस तरह से वह सत्तालोलुप गलियारों के कारण एक अच्छी जिंदगी से कटे हुए रहने के लिए विवश रहा है, यह हिंदी गजल का मुख्य स्वर बनकर उभरा है। कहने का अर्थ है कि आज की हिंदी कविता का तेवर गीत, मुक्तछंद, दोहे, पद, चौपाई, घनाक्षरी, मुक्तक, त्रिपदी, हाइकू मिनी कविता और गीत की तरह हिंदी गजल में भी सुरक्षित है, अपने देश की माटी की गंध लिये हुए। केवल त्रासद प्रसंगों के भाव ही नहीं, अपने उत्सव, त्योहार, उत्साह के रस भी उसमें छलके हैं।

जब गजल केवल उर्दू में उपलब्ध थी, तब शम्सुद्दीन कैस बिन राजी ने सातवीं सदी हिजरी में गजल को इस तरह परिभाषित किया था, ''जब खूँखार जंगली कुत्ते हिरन का पीछा करते हैं और हिरन की जान पर बन आती है तो वह मुकाबले के लिए तैयार हो जाता है, उस समय वह एक ऐसी दर्दनाक आवाज पैदा करता है, जिसमें यह तत्त्व भी मौजूद होता है कि मैं जान पर खेल तो गया हूँ, लेकिन दुश्मन को भी नुकसान पहुँचाऊँगा, तो गोया उस दर्दनाक आवाज के साथ खुशी की कैफियत भी मिल जाती है। इसी आवाज को गजल अल्काब कहते हैं।''

देश को परकीय शासकों से मुक्त करने में असंख्य लोगों ने बलिदान दिए, पहले मुगलों से, फिर अँगरेजों से। उन सबके पीछे यहाँ के रचनाकारों ने अपने साहित्य से, विशेषकर कविता के माध्यम से ज्योति जलाए रखी। इतिहास इसका गवाह है। सन् १८५७ के संग्राम के वीरों ने जो शंखनाद

साहित्य और रंगमंच से घनिष्ठ रूप से संबद्ध; रचनाकार, अभिनेता, निर्देशक। नाटक, काव्य आदि प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशन। राष्ट्रीय कालिदास सम्मान एवं बी.एम. शाह सम्मान (रंगकर्म के लिए)।

किया, वह अविस्मरणीय होना चाहिए था, नहीं हुआ। कवि श्री किरण बंद्योपाध्याय के बँगला नाटक 'भारतमाता', जिसका अनुवाद संभवत: श्री भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया, जो १८७७ में प्रकाशित हुआ, उसकी प्रथम पंक्तियाँ हैं—'जगत पिता जग जीवन जागो मंगल मुख दरसाओ/तुम सोए सबही मनु सोए तिन कहं जानि जगाओ/अब बिनु जागे काज सरत नहिं आलस दूरि भगाओ/हे भारत भुवनाथ भूमि निज बूड़त आनि बचाओ।' राष्ट्रप्रेम की गाथा हिंदी साहित्य में, कविता में भी बहुत प्रचुरता से रची गई। एक अकेला 'वंदे मातरम्' गीत ही इसका साक्ष्य है, जो बाद में अमर बलिदानियों का मंत्र ही बन गया। देश को स्वतंत्र हुए ६७ वर्ष से अधिक हो गए हैं।

सत्तासुख की भूख इतनी प्रबल हो गई थी कि लाखों लोगों के काटे जाने की त्रासदी भी जैसे उस समय एक आम बात होकर रह गई थी। कवि-मानस चुप न रह सका, उसने इस त्रासदी का साहित्य प्रचुर मात्रा में रचा।

परवर्ती काल में जीवन के विभिन्न आयामों पर बहुलता से हिंदी में काव्य रचनाएँ लिखी गईं। जीवन की क्षणभंगुरता सर्वविदित है, इसमें कोई विवाद नहीं। वैदिक काल से ही मनुष्य की देह और प्राण का विवेचन उपनिषदों में भी उभरकर आया है। देश-काल की सीमा लाँघकर रचनाकारों ने इसे अपना विषय बनाया। आधुनिक समय में व्यवहृत उपकरणों को भी बृहद् सहज रूप से कवियों ने व्यवहार में लिया। कवि शशिकर की मिनी कविता है—'आदमी अंतरदेशीय पत्र है/जो बचपन यौवन और बुढ़ापा/तीन मोड़ों के बाद पोस्ट हो जाता है।' हिंदी गजलकार रामकुमार कृषक इसे अपनी गजल में यों कहते हैं।

'वक्त है वक्त की तेज रफ्तार है। जो नहीं चल रहा वह गुनहगार है। वक्त को काटना क्या हँसी-खेल है। वक्त तो खुद-ब-खुद एक तलवार

है। वक्त के हाथ में घड़ी ही नहीं, हर घड़ी वक्त की ही तलबगार है। बेवफा हो भले जिंदगी मौत से। मौत को जिंदगी से बहुत प्यार है।' कविता और गजल में केवल कहने का सलीका बदला है।

भूमंडलीय एक सर्वेक्षण में भारतवर्ष विश्व का सबसे भूखा देश बतलाया गया है। हिंदी का कवि हमारी चली आ रही व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगाता है, 'पीठ के निकट जाकर पूछता है पेट। समाजवाद और कितना लेट।' रामकुमार कृषक इसे अपनी गजल मे इस तरह व्यक्त करते हैं, 'दर्द से कुछ इस तरह नाता रहा। दर्द का अहसास ही जाता रहा। शाम को हम भोर तक ढोते रहे और पहरेदार जगराता रहा। भूख का कैसे खुलासा हम करें। जिस्म अकसर जिस्म को खाता रहा। आप अपनी लाश अपनी कब्र हम। यह जुमाना नाम गिनवाता रहा। दोस्ती हमसे, हमारी रात से। सुबह से हर शख्स कतराता रहा। हम इबादत के लिए जाते कहाँ। हार पर जब हर खुदा आता रहा।' समाज के एक वर्ग-विशेष के लिए कही गई यह गजल मानो उन समस्त भूखा से परेशान लोगों की भी कहानी है, जो सभी नारेबाजियों के समुंदर के बीच डूबती एक कश्ती की व्यथा-कथा है।

राष्ट्रकवि दिनकर ने कहा है, 'कविता न पूर्ति है न माँग है, जरूरी नहीं कि हर पाँव सीधा पड़े/सीढ़ियाँ नहीं है/लॉजिक नहीं है/यह छलाँग है।' क्योंकि 'कवि की जेब भले खाली हो/मोल लगाता है तारों का।' कवि नंदलाल पाठक लिखते हैं, 'कुछ लोगों का कहना है कि कविता क्या है केवल पागलपन/सोच रहा हूँ/इस पागलपन से वंचित क्या होता जीवन।' इसलिए कई-कई बार हमें लगता है कि कवि जब यथार्थ को कविता में जीता है, तब उसकी बातों में सिलसिला नहीं होता। इसे वह अपने आसपास की दुनिया से भी जोड़ लेता है तो हिंदी गजलकार सूर्यभानु गुप्त की गजल हमें मिल जाती है, 'सिलसिला है न कोई/पूरी होती नहीं गजल कोई/आदमी आदमी नहीं लगता/ये सदी कर रही है छल कोई/जिंदगी भी क्या है समंदर की/जिंदगी में नहीं कमल कोई/आदमी है कि वो जुमाना है/यूँ तो जाता नहीं बदल कोई/जिंदगी लाइलाज है फिर भी/मिल के ढूँढ़े इलाज कोई।'

सूर्यभानु गुप्त की गजल और आज की हिंदी कविता का तेवर हमें कभी-कभी कवि के बारे में सोचने के लिए विवश करते हैं कि यह कैसा प्राणी है जो, ''शहतूत के पत्ते खाता है और रेशम के धागे उगलता है।'' दु:ख मनुष्य का शाश्वत स्वभाव तो है, पर सुख और आनंद भी उसका एक रंग है। हमारे तीज त्योहारों के रूप में बाटिक प्रिंट जैसा रंगों का मेला लगता है, रस बरसता है। आत्म प्रकाश शुक्ल का एक गीत है, 'बौराई देह गंध गदराए अंग-अंग अधर-अधर अमिय छंद आँक गया फागुन/ लाजवंती शाखों में फूलों की पाँखों में/अलसायी आँखों में झाँक गया फागुन।' सूर्यभानु गुज फगुनहट के इस शृंगार को अपनी गजल में यों गाते हैं, 'ऐसे खिलते हैं फूल फागुन में/लोग करते हैं भूल फागुन में/धूप पानी में यों उतरती है/टूटते हैं उसूल फागुन में/कोई मिलता है और होते हैं/सारे सपने वसूल फागुन में। चोर बाहर दिलों के आते हैं/जुर्म करने कुबूल पलगुन? में और ऋतुओं में सुख से सोते हैं/जागते हैं रसूल फागुन में/भूले-बिसरे हुए जुमाने की/साफ होती है धूल फागुन में।'

निरालाजी की वह प्रसिद्ध कविता 'वह तोड़ती पत्थर इलाहाबाद के पथ पर' किसी भी संवेदनशील इनसान को झकझोरकर रख देती है। भवानीशंकर जैसे सौ प्रतिशत भावुक गजलकार को जमाने का दोहरापन रास नहीं आता, उनकी गजल कह उठती है, 'कहीं रेशम कहीं खादी है प्यारे/इसी का नाम आजादी है प्यारे/सुबह से शाम पत्थर तोड़ती है/निराला की ये शहजादी है प्यारे/लड़कपन का वजन था फूल जितना/जवानी पीठ पर लादी है प्यारे/ये कश्ती जो कि जर्जर-सी लगे है/यही तूफान की आदी है प्यारे' या जब वे कहते हैं, 'फिर वही चेहरे, वही अंधा सफर है दोस्तो/यह इमारत भी यकीनन खँड़हर है दोस्तो/आज भी अपनी चुभन के साथ में कोई नहीं/पुष्पहारों का फकत इक पोस्टर है दोस्तो/जिंदगी भर इन मशालों को बदलते जाइए/एक लंबी और चौड़ी रातभर है दोस्तो।' कवि नामवर और हिंदी गजलकार भवानीशंकर दोनों ही अपने-अपने हिरना मन के साथ आदमियों के जंगल में कखरी की तलाश चेहरे-चेहरे में कर रहे हैं। जब वे लिखते हैं, 'हिरना मन के साथ बड़ी मजबूरी है/चेहरा-चेहरा खोज रहा कस्तूरी है।' भक्त कवि सूरदास भी शायद इसी प्रकार तलाश करते हुए निराश हो गए होंगे, तभी तो उन्होंने लिखा, 'ऐसैं ई करत अनेक जनम गए/मन संतोष न पायो।'

हिंदी गजल के बेताज बादशाह थे—दुष्यंत कुमार। हिंदी के विद्यार्थी को उनकी यह गजल खूब याद रहती है, 'हो गई है पीर पर्वत-सी, पिघलनी चाहिए/इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए/आज यह दीवार परदों की तरह हिलने लगी/शर्त थी कि ये बुनियाद हिलनी चाहिए/हर शहर हर गली में, हर नगर हर गाँव में/हाथ लहराते हुए हर लाश चलनी चाहिए/सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं/मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए/मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही/हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए।' दुष्यंत को पढ़नेवाला भीतर तक दहल उठता है और अपना दायित्व-बोध तलाशने लगता है। कवि अक्षय जैन की यह कविता देखिए, 'नदी है/नदी का जल है/डिस्टर्ब कर देती है/यह कैसी दुष्यंत कुमार की गजल है।'

हिंदी के शीर्षस्थ एक व्यंग्यकार शरद जोशी कहते थे कि 'हमारे यहाँ कविताओं को प्रमाण-पत्र के रूप में लेने का रिवाज नहीं है, नहीं तो दुष्यंत कुमार की अंतिम दिनों की गजलें पढ़कर वह लोग शर्म खाते, जो इन स्थितियों के लिए जिम्मेदार हैं।' डॉ. धर्मवीर भारती ने कहा कि एक सच्ची और तीखी अकेली छूटी हुई रचना, झूठे शब्दजाल के विराट् काव्यांडबर को कैसे पल भर में नकली और जाली साबित कर अपने को प्रतिष्ठित कर लेती है, इसका प्रमाण दुष्यंत की गजलें हैं। स्वयं दुष्यंत कुमार ने कहा है, 'उस समय के कविता के वाग्जाल और सपटबयानी से उकताकर मैंने उर्दू के इस पुराने और आजमूदा माध्यम, गजल की शरण ली है।'

जीवटवाले कवि थे दुष्यंत, जो अल्पायु में ही चले गए, लेकिन जिन्होंने हिंदी गजल को बोलचाल की गंगा-जमुनी सीमा पर इस तरह ला खड़ा किया कि उसकी भंगिमा कबीर की सामाजिक न्याय की पक्षधर

कविता के तेवर छूने लगी। कबीर हिंदी के पहले गजलकार थे, 'हमन को इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या/रहे आजाद या जग में, हमन को इंतजारी क्या/कबीरा इश्क का मारा, दुई को दूर कर दिल से/जो चलता राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या।'

सत्य चाहे जितना कटु हो, तल्ख हो, बेबाक रूप मे उसे उद्घाटित कर देना, यह कविता का ही काम है—'हर तरफ दु:ख का सूर्य जलता है/जिक्र साये का बंधु लगता है/जिंदगी का अब रूप मत पूछो/तेज कितनी है धूप मत पूछो।' देश के परिवेश को लेकर भी दुष्यंत की गजल की पैरोडी सुनने को मिल जाती थी, 'कहाँ तो तय थी कुकिंग गैस हरेक घर के लिए/कहाँ केरोसिन भी मयस्सर नहीं शहर के लिए।'

दुष्यंत कुमार को खुशी होती, जब वह अपनी ही परंपरा में आगे बढ़ते कवि-गजलकार शिव ओम अंबर को पढ़-सुन पाते। अंबर अपनी गजलों के द्वारा राजनीति के दुराग्रह के प्रति आगाह कर देते हैं, जब वे कहते हैं, 'रीढ़ की हड्डी को अलग रख आइए/तख्त के आगे अदब से जाइए/खास शाही जूतियाँ हैं ये इन्हें/आदमी की खाल से मढ़वाइए।' उनके कवि-स्वाभिमान की एक झलक इन दो पंक्तियों में साफ झलक जाती है, जब वह इस गजल में कहते हैं, 'हर पुरस्कार पा लिया होता/गर जरा सर झुका लिया होता/ये अँधेरे कहाँ शरण लेते/घर हमारे अगर दीया होता/आचमन भर गजल लिखाता है/काश विष को पचा लिया होता/खुदकशी पर खुदा उतर जाता/आदमी बन अगर जिया होता।' या फिर कविता की इन दो पक्तियों में, 'संग्रहालय में रखो इस शख्स को यारो/आज भी इसके बयानों में सच्चाई है' या 'फिर उनका विशेष अंदाज 'नागफनियों की गली इठला रही है/वैष्णवी तुलसी यहाँ कुम्हला रही है/राम जाने अंत क्या हो कथा का/भूमिका तो वक्ष को दहला रही है।'

भ्रष्टाचार के 'सीजन' से कौन वाकिफ नही? शैल चतुर्वेदी ने अपनी विनोदी मुद्रा में कहा, 'भारत और भ्रष्टाचार की राशि एक है/कश्मीर से कन्याकुमारी तक हमारी देखरेख है/राजनीति हमारी प्रेमिका और पार्टी औलाद है/आजादी हमारी बेटी और नेता दामाद है।'

कुमार शिव राजस्थान उच्च न्यायालय के माननीय न्यायाधीश बने। उसके पहले वह गजलकार है और सीधे-सरल शब्दों में गजल में अपनी बात कह देते हैं, 'सत्य तो बोले नहीं/सौगंध ही खाते रहे/हाथ में गीता लिये हम झूठ दोहराते रहे/छा गया देखो चतुर्दिक् शोक का वातावरण/डाकिये दिन चिट्ठियाँ कोने फटी लाते रहे/भूख से दम तोड़ देते नित्य जो फुटपाथ पर/लोग ऐसे सैकड़ों जाते रहे, आते रहे/कोई क्यों डूबा सरोवर में हमें क्या वास्ता/नाव में बैठे हुए हम तो गजल गाते रहे/वर्ष के शुभ आगमन पर हमने स्वागत यों किया/रोशनी को हम धुएँ के हार पहनाते रहे।' या फिर उनकी गजल एक औसत भारतीय ग्रामीण नारी की नियति से जुड़ी घर के चूल्हे-चौके का बयान करती है और साथ ही एक पवित्र अहसास और सौंधी महक की सुगंध भी बिखेरती है, 'गीली-लकड़ी-चूल्हा-चौका चिमटा बेलन और धुआँ/भीगा आँगन, बजते कंगन, यह गोरा तन और धुआँ/यादें पीहर की सुलगी हैं धधक उठी हैं सीने में/आँखों से बाहर निकला है मन का चंदन और धुआँ/द्वार-द्वार पर कढ़े माँडने आँगन-आँगन रंगोली/कमरों में लेकिन मकड़ी के जाले सीलन और धुआँ/मेंहदी रचे हुए हाथों पर लिखा यही जब किस्मत ने/चक्की चारा झाड़ू बर्तन, मिट्टी ईंधन और धुआँ/नई सुबह, दोपहर नई है, साँझ नई है, रात नई/सुख-दु:ख नए, नया लगता है घर-घर आँगन और धुआँ/संतोषी माता का व्रत है महक उठे हैं आले में/अगरबत्तियाँ, पुष्पहार, हल्दी का ऐपन और धुआँ।'

वातावरण जब कभी बोझल हो उठता है, तभी कहीं आशा की किरण हिंदी कविता में चमक उठती है। हिंदी कविता को एक नई शैली देनेवाले कवि भवानी प्रसाद मिश्र कहते हैं, 'नहीं, ऐसा नहीं हैं। वक्त मिलेगा, जिसमें यह जमा वातावरण हिलेगा/उदास मत हो जाओ/आखिर ऐसे दिन कितने दिनों तक टिकते हैं/कई बार तख्त और ताज/कबाड़ी बाजारों में बिकते हैं/या वहाँ धरे भर रहते हैं/लोग सूनी निगाहों से/उन्हें देखकर निकल जाते हैं/दुनिया में/हर तरह के दिन आते हैं।' शर्त है कि आदमी अपने परिवेश में खुश रहे और अधिक की चाह उसके मन में न हो। भवानी भाई अपनी एक कविता में कहते हैं, जिंदगी में कोई बड़ा सुख नहीं है, क्योंकि मुझे कोई बड़ा दु:ख नहीं है/बड़े सुख आ जाएँ घर में तो कोई ऐसा कमरा नहीं है जिनमें उन्हें टिका सकूँ।'

'शब्द था रच दिया जाता तो कविता था।' यह सुविख्यात कवि नरेश मेहता ने कहा। कुछ ऐसे ही शब्द कवि-गीतकार-गजलकार कुँवर बेचैन अपनी गजलों में रचते हैं और वह भी अपने चारों ओर के माहौल से त्रस्त हो कह उठते हैं, 'तब गजल में प्यार के ही काफिये का जोर था/अब गजल में प्यार का काफिया ही बीमार है।' और एक बीमार परिवेश को लेकर जहाँ खंभे अपने ऊपर ही रोशनी फेंक रहे हैं, वह स्वयं पर ही जोर-आजमाइश करते हैं। मैं तेरी आवाज हूँ, लय-ताल हूँ, दुहरा मुझे/देख, मैं तेरी गजल हूँ, ठीक स्वर में गा मुझे।' अपनी गजल में वे कहते हैं, 'वो लहरें कहीं वो रवानी कहाँ है/बता जिंदगी जिंदगानी कहीं है/आ ढूँढ़िए इस धुएँ में/हमारी तुम्हारी कहानी कहाँ है/बड़ी देर से सोचते हैं कि आए/मगर हमें नींद आनी कहाँ है/बताएँ जरा उँगलियाँ पूछती हैं/हमारी तुम्हारी निशानी कहाँ है/फकीरी में है बादशाहत हमारी/न ये पूछिए, राजधानी कहाँ है।'

शब्द ही तो हैं, कविता में जो रचे गए हैं, गजल में या अन्य विधाओं में। इन्हें पढ़कर हिंदी का विद्यार्थी रसमग्न होता है। कवि या लेखक तो होता ही है, क्योंकि यह उसका संसार है, जिसका वह निर्माण करता है। उसकी भूमिका उस विधाता की होती है, जिसे हम कहते हैं—नियंता। कवि पं. छविनाथ मिश्र अपने संपूर्ण अनुभव से कहते हैं, 'कविता जब किसी के पक्ष में/या किसी के खिलाफ/अपनी पूरी अस्मिता के साथ खड़ी होती है/तब वह/ईश्वर से भी बड़ी होती है।'

शुभम अपार्टमेंट, ५ एच
१९ बी अलीपुर रोड
कलकत्ता-७०००२७
दूरभाष : ९४३३५०७९६२

धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र

● श्रीराम परिहार

बादल बरसता है, हवा बहती है, अग्नि प्रकट होती है। धरती अपनी प्रकृति में रसवंती होती है। आकाश अनंत हो जाता है। कोयल गाती है। नदी बहती है। पर्वत अपनी सुषमा में गर्व से भर उठता है। मेघा का पानी बरसता है, कृषक निहाल हो उठता है। फसलें अन्न के दाने भर-भरकर दानी की मुद्रा में विनत हो उठती हैं। तपस्वी तप में लीन होता है। बीज धरती की कोख से जन्म लेता है। एक बालिका मनोयोग से अपना पाठ याद कर रही है। माँ अपनी गोद को हरी होते अनुभव करती है और धरती हो जाती है। मालिन झबरी भर पान-फूल लेकर बाग से घर लौटती है। आरती की परात में दीप जाग उठता है। तुलसी की पत्तियों का हरापन पूरे आँगन में पसरकर तुलसी-गंध भर देता है। स्वाति बूँद गिरती है और सीप में मोती जन्म लेता है। सूर्य उदित होता है, धरती का कण-कण आलोक-पर्व में स्नान करने को तत्पर हो जाता है। समूची सृष्टि-क्रियाएँ उत्सव मनाने लगती हैं। यह एक बात हुई।

बूँद-बूँद को जीवन तरसता है। रीते बादल आते हैं, चले जाते हैं। गरजनेवाले बादल भी नहीं बरसते हैं। हवा आँधी बन जाती है। अंधड़ में वृक्ष उखड़ जाते हैं। पहाड़ धसकते हैं और उनकी छाया में बसे गाँव जमीन में समा जाते हैं। आग ज्वाला बन जाती है। गाँव-घर, वन-पर्वत, खेत-खलिहान, तन-मन जलकर राख हो जाते हैं। मुट्ठी भर राख उड़ती है, गिरती है और पथ पर बिछ जाती है। पृथ्वी में दरारें पड़ जाती हैं। सबकुछ सूख जाता है। पंछी कण को तरस जाते हैं। होंठ प्यास को पुकार-पुकारकर प्यास बन जाते हैं। धरती निरवंशी होने लगती है। आकाश तमस की चादर ओढ़कर भूतनाथ बन जाता है। कभी तप-तपकर महाधूम से विभूतिमय हो जाता है। कोयल नहीं गाती है। कई दिनों-महीनों बाद भी नहीं लौटती दूर देश से। नदी सूख जाती है। दग्गड़-पत्थर, रेत-शैवाल हाड़-मांस सरीखे उभरते हैं और श्रीहीन हो जाते हैं। पर्वत ज्वालामुखी से फटते हैं। उनके अग्नि-मुख में सबकुछ लावा बन जाता है। कभी-कभी न मृगशिरा, न आर्द्रा, न पुनर्वसु और न ही मेघा बरसती है। पंख-कटे पंछी की तरह जीवन फड़फड़ाता रहता है। मेनका तपी का तप भंग करती है। दुष्यंत शकुंतला को पहचानने से मना कर देते हैं। भाई-भाई में बैर स्थायी भाव बनकर उभरता है। ईर्ष्या प्रसन्न होकर नाचती है। यह दूसरी बात हुई।

ऊपर-ऊपर देखने-जाँचने से लगता है कि एक धर्मक्षेत्र की बात है और दूसरी कुरुक्षेत्र की। एक श्रीमद्भागवत की धर्म-क्रिया का सृष्टि-प्रसार है, दूसरी महाभारत की वृत्ति-छाया का लंब-प्रसार है। एक सोम है। दूसरी रुद्र है। एक सत् है। दूसरी तम है। एक जल है। दूसरी अग्नि है। क्या दोनों स्थितियाँ एक-दूसरे की विरोधी हैं या इनमें परस्पर कोई संबंध-सामंजस्य है? अग्नि भोजन पकाकर क्षुधा-तृप्त करती है। वही अग्नि घर, मकान, दुकान, बाजार फूँक डालती है। जल की एक बूँद जीभ पर गिरती है तो प्यास बुझती है। सहस्र बूँदें मिलकर उत्पात मचाती हैं तो वृक्ष, गाँव, नगर, तीर्थ, खेत सबकुछ जलमग्न हो जाते हैं। एक समय वही व्यक्ति त्याग की प्रतिमूर्ति बनकर जगत् का पथप्रदर्शक बन जाता है और वही इंच-इंच भूमि और पैसे-पैसे के लिए लड़-मरता है। व्यक्ति वही, जीवन वही, आचरण भेद, कर्म-भेद एक ही जीवन में द्वैत खड़ा कर देता है। मेरा नगर गुरु पूर्णिमा पर दाता बनकर खड़ा रहता है और सेवक बनकर भक्तों के पथ में बिछ जाता है। वही नगर फेसबुक पर चित्र देखकर विचलित होकर आपा खो बैठता है और पूरा जन-जीवन कर्फ्यू के ताप में कैद हो जाता है। वस्तु एक, जीवन एक, नगर एक, कभी धर्मक्षेत्र में अवस्थित होता है, कभी कुरुक्षेत्र में खड़ा अपने आयुध-संधान की तैयारी करता है। निर्दोष जिंदगी की पीठ में छुरा भोंक दिया जाता है। सौहार्द-सद्भाव दो-दो आँसू रोते हैं।

नीतिज्ञ चाणक्य कहते हैं, ''बुद्धि ईश्वर का वरदान है, उसका उपयोग पूरे विवेक के साथ होना चाहिए।'' आज यह नहीं हो रहा है। बुद्धि, प्रज्ञा, मेघा और ऋतंभरा, ये चारों प्रतिभा की पुत्रियाँ हैं। इनकी आराधना व्यक्ति-जीवन, समाज-जीवन और सृष्टि-जीवन को उदात्त रूप प्रदान करने के लिए की जाती है। प्रतिभा, मौलिक प्रतिभा 'विरजं विशुद्धं' का ही अंश है। प्रतिभा 'विरजं विषुद्धं' की रचनात्मक शक्ति है। यह क्रियात्मक शक्ति अपराजगत् या सगुण सृष्टि की रचना करती है। पंच महाभूत परस्पर सामंजस्य से इस सृष्टि में आकार या द्वैत को रचते हैं। यह सामंजस्य ही सृष्टि के मूल में है। परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों वाले तत्त्वों के

जाने-माने साहित्यकार। आठ ललित निबंध संग्रह, एक नवगीत, एक संत-साहित्य आदि पुस्तकें प्रकाशित तथा पत्रिका 'अक्षत' का संपादन। 'बागीश्वरी पुरस्कार', 'सृजन सम्मान', 'श्रेष्ठ कला आचार्य सम्मान', 'निर्मल पुरस्कार', 'राष्ट्रधर्म गौरव सम्मान', 'ईसुरी पुरस्कार', 'दुष्यंत कुमार राष्ट्रीय अलंकरण' सहित अनेक सम्मान प्राप्त।

बीच 'सर्जनात्मक गुणवत्ता' स्थापित करना ही इसका धर्म है। 'तम' प्रवृत्ति पर 'सत्' का आच्छादन या समाहार ऋतंभरा शक्ति करती चलती है। दोनों को जोड़ने में 'रज' शक्ति भी क्रियाशील रहती है। इन तीनों की उत्पत्ति एक ही शक्तिकेंद्र से हुई है। यह केंद्र वही है, जिसे आर्ष चिंतन में 'विरजं विशुद्धं' कहा है। दो विपरीत गुण मिलकर ही नए सर्जन-आकार को जन्म देते हैं। सर्जन प्रक्रिया के समय जिस तत्त्व की प्रधानता होती है, उसकी वृत्ति, स्वभाव और प्रकृति वैसी बन जाती है। उसके परिणाम शुभ-अशुभ रूप में सृष्टि-जीवन में फलित होते हैं।

भारतीय चिंतन में यह बात बहुत पहले स्पष्ट हो गई थी कि अक्षरब्रह्म का ही प्रसवित रूप यह जगत् है। यह द्वैत रूप में है। साकार रूप है। परस्पर विरोधी तत्त्वों के विमिश्र से इसकी रचना हुई है। उस रचना की सर्वोत्तम कृति मनुष्य है। मनुष्य में भी उस परमाप्रकृति की दोनों तरह की कलाएँ प्रकृतिदत्त होती हैं। गुणात्मक संघनन की मात्रा व्यक्ति-व्यक्ति में कम-ज्यादा हो सकती है। उसमें बल, पौरुष, ओज, तप, त्याग, ज्ञान, पराक्रम है। उसमें कोमलता, सरसता, दया, करुणा, सौंदर्यबोध, शांति, सौंदर्य, शील, सौम्य, उदारता भी है। भारतीय संस्कृति सूर्योपासक है। सूर्य की किरणों के सात रंगों के प्रतीकार्थों का गहराई से विश्लेषण करें तो उपर्युक्त सभी गुणों का समाहार भली-भाँति हो जाता है। साहित्य और संस्कृति इन्हीं गुणों का चरित्रांकन कर वैपरीत्य में सामंजस्य स्थापित करने का शब्द-यज्ञ और कर्म-यज्ञ संपन्न करती है। मैथ्यू आर्नाल्ड ने साहित्य में जिन दो तत्त्वों प्रकाश (स्पहीज) और माधुर्य (मजदमे) की चर्चा की है, उनका संबंध भी सूर्य और सूर्य-कलाओं से ही है। ये सारी कलाएँ जब सृष्टि-धर्म का निर्वाह करती हुई 'सृर्जनात्मक गुणवत्ता' प्राप्त करती हैं, तब ही सृष्टि में श्रेय और प्रेय जन्म लेता है। नोबल पुरस्कार प्राप्त अमेरिकन कवि रॉबर्ट फास्ट की एक 'आईस एंड फायर' नामक कविता है—

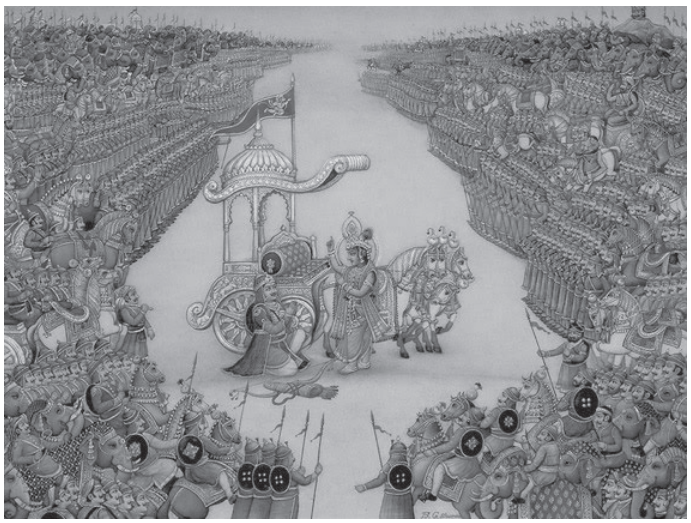

कुछ लोग कहते हैं कि
विश्व का नाश हिम-प्रपात से होगा,
कुछ लोग बताते हैं कि
विश्व का नाश अग्नि-प्रपात से होगा;
लेकिन मुझे लगता है कि
विश्व का नाश हिम से भी शीतल
और अग्नि से भी अधिक दाहक
ईर्ष्या से होगा।

मूल भारतीय समाज ने ईर्ष्या के इस दाहक गुण को बहुत पहले समझ लिया है। तब उसने एक ऐसी सभ्यता और संस्कृति की रचना की, जिसमें सबकी परस्पर सहभागिता हो और सबका कल्याण हो। किसी एक गुण का अतिरेक विनाश की ओर उन्मुख करता है। इसलिए भारतीय व्यक्ति और समाज की मूल एवं मौलिक संरचना में किसी विरोधी तत्त्व का विनाश नहीं, उसकी प्रचंडता को कम कर, दबाकर सद्वृत्ति या सद्गुण के साथ उसका समाहार किया जाता है। शकों, हूणों, कुषाणों की विधर्मी प्रवृत्ति के साथ ऐसा ही किया गया और उन्हें भारतीय जीवन पद्धति में अनुरंजित और समाहित कर लिया गया। बैर, ईर्ष्या, झगड़ा और युद्ध के सद् पक्ष भी हैं। उसमें समूह बुद्धि के विवेक की निर्णायक भूमिका होती है। भीष्म पितामह और कर्ण की मूल प्रकृति धर्मक्षेत्र की है, लेकिन उनकी राजनिष्ठा ने उन्हें कुरुक्षेत्र में युद्ध हेतु विवश किया। उन्होंने अपनी मूल धर्म प्रकृति के विरुद्ध कर्म का संपादन किया। अत: हार का सामना करते हुए जीवन से हाथ धोना पड़ा। तब भी पांडवों-कौरवों के युद्ध में क्या सब कौरव या कौरवों के पक्ष सब समाप्त हो पाए? अश्वत्थामा, गांधारी, धृतराष्ट्र ईर्ष्या की दाहक अग्नि में मरण का वरण करने तक जलते रहे। कोई भी जाति युद्ध या ईर्ष्या या लड़ाई द्वारा समूल नष्ट नहीं की जा सकती। इतिहास साक्षी है। तब फिर जीवन के धर्मक्षेत्र को कुरुक्षेत्र बना देने का पागलपन और नासमझी क्यों? युग प्रवर्तक अज्ञेय लिखते हैं—

ऋषियों की अस्थियों से भी
सुरगण केवल अस्त्र बना पाए,
क्यों नहीं उनसे खाद बनी
जो अकाल-अनावृष्टि में
रसा वसुंधरा को फलवती बनाए;
जो लोक-जीवन के काम आए।

भारतीय ऋषियों और समाज व्यवस्थापकों ने संपूर्ण मानव समूह को मन, चित्त, गुण, स्वभाव और कर्म के आधार पर सामाजिक दायित्व सौंपने की अवधारणा विकसित की थी। परस्पर विरोधी तत्त्वों को विकास की प्रक्रिया में 'सकारात्मक सहभाग' के रूप में स्वीकृत किया था। प्रत्येक में अंतर्ग्रंथन और समन्वय था। सबका साथ, सबका विकास और सबका मंगल लक्ष्य था।

जातियों के बीच वैमनस्य भारतीयता के लिए भयावह है। भारतीय जन मूलत: शांतिप्रिय होता है, क्योंकि उसके पास सृष्टि-धर्म की समझ है। उसने अपनी सभ्यता के आरंभिक काल में ही यह समझ लिया था कि यह संसार विरोधी गुणों का समुच्चय है। इसमें परस्पर संघर्ष होगा तो विनाश होगा। सामंजस्य और समाहार होगा तो नव सर्जन होगा। अतीत से

चलकर वर्तमान के मुहाने तक आते-आते भारतीय समाज भाषा, क्षेत्र, मत, पंथ, अल्पसंख्या, बहुसंख्या और सांप्रदाकिता की अनेक धाराओं में बँट गया है। यह राष्ट्रीय एकता और संस्कृति के लिए शुभ नहीं है। आधुनिक शिक्षा और अधकचरी विदेशी संस्कृति की समझ के धर्म-धुरीणों ने इसे हवा देने का कार्य किया और ऐसा वह अभी भी कर रहे हैं। ऐसे ज्ञानकुप्पों ने कविता में तो छंद को तोड़ा ही, वह भारतीय जन और भारतीय समाज के छंद को भी तोड़ने की कोशिश में लगे हैं। (यह ध्यान रहे कि महाकवि निराला ने छंद को नहीं तोड़ा था।) छंद के टूटने से जैसे कविता बिखर गई है। वह जन की अनुभूतियों और अभिव्यक्तियों से दूर हो गई है। वैसे ही भारत के समाज के छंद को नष्ट करके भी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय बिखराव को एक तरह से अनजाने ही सही, आमंत्रित करना है। इसलिए जातियों, उपजातियों और संप्रदायों में जीवित समाज को एक भारतीय छंद में संगुंफित करके रखना और आंतरिक रूप से अपने-अपने विश्वासों-मान्यताओं को संपन्न करने की स्वतंत्रता देना अनिवार्य है। यह विरुद्धों के सामंजस्य और अशुभों के विलोपीकरण से संभव है।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहम्।
धीः विद्या सत्यं अक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

संतों और फकीरों ने अपनी वाणियों में सत्संग का बहुत महत्त्व बताया है। यहाँ तक कहा, 'सठ सुधरहिं सत संगति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई।' और दूसरी ओर यदि ऐसा हो कि 'विधिबस सुजन कुसंगति परहीं, फणिबिनु मणि जिमि गुण अनुसरहीं।' सर्प का साथ पाकर भी मणि अपना गुण-धर्म नहीं छोड़ती। चंदन के वृक्षों पर साँप लिपटे रहते हैं, परंतु चंदन में विष नहीं व्यापता है। वे अप्रभावित रहते हैं। सीपी का साथ पाकर जल-बूँद मोती में बदल जाती है। काठ का साथ कर, नाव में लगकर लोहा जल में डूबता नहीं, जल पर तैरता है। हवा के संग पतंग निराधार नभ में उड़ती है। शिव के गले में भुजंग भूषण बन जाता है। रसखान भुवन मोहिनी वंशी की धुन में सुध-बुध खो बैठते हैं। फटाक् से कातर-आकांक्षा लरजती है, 'मानुष हो तो वही रसखान बसौ बृज गोकुल गाँव के ग्वारन।' अकबर की सेना के सेनापति थे अब्दुल रहीम खानखाना। अंतरात्मा की आवाज सुनी और बात प्रकट कर दी—'चित्रकूट में बसी रहै, रहिमन अवध नरेस, जेहि पर विपदा परत है, सो आवत एहि देस।' सेना का कोलाहल छोड़कर मंदाकिनी के शांत-सुरम्य तट पर आ जाते हैं। जीवन कुरुक्षेत्र से धर्मक्षेत्र बन जाता है।

मनरंगगीर से संत सिंगाजी ने ब्रह्मगीर का भजन सुना, 'समुझि लेओ रे मना भाई, अंत न होय कोई आपणा।' भजन सुनकर सिंगाजी को आत्मज्ञान हुआ। उन्हें अपने गुरु से अधिक प्रसिद्धि मिली। संत सिंगाजी हो गए। ऐसे ही रवि साहब ने निर्गुण-सगुण का समायोजन कर अपनी बात कही। एक समय की बात है, रवि साहब गुजरात से द्वारका जा रहे थे। मार्ग में लिमड़ी गाँव में उन्होंने रात्रि विश्राम किया। उनका आगमन सुनकर गाँव के लोग जुटे। रात्रि में सत्संग हुआ। संत मंडली जुटी। संतों में एक संत मीठा ढाँढी भी आए थे। मीठा ढाँढी ने तन्मय होकर गाया—'बँसरी बज रही इस वन में,' भजन सुनकर रवि साहब की विचलन समाप्त हो गई। द्वंद्व के बादल छँट गए। मन का आकाश निर्मल हो गया। ज्ञान का प्राकट्य हुआ। वह योग साधना में लग गए। द्वारका जाने का विचार छोड़ दिया। द्वारका नहीं गए, जामनगर के पास खंभालीड़ा गाँव में रहने लगे। वहीं योग साधना की। मन वृंदावन-द्वारका बन गया। उनके भजन पूरे गुजरात में गाए जाते हैं। उनका कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र बन जाता है।

संत साहित्य में निर्दिष्ट है कि कैसे हमारा जीवन कुरुक्षेत्र से धर्मक्षेत्र में बदल जाता है। संत रवि साहब कबीरदास की परंपरा में हुए थे। वे गुजराती भाषा के संत थे। गुजरात में उनके नाम से रवि भांड परंपरा प्रचलित है। भांड रवि साहब के गुरु थे। परंतु प्रसिद्धि मिली रवि साहब को। जैसे निमाड़ी भाषा साहित्य के संत सिंगाजी के गुरु मनरंगगीर स्वामी थे। मनरंगगीर से संत सिंगाजी ने ब्रह्मगीर का भजन सुना, 'समुझि लेओ रे मना भाई, अंत न होय कोई आपणा।' भजन सुनकर सिंगाजी को आत्मज्ञान हुआ। उन्हें अपने गुरु से अधिक प्रसिद्धि मिली। संत सिंगाजी हो गए। ऐसे ही रवि साहब ने निर्गुण-सगुण का समायोजन कर अपनी बात कही। एक समय की बात है, रवि साहब गुजरात से द्वारका जा रहे थे। मार्ग में लिमड़ी गाँव में उन्होंने रात्रि विश्राम किया। उनका आगमन सुनकर गाँव के लोग जुटे। रात्रि में सत्संग हुआ। संत मंडली जुटी। संतों में एक संत मीठा ढाँढी भी आए थे। मीठा ढाँढी ने तन्मय होकर गाया—'बँसरी बज रही इस वन में,' भजन सुनकर रवि साहब की विचलन समाप्त हो गई। द्वंद्व के बादल छँट गए। मन का आकाश निर्मल हो गया। ज्ञान का प्राकट्य हुआ। वह योग साधना में लग गए। द्वारका जाने का विचार छोड़ दिया। द्वारका नहीं गए, जामनगर के पास खंभालीड़ा गाँव में रहने लगे। वहीं योग साधना की। मन वृंदावन-द्वारका बन गया। उनके भजन पूरे गुजरात में गाए जाते हैं। उनका कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र बन जाता है।

हमारे पंचतत्त्वी गुणीभूत भव में नभ, भूमि, जल, अनल, अनिल है। यह निश्चित है कि आग जलाती है। हवा उसे और-और प्रज्वलित करती है। जल उसे बुझा देता है। लेकिन सृष्टि-धर्म की सर्जनात्मक गुणवत्ता से 'सोई जल अनल अनिल संघाता, होई जलद जग जीवनदाता।' जलते हुए अग्नि पिंड या अंगारे को हवा देंगे तो जल जाएगा। उसी अंगारे पर राख डाल दी जाए तो चिनगारियाँ नहीं फूटेंगी। वह राख बहुत देर और बहुत दिनों तक धधकते हुए अंगारे पर पड़ी रही तो वह अंगारा राख में बदलकर मिट्टी हो जाएगा। आकाश वह सब क्रियाएँ मौन देखता रहेगा। एक दिन आकाश में बादल घिरेंगे, पानी बरसेगा। उसी अंगारे की मिट्टी हुई राख से कोई अंकुर फूटेगा। सृष्टि का सौंदर्य और सुषमा उस पर न्योछावर हो जाएँगे। कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र बन जाएगा।

आजाद नगर
खंडवा-४५०००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ७३३२२४६६५५

कहानी

छत की आस

● रजनी मोरवाल

आज सुबह से ही काले बादल खूब चढ़े थे, बरसात की तैयारी ही समझो। इस बार रुखसाना समय से पहले ही चेत गई थी, उसने बरसात से बहुत पहले ही झोंपड़ी को हरे रंग के त्रिपाल से ढक दिया था, जिसमें यहाँ-वहाँ रंग-बिरंगी थेगलियाँ लगी हुई थीं। कुछ बदरंग वाली थेगलियाँ रशीद की पिछली बीवी की देन थी और जो कुछ नई दिख रही थीं, वे खुद रुखसाना ने अपने हुनर से सिली थीं। रुखसाना को ये थेगलियाँ अपने फटेहाल जीवन की बयानबाजी सी लगती हैं, जो वक्त-बेवक्त उसे मुँह चिढ़ाया करती थीं। उसे तो कभी-कभी अपने पल्लू से बँधी इस छत की आस भी बेजा ही लगती है, खासकर जब बारिशों में यह छत टपकने लगती है। ऐसी छत का भरोसा भी झूठी आस बाँधने की तकरीर जैसा ही था।

रुखसाना ने बड़ी मशक्कत करके इस त्रिपाल को तान तो दिया था किंतु बरसों पुराना त्रिपाल उसे जरा भी आश्वस्त नहीं कर रहा था। वह जानती है कि पानी और जवानी अगर बहने को आ जाए तो अपना रास्ता ढूँढ़ ही लेते हैं, फिर भी हर व्यक्ति बचाव का प्रयत्न तो करता ही है। इसलिए तलाकशुदा रुखसाना ने अपने तार-तार जीवन पर अधेड़ रशीद के नाम की एक थेगली सिलने की कोशिश कर ही ली थी। ऐसे में अब यह त्रिपाल अगर बारिश का पानी रोक सकी तो उसकी भी हिम्मत बनी रहेगी, फिर शायद वह भी अपनी जवानी इस घर से बाँधकर जीवन को पार कर ही जाएगी। रशीद से तो उसे कोई उम्मीद नहीं थी। तलाक के तीन शब्दों की चोट लिए घूमती औरत के पल्लू में सिर्फ एक छत की आस ही तो बँधी रहती है। इसी उम्मीद के सहारे तो वह रशीद के घर में निकाह करके आ बैठी थी।

जवानी तो रुखसाना की उसी दिन खत्म हो गई थी, जिस दिन उसने अधेड़ रशीद से निकाह कर लिया था। पहली बीवी से रशीद को तीन लड़कियाँ थीं। आते ही 'माँ' कहलाने वाली रुखसाना उन लड़कियों के प्रति वैसे ही उदासीन थी, जैसे आमतौर पर सौतेली माँएँ हुआ करती हैं। वैसे भी रुखसाना को ये लड़कियाँ अपनी बेटियाँ कम और हमउम्र ज्यादा लगती थीं। न तो वे रुखसाना को अम्मी कहती थीं, न रुखसाना ने ही कभी उन्हें बेटियाँ बनाने कोशिश की। उसका रूखापन लड़कियों को दिन-ब-दिन बेजार करता जा रहा था; एक मूक युद्ध इस झोंपड़े बनाम घर में हमेशा पसरा रहता था। जिन घरों में तसल्ली नहीं रहती, वहाँ बरकत भी पैर नहीं पसारती। रशीद कितने ही हाथ-पैर मारे, किंतु उस

जानी-मानी कवयित्री। अब तक 'सेमल के गाँव से' *(काव्य-संग्रह)*, 'धूप उतर आई', 'अँजुरी भर प्रीति' *(गीत-संग्रह)* एवं पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। 'वाग्देवी पुरस्कार', 'रामचेत वर्मा गौरव पुरस्कार', 'अस्मिता साहित्य सम्मान' तथा राज्यपाल द्वारा सम्मानित। संप्रति केंद्रीय विद्यालय में शिक्षिका।

झोंपड़े का पेट था कि कभी भरता ही नहीं था, आए दिन कलह का माहौल शोर मचाता रहता था।

एक रोज जब घर की किच-किच से परेशान बड़की नसीम अपने अब्बा के लिए बीड़ी खरीदने नुक्कड़ वाली दुकान तक निकली तो फिर लौटकर वापस घर नहीं आई थी। कुछ ऊपरी मन से तो कुछ जमाने के तानों से डरकर ही सही, मगर रुखसाना ने नसीम की खोज तो की थी, अब खुदा की रजा थी कि नसीम मिली ही नहीं।

मँझली लड़की आस-पास के बँगलों में घर का काम किया करती थी, पिछले हादसे के बाद उसके लिए रुखसाना ने कुछ अधिक ही सख्त नियम बना दिए थे। न किसी से बात करो और न किसी पर यकीन, सिर झुकाकर आने-जाने की ताकीद के साथ ही अब उसका बाहर निकलना होता था। औरतों की नियति में कुछ नियम खुदा लिख देता है तो कुछ नियम इस जमीन के बंदे, उसे तो सिर्फ उन नियमों पर अमल करना होता है। ऐसे में जब कभी ये नियम टूटते हैं तो हरजाना औरतों को ही उठाना पड़ता है, नतीजा वही हुआ जिसका डर था। मँझली एक रोज काम पर जाने के लिए निकली तो थी, परंतु वापस घर लौटकर नहीं आई।

पहले की ही तरह इस बार भी कुछ दिनों तक मोहल्ले में खोजबीन और कानाफूसी होती रही। आखिरकार लोगों ने अपने-अपने अंदाजों को मनचाही परवाज दे दी कि रशीद की दोनों लड़कियाँ अपने-अपने आशिकों के साथ भाग गई होंगी। रशीद को अपने रिक्शे की दिहाड़ी से फुरसत मिलती तो ढंग से कुछ शोक मना पाता। भूखा पेट इनसान को कितना खुदगर्ज बना देता है, रिश्ते भी पेट के आगे रोटियों की शक्ल लेने लगते हैं। रशीद का मानना था कि यह प्यार, वफा और समझदारी की बातें तभी हो पाती हैं, जब इनसान अपना पेट भरकर डकार लेने की औकात में हो, वरना सब बातें बकवास होती हैं।

दोनों लड़कियों के गायब होने से रुखसाना का अनचाहा भार तो

कुछ कम हुआ था, परंतु अपने पैर भारी होने की भनक उसे लग चुकी थी। रशीद अब दिन में रिक्शा चलाता था और रात को हमाली करने लगा था, सामने आती जिम्मेदारियों का बोझ उसे रेलवे स्टेशन तक खींचकर ले गया था। अब दिन-रात की मेहनत से थका-माँदा रशीद आधा-पौवा लगाकर पुल के नीचे ही लुढ़क जाया करता था, रात में उसके घर लौटने का कोई और कारण भी तो नहीं बचा था। थके-हारे रशीद के लिए रुखसाना गहरी नींद लाने का बहाना भर ही तो थी। पेट वाली औरत अब उसके किस काम की? रुखसाना की गालियाँ खाने की बजाय शराब पीकर पुल के नीचे पड़े रहना उसे कहीं ज्यादा उचित लगने लगा था।

बात-बेबात चीखती रुखसाना के इस बुरे वक्त में तीमारदारी के लिए सौतन की तीसरी बेटी ही बची थी। डूबते को तिनके की दरकार होती है, यह बात अलग है कि जान बच जाए तो इनसान इस खामोखयाली से पलट भी जाता है। परंतु फिलहाल तो रुखसाना का एकमात्र सहारा यही लड़की थी; अब यह सौतेली बेटी उसे भली न भी लगे, पर पहले की तरह आँखों में चुभती न थी। खुदगर्जी ने उसके व्यवहार को कुछ हद तक नरम कर दिया था, चाहे यह वक्ती प्यार ही क्यों न था।

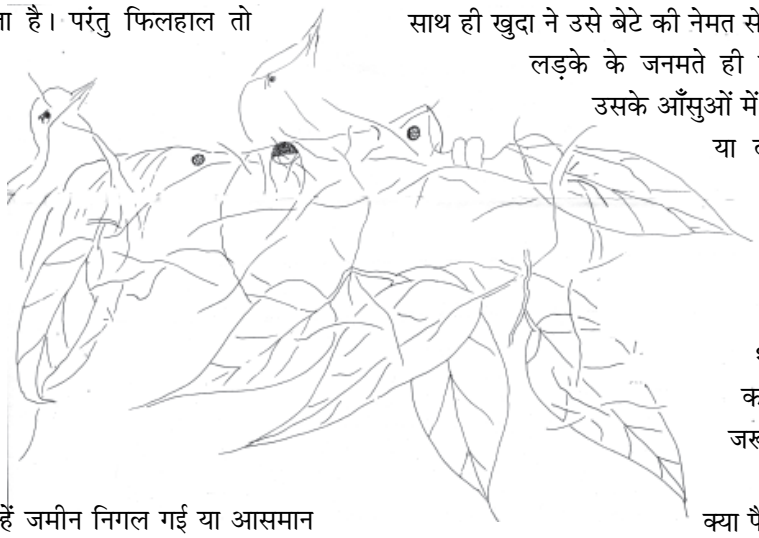

रशीद का मन कभी भी यह मानने को तैयार न होता था कि उसकी दोनों लड़कियाँ किसी के साथ भाग गई होंगी। तो क्या उन्हें जमीन निगल गई या आसमान निगल गया? रशीद की लड़कियों के पीछे-पीछे गाँव की कुछ और लड़कियाँ भी गायब होती चली गई थीं। गाँववाले यह मानने लगे थे कि शहरों से आती प्रदूषित हवाएँ अब गाँवों और कस्बों को भी अपनी चपेट में लेने लगी हैं।

कल ही शहर से लौटा एक युवक रशीद को बता रहा था कि शहरों में कई गैंग चलते हैं, जो गाँवों से लड़कियाँ उठाकर शहरों में बेच देते हैं। ऐसे में बड़की और मँझली के लिए रशीद के दिल में एक हूक सी उठती है। बड़की तो हू-ब-हू अपनी अम्मी जैसी थी, बिल्कुल आज्ञाकारी व नकाब में रहनेवाली, और मझली तो पूरे पाँच बार नमाज पढ़ती थी। रशीद का मन बुक्का फाड़कर रोने को करता। मरकर क्या मुँह दिखाएगा उनकी अम्मी को? कई बार सपने में उसकी पहली बीवी आती है और उससे सवाल-जवाब करती है। रशीद को विश्वास हो चला था कि जन्नत के दरवाजे तो अब उसके लिए बंद हो चुके हैं।

इस दु:ख के बीच एक छोटी सी आस बँधी थी तो बस रुखसाना से। रुखसाना उस रोज सुबह से ही जचगी के दर्द में छटपटा रही थी। खुदा अपने बंदों को दु:ख देकर परखता रहता है, मगर आज रुखसाना का यह दर्द उन दोनों के खुशनुमा जीवन का आगाज करनेवाला था। उधर दाई ने ज्यों ही बच्चे को पैर से पकड़कर रुखसाना के पेट से खींचा तो खून के फव्वारे के साथ ही कोई थैली जैसी चीज भी पच्च से बाहर आ पड़ी थी। रुखसाना को लगा था, जैसे दर्द की चलती सभी सलाइयाँ उसके शरीर में एकाएक थम गई थीं। बच्चा जनने के तुरंत बाद वह ऐसी गहरी नींद सोई कि जैसे अब तलक की जिंदगी उसने जागकर ही काटी थी। रुखसाना को इस तरह बेसुध सोता हुआ देखकर दाई कहने लगी थी, 'औरतों की किस्मत में ऐसी चैन की नींद खुदा ने सिर्फ दो ही बार लिखी है, एक तो बच्चा जनने के तुरंत बाद और एक अपनी मौत के बाद, वैसे बच्चा जनना भी हर माँ के लिए अपनी मौत से गुजरने जैसा ही है। ऊपरवाला माँ के पेट से एक औलाद निकालता है तो माँ को भी अपनी जान उसके दरबार में पूरे नौ महीने तक गिरवी रखनी पड़ती है।' ऐसे में उस रोज रुखसाना अपनी गिरवी रखी जान छुड़ा लाई थी और साथ ही खुदा ने उसे बेटे की नेमत से बक्शा था।

लड़के के जनमते ही रशीद फूट-फूटकर रो पड़ा था। उसके आँसुओं में पहली बीवी को खोने का गम था या दोनों लड़कियों से बिछुड़ने की कसक? अभी तो उसकी समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। हाँ, मगर किसी अनजाने सुख की पदचाप उसे सुनाई जरूर दे गई थी, सुनहरे भविष्य की ओर रुख करते उसके कुछ ख्वाब अँगड़ाइयाँ जरूर लेने लगे थे।

इन दिनों घर में जचगी की गंध क्या फैली कि रशीद को हर तरफ से ही गंध की शिकायत होने लगी थी। बरसात के दिनों में यहाँ गंध कुछ ज्यादा ही सताती है। रशीद खीज जाता है, अब आस-पास कौन से बागीचे उगे हैं, जो फूल महकेंगे? नेताओं को तो इस मोहल्ले की याद सिर्फ चुनाव के वक्त ही आती है।'' रुखसाना कहती है, ''इन नालियों में से तो गंध ही आएगी, ऊपर से हमारा मोहल्ला, शाम पड़े किसी की रसोई में मटन तो किसी की रसोई में मुरगा पकने लगता है।''

रशीद चिढ़कर कहता, ''तेरी तो जुबान चटकारे मारती है कमबख्त। हम गरीबों को दाल-रोटी भी नसीब हो जाए तो खुदा का शुक्र मना···बीवी। मटन-मुरगा हमारी किस्मत में कहाँ?''

कहते हैं, बाँझ के आगे दस बेटियों वाली भी घमंड करती है, यहाँ तो रुखसाना ने बेटा जना था, उसे तो रशीद के सिर चढ़ना ही था। जापे के बाद से ही उसने अपनी तमाम जिम्मेदारियाँ सौतेली बेटी के मत्थे डाल दी थीं, जिसे अब अपने भाई के साथ-साथ घर के अन्य काम भी सँभालने पड़ते थे। पहले से ही दु:खी रशीद ने औरतों के पचड़े में न पड़ना ही बेहतर समझा था। वह अब हर शाम जल्दी घर आने लगा था। खाली वक्त में वह झोंपड़े के बाहर बैठकर बेटे के साथ खेलता

रहता था।

रशीद ने रुखसाना को बताया था कि कई दिनों से अखबारों में खबर गरम है, इस शहर से कुल जमा बत्तीस बच्चे गायब हैं, जिनमें हर उम्र और मजहब के लड़के-लड़कियाँ हैं। पूछताछ के लिए पुलिस उस नुक्कड़ वाली कोठी के चौकीदार को ले गई है, शक के तार उस नुक्कड़ वाली कोठी नंबर डी-पाँच से जुड़ रहे थे। हर गुमशुदा बच्चा अंतिम बार उसी कोठी के आस-पास ही देखा गया था।

रशीद को अपनी बेटियों के वापस मिलने की एक महीन सी उम्मीद बँधने लगी थी; उसकी बेटियाँ भी तो उसी नुक्कड़ तक जाकर गुम हो गई थीं। वह ताना देती रुखसाना को विश्वास दिलाना चाहता था कि उसकी लड़कियाँ किसी के साथ भाग नहीं सकतीं, जरूर उन्हें कोई धोखे से उठा ले गया होगा। मगर रुखसाना कहती है, ''अब ऐसी लड़कियों को भूल जाना ही बेहतर है, ईमान खो चुकी लड़कियों का कोई घर नहीं होता, अगर मिल भी गईं तो उन्हें कौन आसरा देगा?''

सारा शहर तरह-तरह की बातों से तरबतर हो रहा था। रशीद को याद आता है कि कितने कुत्ते भौंकते थे यहाँ रात भर, लगता था जैसे अँधेरा होते ही शहर के सारे कुत्ते उस गंदे नाले के पास इकट्ठा होने लगते थे। उन दिनों वह बड़ी कोठी वाला चौकीदार थैलियाँ भर-भरकर खाना जो डालता था, सारी-सारी रात कुत्ते थैलियाँ फफेड़ते रहते थे। उस रोज रशीद के दरवाजे पर भी एक कुत्ता बोटियाँ नोंच रहा था। रुखसाना ने चप्पल खींचकर मारी तो किउं···किउं···करता हुआ भाग गया था। रशीद चिढ़ता रहता है, ''आखिर इन बड़े घरों में इतना खाना बनता ही क्यों है, जो फेंकना पड़े, मजदूरों के घरों में तो कभी-कभी चूल्हे तक भी नहीं सुलगते, फाका करते लोगों से जाकर कोई पूछे इस एक-एक दाने की कीमत।''

मौलवी साहब बता रहे थे कि दो किलोमीटर दूर जो नई कॉलोनियाँ बन रही हैं, वहाँ काम करनेवाले बिहारी मजदूर फसल की कटाई पर हर साल रोजी के जुगाड़ में यहाँ आते हैं। बीती रात उनके टोलों में से भी आठ-नौ वर्ष की दो लड़कियाँ गायब हो गई थीं। पुलिस छानबीन कर रही है। मौलवी साहब की बातों से रशीद को पसीना आने लगता है। रशीद और रुखसाना की रातें अब अपने बच्चों की निगरानी में जागते हुए कटने लगी हैं। दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूँककर पीता है फिर रशीद तो पहले से ही भुक्तभोगी था।

इन दिनों रुखसाना को जब-तब यही दु:ख सालता रहता था कि वह सिर्फ एक ही बच्चा कर पाई थी। उसके कपड़ों का तो लाल रंग अभी भी सुर्ख था, मगर रशीद की उठा-पटक कब की थम चुकी थी। एक तो रशीद पहले ही से अधेड़ था, उसपर गरीबी व दु:खों की मार ने उसे और भी ज्यादा बूढ़ा बना दिया था। रुखसाना उस फटे-टूटे त्रिपाल को तो अपनी उम्मीदों पर खरा उतारने की जुगत कर सकती थी, किंतु अंगों का विकसना या ढलना किसी के हालात की फरमाइश पर तो नहीं होता। दमे की खाँसी रशीद पर जब-तब हावी होने लगी थी। शराब उसे भरी जवानी में ही खोखला कर गई थी, फिलवक्त में तो बीमारी के पुराने लक्षण ही मुँह उठा रहे थे। कर्जे की मार से उसका रिक्शा छूट गया तो पेट भरने की एवज में उसने मसजिद का छोटा-मोटा काम सँभाल लिया था। रशीद की दलील है कि इनसान के बुरे वक्त में खुदा ही उसकी मदद करता है। इज्जत के तकाजे तब तक ही दिए जा सकते हैं, जब तक शरीर में जान हो। पकी उम्र में वैसे ही सबकुछ भावनाशून्य होने लगता है, पूरी देह में एक पेट ही रह जाता है, जो अंत तक इनसान के साथ रहता है और मरते दम तक उसका साथ निभाता है। चाहे सारे रिश्ते छूट जाएँ, पर भूख कभी भी साथ नहीं छोड़ती।

देशभर के अखबारों और टी.वी. चैनलों में यही खबर सुर्खियाँ बना रही थीं कि वहशी चौकीदार बच्चों से पहले बलात्कार करता था, फिर कत्ल करके उनको पकाकर खा जाता था। खाने के बाद बची-खुची हड्डियाँ वह कोठी के पीछे बंद पड़े गंदे नाले में फेंक दिया करता था। या खुदाया! रशीद का सिर चकरा रहा था, सबकुछ उसकी समझ से परे था।

उधर पुलिस ने चौकीदार के हलक में जाने क्या डाला था कि उल्टियों के साथ वह कई बड़े-बड़े राज भी उगल गया था। कुछ दिनों से कोठी के पीछेवाले नाले में खुदाई का काम चल रहा था, अब तो यह मोहल्ला दुर्गंध से और भी ज्यादा सड़ने लगा था। नाले में से प्लास्टिक की थैलियाँ भर-भरकर हड्डियाँ निकल रही थीं। इनमें से कई थैलियाँ तो ठीक वैसी ही थीं, जैसी रशीद और रुखसाना ने कई मर्तबा गली के कुत्तों को फफेड़ते हुए देखा था।

देशभर के अखबारों और टी.वी. चैनलों में यही खबर सुर्खियाँ बना रही थीं कि वहशी चौकीदार बच्चों से पहले बलात्कार करता था, फिर कत्ल करके उनको पकाकर खा जाता था। खाने के बाद बची-खुची हड्डियाँ वह कोठी के पीछे बंद पड़े गंदे नाले में फेंक दिया करता था। या खुदाया! रशीद का सिर चकरा रहा था, सबकुछ उसकी समझ से परे था।

एक रोज थानेदार ने रशीद को पूछताछ के लिए बुलाया था। रशीद की ही तरह कई और भी माँ-बाप वहाँ इकट्ठा थे। सबके आँसुओं में एक जैसा ही गम टपक रहा था धर्म और मजहब से परे सभी एक सी तकलीफ से गुजर रहे थे। उस दिन जुम्मा था, रशीद चुपचाप वहाँ से उठकर मसजिद की ओर चल पड़ा। बेटियों के गम से बेजार रशीद रोते-रोते सोच रहा था कि वह जीवन भर रुखसाना और जमाने भर के ताने सह लेता। काश! उसकी बेटियाँ किसी के साथ भाग ही जातीं।

'बैंक हाउस', स्टेट बैंक ऑफिसर्स कॉलोनी,
खातीपुरा रोड, हसनपुरा,
जयपुर-३०२००६
दूरभाष : ९८२४१६०६१२

मन की बात

● सूर्यनारायण गुप्त 'सूर्य'

माँ

मैं भी तो दिखूँ
माँ तेरी कृपा से जो
हाइकु लिखूँ।

दर्द को सहा
पुत्र से बूढ़ी माँ ने
कुछ न कहा।

माँ मेरी कहे
तू मेरे कंधों पर
सदैव रहे।

उदास दादी
वृद्ध माँ को रुलाता
पुत्र फसादी।

माँ का दुलारा
वृद्ध माता से वह
किया किनारा।

माँ का आँचल
इतना निर्मल ज्यों
गंगा का जल।

बहला गई
माँ तेरा स्पर्श मुझे
सहला गया।

माँ का प्यार
कैसे भूल जाएगा
यह संसार?

माँ का दूध
बड़ा होकर भूला
उसका पूत।

दूध का कर्ज
माँ रोती बेटा भूला
अपना फर्ज।

बेटों में बँटी
बूढ़ी माँ की ममता
किस्तों में फटी।

माँ को प्रणाम
हाइकु करे मेरा
जग में नाम।

प्रकृति

चाँदनी छाई
धरती पे चाँदी की
परत बिछाई।

गुलाबी भोर
पृथ्वी पर यों छाई
नाचे ज्यों मोर।

शाम ज्यों ढली
अंबर में तारों की
झालरें जलीं।

सूरज उगा
धरती के तम को
पल में चुगा।

नीलगगन
सूरज-चंदा, तारे
प्रभु के धन।

सुबह हुई
भोर की लालिमा आ
पृथ्वी को छुई।

रोज सवेरा
लाली उड़ा के करे
पृथ्वी का फेरा।

भोर का तारा
'सूर्य' को आता देख
भागा बेचारा।

सूर्य किरण
पृथ्वी पे यों दौड़ी ज्यों
स्वर्ण हिरण।

धूप व छाँव
जीवन के रूप हैं
मन के गाँव।

जाने-माने कवि। 'सिसकता सूर्य हँसता अँधेरा' (कविता-संग्रह)। पत्र-पत्रिकाओं में अनेक रचनाएँ प्रकाशित। छोटे-बड़े दो दर्जन सम्मान प्राप्त।

धूपी टुकड़ा
भोर के मुख पर
लालिमा जड़ा।

बसंत आया
सुगंधि नाच उठी
जग बौराया।

आत्मकथा

शब्द कुँआरे
हाइकु बन उगे
दर्द के मारे।

मन की बात
हाइकु ही कहेंगे
मेरे हालात।

मेरे समीप
दूर तक फैले हैं
पीड़ा के द्वीप।

पढ़ा न लिखा
शारदे की कृपा से
पृष्ठों पे दिखा।

सोचता रहा
अंधे युग का दंश
सदा ही सहा।

मन का सूप
फटके जीवन का
छाँव व धूप।

घर न घाट
बनजारे सा जीवन
ठाट न बाट।

'सूर्य' उदास
अँधेरे ने दिया है
कैसा संत्रास?

जो थे अपने
जीवन संध्या में वो
हुए सपने।

आँखों का पानी
आकर सुना गई
मेरी कहानी।

भाग्य का सफा
रहा मुझसे सदा
खफा-ही-खफा।

हार न माना
हार से न हारेंगे
मन में ठाना।

ग्राम, पोस्ट पथरहट, गौरीबाजार
जिला-देवरिया-२७४२०२ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४५०२३४८५५

वापसी

● बलदेव कृष्ण कपूर

सच्चा प्यार एक ऐसी दौलत है, जो सबको नहीं मिलती। कैलाशनाथ और सुषमा, पति-पत्नी दोनों एक-दूसरे को जी-जान से चाहते थे। परंतु अड़तीस वर्ष की उम्र में ही सुषमा भगवान् को प्यारी हो गई। कैलाशनाथ उस समय केवल पैंतालीस वर्ष के थे। एक सरकारी महकमे में बहुत ऊँचे पद पर थे। बच्चों की अभी पढ़ने-लिखने की उम्र थी। बेटा कमलकांत दसवीं में पढ़ रहा था और बेटी नंदिनी नौवीं में।

कच्ची गृहस्थी होने के बावजूद कैलाशनाथ ने हिम्मत नहीं हारी। दोनों बच्चों पर पूरा ध्यान दिया। लेकिन पत्नी की याद उन्हें दिन-रात सालती रहती थी। अचानक एक दिन उन्हें ऐसा लगा कि सुषमा की छवि भगवान् कृष्ण की छवि में बदल गई है। उस दिन से उनका दैहिक प्रेम आध्यात्मिक प्रेम में बदल गया। वे रात को देर तक आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ते रहते। पढ़ते-पढ़ते ही सो जाते। अच्छी-अच्छी धार्मिक और आध्यात्मिक पुस्तकों का एक बहुत बड़ा संकलन उनके पास इकट्ठा हो गया। भगवद्गीता, बाइबिल, कुरान शरीफ, कबीर, नानक, अरविंद घोष, विवेकानंद, योगानंद, शिवानंद, दयानंद सरस्वती को उन्होंने आद्योपांत पढ़ डाला। उनके सोने के कमरे में आज भी दो अलमारियाँ पुस्तकों से भरी हुई हैं। धीरे-धीरे योग और अध्यात्म में उनका मन खूब रमने लगा।

तभी उन्हें मालूम हुआ कि उनके पड़ोस में ही विभूति नारायण ने अपने घर में योग और मेडीटेशन कार्यक्रम का एक बैच खोल लिया है। हर रविवार को वहाँ पर प्रात: डेढ़ या दो घंटे का प्रवचन और ध्यान का कार्यक्रम होता था। उसमें कई लोग शामिल होने लगे थे। मेरी पहली भेंट कैलाशनाथ से वहीं पर हुई थी।

योग और ध्यान केंद्र स्थापित होने से पहले से ही विभूति नारायण और कैलाशनाथ में अच्छी-खासी मित्रता थी। दोनों में अनेक समानताएँ थीं। दोनों के मकान लगभग आमने-सामने थे। दोनों विधुर थे। कैलाशनाथ की पत्नी का देहांत हुए कई साल बीत चुके थे और विभूति नारायण की पत्नी को गुजरे हुए केवल छह वर्ष ही हुए थे। दोनों का रुझान योग और अध्यात्म में था और अब दोनों ही सरकारी सेवा से रिटायर हो चुके थे। कैलाशनाथ उम्र में विभूति नारायण से पाँच वर्ष बड़े थे, लेकिन दोनों में पक्की दोस्ती थी।

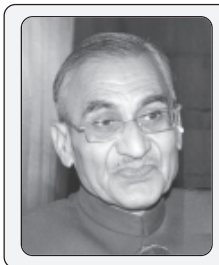

जाने-माने लेखक एवं कवि। अब तक 'डॉ. निशा' उपन्यास, 'कपास के फूल' कविता-संग्रह तथा हिंदी की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में अनेक कहानियाँ प्रकाशित। कविता, कहानियाँ, उपन्यास, लघुकथा, संस्मरण, रेखाचित्र, ललित निबंध आदि में लेखन।

थे तो कैलाश नाथ भी बहुत मिलनसार, परंतु उनकी पत्नी उनसे भी चार कदम आगे थी। मोहल्ले में सबके दु:ख-दर्द में काम आती थी। यह जो मकान बना हुआ है, उसी ने बड़े चाव से अपने सामने खड़े होकर बनवाया था। आसपास वाले देखकर कहते थे कि इस मकान में तो सौ साल बाद भी मरम्मत की जरूरत नहीं पड़ेगी। इस मकान की ओर संकेत करते हुए यह अकसर कहा करती थी, 'बाल-बच्चे बड़े होकर चाहे कहीं भी जाएँ, काम-धंधा चाहे कहीं भी करें, हमारी जड़ें तो यहीं रहेंगी।'

आजकल कैलाशनाथ के दोनों बच्चे विदेश में हैं। बेटा कमलकांत जर्मनी में एक बड़ी कंपनी में बड़ा अधिकारी है। बेटी नंदिनी यू.एस.ए. में एक बैंक में काम करती है। कैलाशनाथ ने अपने दोनों बच्चों की शादियाँ भारतीय परिवारों में ही पूरे विधि-विधान से की थीं। परंतु इस समय वे अपने बाल-बच्चों के साथ पश्चिम की संस्कृति में रम चुके थे। फिर भी कभी-कभी फोन करके पापा से उनका कुशल-क्षेम पूछते रहते हैं। कैलाशनाथ को अच्छी-खासी पेंशन मिलती है। खाना बनाने के लिए उन्होंने एक रसोइया रखा हुआ है। अन्य कामों के लिए एक फुल-टाइम नौकर है नन्नू। बहुत पुराना और बहुत वफादार है। वह केवल सेवक नहीं है, कैलाशनाथ को अपने पिता जैसा मानता है। वे भी उससे

स्नेह करते हैं।

बढ़ती उम्र के साथ अब उनका शरीर बहुत कमजोर हो गया है। पिछले रविवार को जब वे ध्यान-मंडली में नहीं आए तो मैंने विभूति बाबू से पूछा। उन्होंने बताया कि कैलाशनाथ को निमोनिया हो गया है। सुनकर मुझे दु:ख और चिंता हुई, परंतु मैंने किसी अनिष्ट की कल्पना नहीं की। उनके शीघ्र स्वस्थ हो जाने की कामना हम सबने ध्यान-केंद्र में की। परंतु उनकी हालत सुधरने की बजाय दिनोदिन बिगड़ने लगी। अंत:प्रेरणा से उन्हें ऐसा लगा कि अब अंतिम समय निकट आ गया है। इसलिए एक दिन उन्होंने अपने प्रिय नौकर नन्नू को समझा दिया कि यदि अचानक मेरी मृत्यु हो जाए तो इस परचे पर लिखे फोन नंबरों पर फोन कर देना। इसके लिए कैलाशनाथ ने नन्नू को रुपए भी दे दिए। इसके साथ ही उन्होंने कमलकांत और नंदिनी को फोन करके बता दिया कि मेरी हालत ज्यादा खराब है। मेरा अंतिम समय निकट आ गया है।

पता नहीं, कैलाशनाथ सुन पाए या नहीं। अगले दिन उन्होंने देह त्याग दी। उन अंतिम पाँच दिनों तक विभूतिनारायण कैलाशनाथ के पास बैठे रहे। जब कैलाशनाथ की मृत्यु हो गई तो विभूति बाबू ने स्वयं उन दोनों को फोन करके सूचना दी कि कैलाशनाथ नहीं रहे। दोनों का उत्तर एक सा था। यद्यपि दोनों के शब्द अलग-अलग थे, ''अंकल, पापा को तो कभी-न-कभी जाना ही था, सो चले गए। उनका अंतिम-संस्कार करने के लिए मैं अवश्य आऊँगा, परंतु आप समझदार हैं। नौकरी व बाल-बच्चों की सारी व्यवस्था कर लेने के बाद ही मैं यहाँ से प्रस्थान कर सकूँगा। अधिक समय वहाँ ठहर भी नहीं पाऊँगा।'' ये शब्द थे कमलकांत के। नंदिनी ने उत्तर दिया, ''अंकल, मैं शीघ्र ही यहाँ से चलने की कोशिश करूँगी। तब तक आप पापा के पार्थिव शरीर को बर्फ में रखे देना।''

अगले दिन नन्नू ने उन दोनों को फोन किया। कमलकांत ने उत्तर दिया, ''नन्नू, याद है, यही तमाशा पापा ने पिछले साल भी किया था। मैं अपने सारे काम छोड़-छाड़ के आ गया था। आने पर पता लगा कि उनकी हालत में सुधार होना शुरू हो गया है। यह तो अच्छा हुआ कि नंदिनी नहीं आई। वह अधिक समझदार निकली। देखो नन्नू, ऐसा तो है नहीं कि हम घर के सामने नीम के पेड़ के नीचे बैठे हैं, जब तुम आवाज दोगे और हम फौरन चले आएँगे। तुम्हें क्या पता यहाँ के टाइम की वेल्यू।''

नन्नू ने रुँधे गले से कैलाशनाथ के माथे पर हाथ फेरते हुए कहा, ''बाबूजी! मैंने उन दोनों को सूचना दे दी है, आते ही होंगे।''

पता नहीं, कैलाशनाथ सुन पाए या नहीं। अगले दिन उन्होंने देह त्याग दी। उन अंतिम पाँच दिनों तक विभूतिनारायण कैलाशनाथ के पास बैठे रहे। जब कैलाशनाथ की मृत्यु हो गई तो विभूति बाबू ने स्वयं उन दोनों को फोन करके सूचना दी कि कैलाशनाथ नहीं रहे। दोनों का उत्तर एक सा था। यद्यपि दोनों के शब्द अलग-अलग थे, ''अंकल, पापा को तो कभी-न-कभी जाना ही था, सो चले गए। उनका अंतिम-संस्कार करने के लिए मैं अवश्य आऊँगा, परंतु आप समझदार हैं। नौकरी व बाल-बच्चों की सारी व्यवस्था कर लेने के बाद ही मैं यहाँ से प्रस्थान कर सकूँगा। अधिक समय वहाँ ठहर भी नहीं पाऊँगा।'' ये शब्द थे कमलकांत के। नंदिनी ने उत्तर दिया, ''अंकल, मैं शीघ्र ही यहाँ से चलने की कोशिश करूँगी। तब तक आप पापा के पार्थिव शरीर को बर्फ में रखवा देना।''

नंदिनी और कमलकांत अलग-अलग फ्लाइट से अगले दिन दोपहर तक यहाँ पहुँच गए। दाह-संस्कार की रस्में पूरी की जाने लगीं। उसके तुरंत बाद दोनों ने सब संबंधियों और मित्रों को बता दिया कि मृत्योपरांत सब रस्में पूरी करने के लिए हमारे पास केवल चार दिन हैं। हमें शीघ्रातिशीघ्र वापस लौटना है। मृत्योपरांत सब रस्में पूरी करानेवाले पंडितजी से कहा गया कि शॉर्टकट अपनाइए।

सब रस्में पूरी हो गईं। कमलकांत और नंदिनी ने मकानों की खरीद-फरोख्त करनेवाले दलालों को बुलाकर पूछा कि यह मकान हमें बेचना है। कितने में बिक सकता है। आखिर सौदा तय हो गया। नंदिनी और कमलकांत के वापस जाने की तारीखें तय हो गईं।

अब प्रश्न था कि पापा के सामान का क्या किया जाए? कमलकांत ने पुस्तकों की अलमारियों को खोला, ''ओफ्फो! अब इस दहेज का क्या करें?''

अन्य वस्तुओं को देखा—कंबल, रजाई, कपड़े, बरतन आदि। ''वाह पापाजी, वाह! इतने अरसे से आप इस कबाड़ को रखे हुए थे!''

कमलकांत और नंदिनी ने बड़ी बेमुरव्वती से सब पुस्तकों को अलमारियों में से निकालकर कमरे के बाहर आँगन में डाल दिया और विभूति नारायण को बुलाकर कहा, ''इनमें से जो पुस्तकें आप ले जाना चाहें, उठा लें। शेष को हम कूड़े में डालकर मकान की सफाई करा देंगे। आप जल्दी करें। हमें आज रात की फ्लाइट पकड़नी है।''

तब विभूति नारायण ने उन पुस्तकों को एक गठरी में बाँधा और अपने घर ले जाकर लोहे के एक रैक में रख दिया। पुस्तकें उठाकर ले जाते समय विभूति नारायण ने कहा, ''बेटा, इन पुस्तकों में तो आपके पापा की जान बसती थी। पापा की निशानी के तौर पर क्या आप लोग एक-एक पुस्तक भी अपने साथ नहीं ले जा सकते? विवेकानंद, योगानंद, अरविंद घोष में से क्या आपको कोई पुस्तक पसंद नहीं है?''

हँसकर दोनों ने कहा, ''अंकल! छोड़िए इन दकियानूसी बातों को। पीछे मुड़कर देखने का समय किसके पास है, जो छूट गया सो छूट गया।''

शाम को कमलकांत और नंदिनी अपनी-अपनी अटैची और मकान की रकम के क्रेडिट कार्ड लेकर जब अपने-अपने देश को वापस जाने लगे तो उन्होंने पापा के अभिन्न मित्र विभूति नारायण को घर के बाहर बुलाकर कहा, ''अच्छा अंकल, अब हमेशा के लिए बाय। विश यू बेस्ट ऑफ लक!'' और यह कहकर वे वापस चले गए।

४९१, कृष्णापुरी, खादरवाला रोड
मुजफ्फरनगर-२५१००२
दूरभाष : ८१२६४२५५७०

राम झरोखे बैठ के

आज की मुखौटा सदी

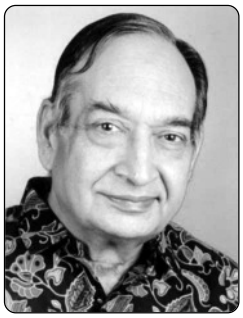

● गोपाल चतुर्वेदी

मोहल्ले की हर गतिविधि की खबर हमें न हो तो अपने पेट में दर्द का अहसास होता है। तभी तो जब वर्माजी दस-पंद्रह दिन से नजर नहीं आए तो हम सशंकित हुए? यह हो क्या गया? अगर वह युवा कन्या होते तो हम मान लेते कि वह किसी पुरुष मित्र के साथ 'लिव-इन' के प्रयोग के लिए प्रस्थान कर गई होगी। माता-पिता की क्या मजाल कि चूँ भी करें। यों कुछ पुरुषों को भी अध्यात्म हो जाता है। कहीं वर्मा को तो नहीं हो गया? कल तक अच्छे-भले घर पर बीवी से तू-तू, मैं-मैं कर रहे थे। सुबह अचानक धर्म का दौरा पड़ा। निकले दफ्तर जाने को और अज्ञातवास में अंतर्धान हो लिये। बाद में पता लगा कि दफ्तर में करोड़ों का घपला कर गए हैं। जैसा दफ्तरों का दस्तूर है, यह खुलासा भी तब ही हुआ, जब चिड़िया खेत ही चुग नहीं चुकी, फुर्र भी हो चुकी थी।

अपनी मोहल्ले में ख्याति सर्व ज्ञानी की है। हमने बहुत ताक-झाँक की जहमत से उसे अर्जित किया है। इस पर बट्टा लगना अपने आत्मसम्मान का प्रश्न है। दोस्त क्या कहेंगे, मोहल्ले में भद अलग होगी? कहीं भी एक से दो मिले तो वह अपनी छीछालेदर करेंगे, ''व्यर्थ में मोहल्ले का पंच बनना है। उसे यह खबर तक तो है नहीं कि वर्मा कहाँ गायब है?''

अपनी इज्जत बचाने के खयाल से प्रेरित होकर हमने वर्मा के घर की घंटी बजा दी। हमें ताज्जुब हुआ, जब श्रीमती वर्मा ने दरवाजा खोला और चहकीं, ''अरे भाई साहब! बहुत दिनों बाद नजर आए? सब कुशल-मंगल तो है?'' हमने खुद को आश्वस्त किया कि कौन जाने, जैसे कुछ पति पत्नी के मायके-गमन से आनंदित होते हैं, वैसे ही कुछ पत्नियाँ भी पति की गुमशुदगी से चिंतित न रहती हों? संसार का कारोबार ऐसी विविधता के बिना कैसे चले? हमने उनकी खैरियत दरयाफ्त की, ''बहुत दिनों से वर्माजी नहीं दिखे तो हमें चिंता हो गई। मोहल्ले के भाईचारे के नाते हम खुद ही चले आए खैरियत जानने। फोन क्या करना, वह तो अकसर मृतप्राय ही रहते हैं, कभी-कभार चेते तो चेते।''

श्रीमती वर्मा ने शराफत जताई। हमें ड्राइंगरूम में निमंत्रित कर चाय के साथ सूचित किया कि उनके पति आजकल अपने नए धंधे में व्यस्त हैं। 'कौन सा धंधा' जैसे सवालों पर उन्होंने अनभिज्ञता प्रगट की, ''वह सुबह-सुबह सैर को जरूर जाते हैं। कल आप उनसे ही पता कर लेना।'' कहते हुए उन्होंने हमें विदा किया। हमारे ऐसे कई दूसरों के लिए जीते हैं। वर्मा का नया धंधा जानने की उत्सुकता में हम रात भर करवटें बदलते रहे। यहाँ तक कि पत्नी को तबीयत का हाल पूछना पड़ा। ''नींद नहीं आ रही है।'' सुनकर उन्होंने सुझाव दिया, ''दफ्तर के रिकॉर्ड रूम की फाइलें गिनने की कोशिश करो, खुद-ब-खुद अंटागफील होंगे।'' जो काम जीवन भर कभी नहीं किया था, वह भी किया, याने सूरज को उगते देखा। मोहल्ले के पास एक ही पार्क है। हमने वर्मा को वहीं जा पकड़ा। वह धावक की पोशाक ही नहीं पहने थे, दौड़ने जैसी नामाकूल हरकत भी कर रहे थे। उन्होंने हमें भी निमंत्रित किया, अपनी इस बेहूदा कसरत में। हमें पास की बैंच पर बैठकर प्रतीक्षा करने का विकल्प अधिक रुचिकर लगा।

दरअसल, हम एक बेहद अहिंसक किस्म के इनसान हैं। किसी भी हिंसक गतिविधि में भाग लेना हमें मंजूर नहीं है। क्या वर्मा को भोर की दौड़ में यह अंदाज भी है कि इससे सैकड़ों कीड़े-मकोड़ों की जान जाने की आशंका है? दूब की बस्ती-बस्ती त्राहि-त्राहि अलग करती होगी! इसीलिए जब साथी चमड़े का पहनते हैं, हम किरमिच के जूते से काम चलाते हैं। आज के अलावा हमने कम ही पैरों को कष्ट दिया है। हिंसक हरकतें अपने स्वभाव के प्रतिकूल हैं। आस-पास की दूरी के लिए स्कूटर है, दफ्तर के लिए नगर बस! संभव है कि सड़क में अदृश्य कीड़े-मकोड़ों की पूरी कॉलोनी हो। उसे नष्ट करने का पाप नगर-बस भोगे, हम इसके भागीदार क्यों बनें?

हमारे इसी अहिंसक चिंतन के दौरान वर्मा दौड़ की हिंसा पूरी करके लौट आए। इतने दिनों से दर्शन न हो पाने की अपनी चिंता हमने उन्हें जताई। उन्होंने अपनी व्यस्तता का हवाला दिया। ''क्या नया कर रहे हैं?'' हमने जानना चाहा। ''हमने मुखौटों का उद्योग लगाया है। एक शो रूम भी खोला है अपने उत्पाद का।'' हम चौंके। माना कि इधर दुनिया में रोज कुछ-न-कुछ नया हो रहा है, फिर भी मुखौटों का 'मास-प्रोडक्शन' तो वाकई अजूबा है। हमने हिम्मत कर प्रश्न किया, ''वर्माजी, यह क्या बला है?'' उन्होंने हमारे अज्ञान और आश्चर्य को बिना भाव दिए बताया, ''दक्षिण के कथककली नृत्य का तो आपने नाम सुना होगा। इसमें मुखौटों की ही माया है। आज पूरे देश में या तो मुखौटों की सांस्कृतिक एकता है या फिर करप्शन की। यदि हमें मुल्क को भ्रष्टाचार से बचाना है तो मुखौटों को बढ़ाना ही बढ़ाना है।''

यह उलटबासी अपने पल्ले न पड़ी। हम जिद की हद तक अड़े रहे। ''पर मुखौटों का उपयोग क्या है?'' उन्होंने हमें ऐसे देखा जैसे आकाश का सतरंगी इंद्रधनुष धरती की रंग बदलती अदनी गिरगिट को देखे। फिर कृपा-भाव से उन्होंने हमें ज्ञान दिया, ''आज समाज से लेकर सियासत तक, यदि किसी का सर्वाधिक प्रचलन है तो वह मुखौटों का है। हर इनसान कोई-न-कोई मुखौटा लगाए है। आप दूसरे का उदाहरण क्यों लें? अपने ही अंदर झाँकें। आप क्या अपनी पत्नी के बारे में उतने ही जिज्ञासु हैं, जितने मोहल्ले के बारे में? क्या आपने शादी के पूर्व या उसके बाद के उनके जीवन का उतनी ही बारीकी से अध्ययन किया है, जितना मोहल्ले के लोगों का? क्या उनके कार्यालय के मित्रों की आपको जानकारी है? इसका सीमित अर्थ है कि घर पर आपकी सहज पति की भूमिका है और मोहल्ले में जबरदस्त जिज्ञासा का मुखौटा! जो आप हैं नहीं, वह मुखौटे से दिखने का प्रयास करते हैं। आपके असली चेहरे पर जिज्ञासा का सिर्फ एक मुखौटा है। यह दीगर है कि आपको इसकी खबर नहीं है। हमारा ध्येय आप जैसों के इसी प्रयत्न को और विश्वसनीय बनाना है।''

मियाँ की जूती से मियाँ के सिर को ही निशाना बनाकर उन्होंने हमें अपनी मुखौटा-महारत का परिचय दिया। हमारे मन में फिर भी प्रश्न कुलबुला रहे थे। क्या यह अदृश्य मुखौटे बनाते हैं? चेहरे पर कोई यह झिल्ली चढ़ा ले तो हत्यारा, क्या उससे वर्तमान का नैतिक बेचारा नजर आता है? उन्होंने हमें ज्ञान दिया कि इतना ही नहीं, वह अपने कस्टमर को उसके चहेते स्वाँग में पटुता का प्रशिक्षण भी देते हैं। उन्होंने एक ऐसा वैज्ञानिक मुखौटा बनाया है, जिससे कोई काला अक्षर भैंस बराबर, चतुर चालाक जब जी चाहे साहित्यकार बने, जब जी चाहे विद्वान् और जब मन करे, समाज सेवक। ''यह हमारा बहु-उद्देशीय मुखौटा है। जो आजकल बाजार में बड़ा लोकप्रिय है। इसका रिमोट मुखौटा लगानेवाले की जेब में रहता है और वह समयानुसार बटन दबाकर मौके के अनुरूप बन जाता है।''

मियाँ की जूती से मियाँ के सिर को ही निशाना बनाकर उन्होंने हमें अपनी मुखौटा-महारत का परिचय दिया। हमारे मन में फिर भी प्रश्न कुलबुला रहे थे। क्या यह अदृश्य मुखौटे बनाते हैं? चेहरे पर कोई यह झिल्ली चढ़ा ले तो हत्यारा, क्या उससे वर्तमान का नैतिक बेचारा नजर आता है? उन्होंने हमें ज्ञान दिया कि इतना ही नहीं, वह अपने कस्टमर को उसके चहेते स्वाँग में पटुता का प्रशिक्षण भी देते हैं। उन्होंने एक ऐसा वैज्ञानिक मुखौटा बनाया है, जिससे कोई काला अक्षर भैंस बराबर, चतुर चालाक जब जी चाहे साहित्यकार बने, जब जी चाहे विद्वान् और जब मन करे, समाज सेवक। ''यह हमारा बहु-उद्देशीय मुखौटा है। जो आजकल बाजार में बड़ा लोकप्रिय है। इसका रिमोट मुखौटा लगानेवाले की जेब में रहता है और वह समयानुसार बटन दबाकर मौके के अनुरूप बन जाता है।''

उन्होंने हमें सूचना दी कि आजकल यह मुखौटा उनका सबसे पॉपुलर प्रॉडक्ट है। समाज से लेकर सियासत तक सब इसके तलबगार हैं। पार्क के पास ही चाय का एक ढाबा है। हमें शक हुआ कि वर्माजी ने हमें देखकर अपना मार्केटिंग का मुखौटा लगा लिया है। इससे जाहिर है कि हम उनसे कितना प्रभावित हुए हैं। उन्होंने ढाबे में चाय ही नहीं पिलाई, अपनी उपलब्धियाँ भी गिनाईं। ''आप तो घर के हैं, आपसे क्या छिपाना!'' से प्रारंभ कर उन्होंने बताया कि कैसे उनके शो-रूम में भीड़ उमड़ती है। शादी-शुदा महिलाएँ, जो पर-पुरुष के प्रेम में फँसी हैं, कैसे पति-प्रेम के मुखौटे की ओर आकृष्ट होती हैं। लड़के की शादी के समय तक दहेज के प्रबल पक्षधर कैसे लड़की के विवाह के वक्त दहेज के प्रखर विरोधी बनते हैं और उचित मुखौटे का मुँहमाँगा मूल्य चुकाने को प्रस्तुत हैं। हम ऐसों की काउंसलिंग भी करते हैं। हमारी पूरी कोशिश है कि कोई यदि उनके सैद्धांतिक विरोधाभास को पकड़ भी ले तो वह उसे औचित्यपूर्ण उत्तर देकर कैसे पछाड़े।

हमने चाय का घूँट लेते जिज्ञासा प्रगट की, ''वह कैसे?'' उन्होंने हमारे मन के तम में तर्क के जुगनू चमकाए, ''इसमें क्या मुश्किल है? बस इतना ही तो कहना है कि जो वक्त के साथ बदले नहीं, वह आदमी क्या! वह तो पशु के समान है। हर इनसान का चिंतन, विचार, नजरिया वक्त के साथ बदलता है। दहेज के दुर्गुणों और अन्याय का आभास उसे दहेज लेकर ही हुआ है।'' उन्होंने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए बताया कि दल-बदल में भी यही तर्क काम आता है।

कभी लोग चुनाव के समय उसूल के बहाने पार्टी बदलते हैं। अब वह यह कहने में असमर्थ है कि पार्टी में जो भी उपलब्ध था, खूब डकारा, अब वहाँ था ही नहीं कुछ खाने को, तो नए व्यंजनों से भरपूर दूसरी पार्टी में टहल लिये। उनके लिए हमारा दल-बदल मुखौटा उपयोगी है। सबसे पहले हमारी सलाह पर वह अपने नेता को सर्वथा नकारा और नालायक घोषित करते हैं। इसके कुछ निर्धारित और सर्वस्वीकृत मानक हैं। मसलन, नेता घनघोर रूप से हिटलर का अवतार है। ठकुरसुहाती के अलावा कुछ भी और कोई बोले तो वह बहरा है। एक और मुद्दा है, नेता की आलोचना के लिए।

उसमें पैसे की ऐसी हवस है कि बिना करोड़ों लिये योग्य से योग्य प्रत्याशी को टिकट के नाम पर ठेंगा दिखाता है। आर्थिक भ्रष्टाचार का यह भयंकर रूप उनकी अंतरात्मा को भीतर तक क्षत-विक्षत कर गया। जब उनका दम घुटने लगा तो जनसेवा के लिए उन्हें कहीं अन्य ठिकाना खोजना ही पड़ा। आजकल वह इस्तीफा देकर समर्थकों से सलाह ले रहे हैं कि किस दल को कृतार्थ करें। एक अन्य अंतर सेक्युलर और कट्टर का भी है। समय के साथ जनता की ऐसे फर्क में आस्था नहीं रही है। उसे बोध हो गया है कि ऐसे सारे 'लेबल' वोट की भेड़ों को मूँड़ने के दाँव हैं। कट्टर दल छोड़कर कोई आए तो ऐसे गंगा नहाए कि तत्काल सेक्यूलर बने! उसके पुराने पाप धुलें ही नहीं, आँखों से ओझल हों! अब उनकी याद पार्टी को तभी आए, जब वह फिर दल को त्यागने की कगार पर हों!

चाय के प्लास्टिक प्याले या कुल्हड़ों में आजकल चुल्लू भर चाय होती है। वर्मा ने देखा कि हमारी चाय का चुल्लू समाप्त हो रहा है तो उन्होंने फौरन से पेश्तर दूसरे चुल्लू का ऑर्डर दे दिया। उनका दृढ निश्चय था कि मोहल्ले में मुखौटों का प्रचार हो। उन्हें यह भी विश्वास रहा होगा कि इसके लिए बिना पैसे का प्रचारक उनके सामने उपस्थित है। उन्होंने बात आगे बढ़ाई। सामान्य लोगों के लिए भी उनके पास हर अवसर के आधुनिक मुखौटे हैं। अमर युवा प्रेम के नाटक से लेकर कई-कई आशिकों को उल्लू बनाने तक। इनके सहारे बेटे, माँ-बाप, बहन-भाई को चूना लगाने में समर्थ है। माँ-बाप तो दौलत हथियाने के बाद केवल कूड़ेदान के सुपात्र हैं। यों दिखाने को वह घर में ही रहते हैं। पूरे मोहल्ले में पुत्र की छवि आज्ञाकारी व समर्पित बेटे की है। बस जब कोई घर आए तो अकसर पाया जाता है कि वह उनसे मिलने में अस्वस्थ होने के कारण असमर्थ है। स्वस्थ रहें भी तो कैसे? पूरी उम्र उन्होंने जेब काट-काटकर इच्छाओं का दमन किया है बेटे की उच्च शिक्षा के लिए। आज उस पर आश्रित होकर वह 'आउट-हाउस' का सुख भोग रहे हैं। वर्मा बताते हैं कि यह उनके मुखौटे का कमाल है कि कोई अन्वेषक भी असलियत ताड़ नहीं सकता है।

वर्मा के पास मुखौटों की इतनी विविधता है कि देश में बोलियों की क्या होगी। इसे लगाकर ही पीढ़ियों से ऐशो-आराम में रहने के आदी, गरीबों के मसीहा बनते हैं। इसे लगाया नहीं कि कुबेर से कंपटीशन करने वाले जनसेवक अभावग्रस्त व दलितों के तारनहार का चोला धरते हैं, वह भी इतना सटीक कि कोई सपने में भी शक तक न करे। उन्होंने अपना निष्कर्ष सुनाया कि सारी चोला-संस्कृति सिर्फमुखौटों की देन है। उन्हें यकीन हो गया कि दो चुल्लू चाय पिलाकर उन्होंने हमें बिना भुगतान का निष्ठावान प्रचारक बनाने में सफलता पाई है। अचानक उन्होंने घड़ी देखी और अपना मुखौटा मॉल बनाने का संकल्प सुनाकर वह अपनी शोफर ड्रिवन गाड़ी में बैठकर कूच कर गए।

उनके मुखौटा-वर्णन का हम पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि कोई जब आदर्श, उसूल, देशप्रेम या अपने गृहस्थी के लगाव वगैरह की बात करता है तो एकबारगी हमारा मन करता है कि इसके चेहरे को नोचकर परखें कि इसने मुखौटा लगा रखा है कि नहीं? जब बड़े नेता गरीबों, किसानों, वंचितों, दलितों आदि के हमदर्द बनते हैं, तब भी अपना मन इनके पास पहुँचकर इनकी असलियत भाँपने का होता है, पर इनकी सुरक्षा के किले से पार पाना कठिन है। कहीं सारी सुरक्षा मुखौटे के लिए तो नहीं है?

वर्मा से बात कर अब हम लोगों के मुख के बारे में कम, मुखौटे के विषय में अधिक सजग हैं। हम तो यहाँ तक आशंकित हो गए हैं कि कितने पति या पत्नी अथवा प्रेमी-प्रेमिका एक-दूसरे की वास्तविक शक्ल से वाकिफ हैं? जो वह निहारते हैं, वह मुखौटा ही तो है। बस, कभी-कभार, उन्माद के क्षण में कलई खुलती है और तब संबंध टूटने की नौबत भी आ जाती है।

फिलहाल गनीमत है। वर्माजी का सिर्फ मुखौटों का शो-रूम है। हम सोच-सोचकर परेशान हैं कि जब मुखौटों का मॉल खुला तब रिश्तों का क्या होगा? कौन कहे तब धोखा, छल, फरेब, कपट, नाटक, झूठ, रटे-रटाए आदर्श वाक्य वगैरह-वगैरह और न पनपें? कहीं इक्कीसवीं सदी का दूसरा नाम मुखौटा सदी तो नहीं है? यदि नहीं है तो कहीं हो न जाए!

९/५, राणा प्रताप मार्ग
लखनऊ-२२६००१

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

श्राप-मुक्ति

● संजीव रस्तोगी

गाँव की पुलिस चौकी पर कुछ खास आमदनी नहीं थी। दिनभर में कुल दो-चार अदावतें, मारा-पीटी और छीना-झपटी जैसी टुच्ची वारदातें तथा भूले-भटके कभी किसी का खेत-खलिहान कब्जिया लेने जैसी एकाध घटनाएँ। गाँव में छोटे आदमी के पास पैसा नहीं होता, पर उसके पास रोने-गिड़गिड़ाने को बहुत होता है। गाँव का बड़ा आदमी पहले ही सरपंच और तहसीलदार की सिफारिश जेब में लिये फिरता है। जरूरत पड़े तो विधायकजी भी थाने तक आने में गुरेज नहीं करते। ऐसे में बेचारे पुलिसवालों की आजीविका आखिर चले तो कैसे?

थाने की नौकरी सिर्फ तनख्वाह पर नहीं की जाती। जब तक दिन भर में कुछ अच्छा सा माल अंदर न आ जाए, लगता है उस दिन जैसे नौकरी ही नहीं की। ऐसे में गाँव की इस चौकी पर तैनात दारोगा सुत्तन लाल को लगता था, जैसे यहाँ छुट्टी मनाने या फिर सजा के तौर पर भेजा गया हो। सुत्तन लाल के लिए यहाँ पर दिन काटना उमरकैद की सजा पाए मुजरिम से भी ज्यादा कठिन था। शहर में मकान बनवाने का सपना अब तक सिर्फ एक सपना ही था और बीवी की गाड़ी, गहने की किचकिच से कहीं दूर-दूर तक छुटकारा मिलता दिखता नहीं था।

दरोगा सुत्तन लाल इसी उधेड़बुन में कभी अपनी मूँछों को उमेठते तो कभी बेवजह चौकी में टहलते हुए अपना टाइम पास कर रहे थे। थके रहे होंगे बेचारे, कुरसी पर बैठे कि आँख लग गई। आँख खुली तो सामने दो फरियादी थे।

''हुजूर! यह बुढ़िया हमारे दरवाजे पर एक छप्पर डाले बैठी है। कुछ कहो तो मरने-मारने पर उतर आती है। गालियाँ तो ऐसे देती है हुजूर कि आदमी भी शरमा जाए। हम भले लोग हैं हजूर, बाल-बच्चों वाले···। इस पागल बुढ़िया से हमारा बचाव कीजिए हजूर, और हमारा दरवाजा खाली करा दीजिए।''

सुत्तन लाल ने गौर से फरियादी की तरफ देखा। वह गेंदामल था। गाँव का एक मोटा आढ़ती और ब्याज पर पैसे उठानेवाला बनिया। गाँव में बहुतों की जमीन उसके पास गिरवी पड़ी है और अपनी मियाद पूरी होने के दिन गिन रही है। गेंदामल से उधार लेते समय लोगों को मालूम रहता है कि वह उसका उधार चुका नहीं पाएँगे, इसलिए कोई खास अदावत उन जमीनों को लेकर नहीं होती। गेंदामल आज अपनी जमीन पर किसी और के कब्जे की फरियाद लेकर चौकी आया था। बात कुछ अजब सी थी।

सुत्तन लाल ध्यान से सारी बात सुनते रहे। अचानक उन्हें सुरती की तलब सी महसूस हुई। पैंट की जेब में हाथ डालकर उन्होंने तमाखू की डिबिया निकाली, हथेली पर थोड़ी सी रखी और चूना मिलाकर मसलने लगे। आज सुबह से हथेली बड़ी खुजा रही थी। सुबह तो मंदिर में बनवारी के दर्शन भी कर आए थे। शहर में मकान बनवाने का जो सपना था, वह अब सिर्फ बनवारी ही पूरा कर सकते थे। गाँव की इस नौकरी में अपना पेट पाल लें, वही बहुत है। भगवान् ने लगता है कि आज अरजी पर सुनवाई की है।

तमाखू को चुटकी में उठाकर सुत्तन लाल ने उसे किसी कुशल कारीगर के अंदाज में अपने बाएँ गाल में दबा लिया।

''क्यों री बुढ़िया! खाली क्यों नहीं करती है इस भले आदमी का दरवाजा? क्या समझी है अपने को! कुछ नियम-कानून है कि नहीं इस देश में।'' सुत्तन लाल अब बुढ़िया से मुखातिब हुए।

बुढ़िया कई दिन की आग मन में लिये बैठी थी, एकदम से फूट पड़ी—''कानून है, तभी तो आई हूँ यहाँ कानून के दरवाजे। यहाँ से इनसाफ नहीं मिला तो समझ लूँगी कि सब झूठी बात है, दखावे की। असल में कानून जैसा कुछ है ही नहीं। गरीब आदमी सब जगह सताया जाता है, भगवान् के यहाँ और कानून के यहाँ भी।''

''बस-बस, हमें ज्यादा पाठ मत पढ़ा। चुपचाप भले आदमी का दरवाजा खाली कर और यहाँ से चलती बन।'' सुत्तन लाल को खीज हो रही थी। औरत जात थी। ज्यादा जोर-जबरदस्ती करते तो कुछ और बखेड़ा खड़ा होने का डर था।

''देख··· ठीक तरह से मान जाएगी तो साहजी से कहकर तेरे रहने-खाने का इंतजाम करवा दूँगा। वैसे भी अब और तब में अटकी है, कब सिधार जाएगी, पता नहीं। झोंपड़ा लेकर परलोक तो नहीं जाएगी न।'' दरोगा ने अपनी समझ से बुढ़िया को समझाने की कोशिश की।

''लेकर तो कोई भी नहीं जाएगा साहब। न झोंपड़ी और न हवेली। भला पूछे कोई कि मेरी आठ फुट की झोंपड़ी में क्यों आँख गड़ाए है यह आदमी, अपनी भरी-पूरी हवेली के बाद भी। शायद इसे सबकुछ साथ ले जाने का रास्ता पता चल गया है।'' बुढ़िया जोर से ऐसा हँसी कि सुत्तन

लाल एक बार को ठिठक गया।

''ठीक कहता है गेंदामल। बुढ़िया सचमुच पागल हो गई है।''

सुत्तन लाल ने उस दिन किसी तरह दोनों को विदा किया, कानून के हाथ बहुत लंबे होते हैं, ऐसा समझाकर और कानून के रास्ते मामले को जल्दी से सल्टा लेने का वादा कर। ''हुजूर की खिदमत में जल्द ही हाजिर होऊँगा।'' जाते समय गेंदालाल नाटकीयता के साथ हाथ जोड़ते हुए गिड़गिड़ाया।

सुत्तन लाल को बीसियों साल हो गए हैं, पुलिस की नौकरी में। लोहे पर कब चोट करनी है, अच्छी तरह पहचानता है।

''हाँ ठीक है, ठीक है लालाजी। बेईमानी के भी अपने कुछ उसूल होते हैं। मामले को समझने दीजिए तनिक।'' सुत्तन लाल ने समझने पर जोर डालते हुए कहा।

''मेरे पास तो तुम्हें देने को कुछ है नहीं, दारोगा साहिब। पर इस जनम में मैं झोंपड़ी खाली करने से रही। अब तो भगवान् ही आकर मुझे वहाँ से निकालेंगे।'' बुढ़िया ने एक भद्दी सी गाली गेंदामल के खानदान पर उछाली और लाठी टेकती चौकी से बाहर चली गई।

सुत्तन लाल कुछ देर तक असमंजस की स्थिति में कोहनी मेज पर टिकाए बैठे रहे, फिर अचानक चिल्लाए, ''कहाँ मर गए सालो सब! कोई पानी भी नहीं पिला सकता क्या इस चौकी में।''

अगले दिन मौका-मुआयना करने सुत्तन लाल गेंदामल की हवेली पर पहुँचे।

हवेली के बाएँ किनारे पर एक आठ फुटिया गली थी, जिससे होकर जाने पर पीछे गेंदामल का आलीशान बागीचा था। इसी गली के दूसरे किनारे पर बुढ़िया का झोंपड़ा था। गेंदामल के सुनहरे गोटेवाले विलायती कोट पर टाट की एक चप्पी जैसा।

पिछले साल अपने लड़के की शादी में गेंदामल ने अपने बगीचे में एक बहुत बड़ी दावत रखी थी। उस दावत की सारी शान इस झोंपड़ी की वजह से जाती रही थी। आने-जानेवाला हर मेहमान रास्ते में खड़ी इस बेढब झोंपड़ी को देखकर मुँह बिचका रहा था और जाते समय उसे किसी भी तरह हथिया लेने की नेक सलाह दिए बिना नहीं रहा था।

गेंदामल की आँखों में वह झोंपड़ी बहुत दिनों से खटक रही थी, शायद तब से जब से उसने जमीनों को हथियाने का धंधा शुरू किया था। बात तब और बिगड़ी, जब उसने हवेली के पीछे की जमीन खरीदकर उस पर बागीचा बनवाना शुरू किया। बुढ़िया की झोंपड़ी उस नखलिस्तान के दरवाजे पर अकाल की छाया जैसी टँग गई।

गेंदामल ने सुत्तन लाल की दिल खोलकर सेवा की। फलों का ताजा शरबत, परदेश से मँगवाए हुए मेवे, बढ़िया छेने की मिठाई और फिर पान-गिलौरी। सुत्तन लाल इस खातिरदारी से खासा प्रभावित था। उसके बस में होता तो बुढ़िया को अभी वहाँ से भगाकर गेंदामल को उस झोंपड़ी में प्रतिस्थापित कर देता।

आखिर में चलते समय पीतल की कशीदाकारी वाली एक छोटी सी बकसिया। ''अब यह क्या है गेंदामल?'' सुत्तन लाल ने एक चौकन्नी निगाह बकसिया की ओर डाली।

''अरे हुजूर! कुछ नजराना है। गरीब जनता की ओर से। हमारी भला यह औकात कहाँ कि हम हुजूर की कुछ खातिर कर सकें। यह तो बस...।''

गेंदामल आज बाजी मार लेना चाह रहा था। इससे अच्छा मौका अब नहीं मिलेगा।

बुढ़िया को वहाँ से भगाकर वहाँ पर चौकीदार का एक कमरा बनाना होगा। बिल्कुल शहर मे बने फार्म हाउसों की तरह। तब कहीं जाकर उसका कलेजा ठंडा पड़ेगा। थोड़ा-बहुत पैसा गया तो क्या? चीज अगर पसंद हो तो मोलभाव नहीं करना चाहिए। गेंदामल बनियागीरी के इस उसूल को बखूबी जानता था।

उस दिन का मामला वहीं रफा-दफा हुआ। दीवानजी ने लपककर बकसिया जीप में डाली और साहब को लेकर फौरन उड़नछू हो लिया। आजकल का समय बहुत खराब है। घूस लेते समय भी बहुत सावधानी की जरूरत पड़ती है।

चौकी जाकर सुत्तन लाल ने फटाफट बकसिया खोली। सौ-सौ के नोटों की कई सारी गड्डियाँ थीं। दिल को तसल्ली हुई। घर बनाने के लिए कुछ पेशगी तो मिली। दीवान चोर आँखों से बकसिया की ओर ताक रहा था। सुत्तन लाल ने बेपरवाही से एक गड्डी उसकी ओर उछाल दी। सरकारी काम-काज में सबका खयाल तो रखना ही पड़ता है।

उस रात सोते समय सुत्तन लाल को बेहद सुखकर नींद आई। सपने में उसे अपना एक खूब बड़ा मकान सा बनता दिखाई दिया, जिसके दरवाजे पर एक बड़ी सी गाड़ी भी खड़ी थी।

बुढ़िया का बयान और मौका-मुआयना अभी बाकी था। सुत्तन लाल की अब उस ओर जाने की कतई इच्छा नहीं थी, पर कागजों की अपनी मजबूरी थी। उनका पेट भरना भी जरूरी था। दो-तीन दिन बाद बिना बताए अचानक सुत्तन लाल बुढ़िया के दरवाजे जा खड़ा हुआ।

एक टूटी सी चारपाई, एक किनारे पर बँधी एक रस्सी और उस पर पड़े कुछ मैले कपड़े, कोने में एक काई जमा हुआ बरसों पुराना घड़ा और दो-चार जमा टूटे-फूटे बरतन; यही गृहस्थी थी उस झोंपड़ी में। छप्पर पर गीली लकड़ियों के सुलगाए धुएँ के निशान से गहराए हुए थे और निगरानी के अभाव में हर ओर तमाम आगंतुक जीव-जंतुओं ने कब्जा जमाया हुआ था।

सुत्तन लाल को घर के दरवाजे पर देखकर बुढ़िया के जैसे होश ही गुम हो गए। सूखी हुई हड्डियों पर मढ़ी हुई खाल और उस पर आँखें जैसे अब-तब बरस पड़ने को हों। बुढ़िया ने जल्दी से आकर चारपाई को हाथों से झाड़ा और फिर अदब से एक किनारे खड़ी हो गई। सुत्तन लाल अभी भी झोंपड़ी का मुआयना कर रहा था, पर उसे कुछ अच्छा महसूस नहीं हो रहा था।

बुढ़िया को अचानक जैसे कुछ याद आया। झोंपड़ी में ऐसे अतिथि के सत्कार के लिए शायद कुछ नहीं था। कल रात के बासी चावल और गुड़ की एक डली। बुढ़िया सकुचाते हुए एक तश्तरी में सजा लाई।

सुत्तन लाल ने कुछ कहना चाहा, पर आवाज गले में ही गूँजती सी रह गई, बाहर ही न आ पाई। बमुश्किल उसने पानी का एक घूँट गले से उतारा और उठ खड़ा हुआ।

बुढ़िया को फिर कुछ याद सा आया। वह बिजली की तेजी से उठी और चारपाई के पीछे पड़ी एक मैली गठरी में से कुछ टटोलने लगी। गठरी का सब सामान निकलकर बाहर फैल गया और उसमें से एक तसवीर निकलकर बाहर छिटक गई। एक दुलहन की तस्वीर, शादी के जोड़े में, जो सीलन लगकर चितकबरी हो जाने के बाद भी अपने को छुपा पाने में असमर्थ थी। सुत्तन लाल की हथेलियाँ गीली हो रही थीं। वह जल्दी-से-जल्दी इस झोंपड़ी से बाहर निकल जाना चाहता था।

बुढ़िया अभी भी अपनी गठरी में उलझी हुई थी। सुत्तन लाल ने जल्दी से बाहर निकलने को पैर बढ़ाए और दरवाजे तक पहुँचा कि बुढिया कहीं से आकर आगे खड़ी हो गई।

''हजूर...'' बुढ़िया के होंठ काँप रहे थे और उसकी सारी देह भी जैसे काँप रही थी।

उन्हीं काँपते हाथों से उसने सुत्तन लाल के हाथों में कुछ थमा दिया। सुत्तन लाल ने उसे ध्यान से देखा। वह बीस रुपए का एक मुड़ा-तुड़ा नोट था, जो अपने बरसों पुराने होने की चुगली खा रहा था।

सुत्तन लाल को लगा, जैसे अचानक ही उसकी वरदी भीगकर हजारों मन की हो गई हो और उसके बूट जैसे लोहे के बने हों मन-मन भर के, जिन्हें उठाना भी मुश्किल हो रहा हो। किसी तरह सुत्तन लाल निकलकर बाहर जीप में बैठा और निढाल हो गया।

तीन दिनों के बाद गेंदामल के दरवाजे पर दस्तक हुई। चौकी का दीवान था, कचहरी का सम्मन लिये हुए। बुढ़िया की जमीन पर नाजायज कब्जा कर लेने के जुर्म में कचहरी में हाजिरी का हुकुम था।

गेंदामल हैरान था। दीवान भी हैरान था। बुढ़िया भी हैरान थी। सुत्तन लाल भी हैरान था।

आज बरसों के बाद उसे अपने छोटे से घर में बेहद गहरी नींद आई थी और उस नींद में कोई भी सपना नहीं था।

निदेशक राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ,
धन्वंतरि भवन, रोड नं. ६६, पंजाबी बाग (पश्चिम),
नई दिल्ली-११००२६
दूरभाष : ९४१५०२२९५५

दोहे

राम करें वनवास तो...

● रामनिवास 'मानव'

नहीं प्रेम का मोल

जब-जब पश्चाताप से, जीवन हुआ हराम।
मरा-मरा के मंत्र से, तब-तब उपजे राम॥

कृतकृत्य हम हुए सदा, लेकर जिसका नाम।
रोम-रोम में वह रमा, समझ उसी को राम॥

राम करें वनवास तो, कृष्ण रचाएँ रास।
अपना-अपना भाग्य है, भैया रामनिवास॥

कौन बजाए बाँसुरी, कौन सुनाए तान।
गोकुल में कान्हा नहीं, मथुरा में रसखान॥

हमने देखे घूमकर, सब भूगोल-खगोल।
नहीं रूप का तोल है, नहीं प्रेम का मोल॥

गोबर अब शहरी हुआ, भूला सब घर-गाँव।
होरी-धनिया को मगर, कहाँ दूसरा ठाँव॥

जिसके मन में वेदना, जिसका उर निस्स्वार्थ ।
वहीं देवाधिदेव हैं, और वही सिद्धार्थ॥

तुलसी का बिरवा नहीं, नहीं नीम की छाँव।
ऐसे अगड़े शहर से, अच्छा पिछड़ा गाँव॥

नव-प्रगति का प्रमाण है, और यही पहचान।
करे कुँवारी अस्मिता, फिर-फिर गर्भाधान॥

कैसा जीवन राग

कुंठित है सब चेतना, लक्ष्यहीन संधान।
टेक बने हैं देश की, अब बौने प्रतिमान॥

नैतिकता नंगी हुई, बनी पाप की टेक।
लक्ष्मण-रेखा अब यहाँ, बाकी बची न एक॥

पूजित है अब नग्नता, धरा शीश पर ताज।
लेकिन भटके अस्मिता, कौड़ी की मुहताज॥

नंगा पूछे नंग से, असली नंगा कौन?
सच दोनों के सामने, फिर भी उत्तर मौन॥

भुतहा-भुतहा वक्त है, सहमी-सहमी आग।
सन्नाटों के दौर में, कैसा जीवन-राग॥

आहत-अपहृत रोशनी, अंधकार की कैद।
खड़ी घेरकर आँधियाँ, पहरे पर मुस्तैद॥

अभयारण्य आज बना, सारा भारत देश।
संरक्षित शैतान है, संकट में दरवेश॥

झूठ करे अठखेलियाँ, सत्य फिरे लाचार।
पड़ी धर्म के बेड़ियाँ, गले पाप के हार॥

कोकिल साधे मौन है, काक बहुत वाचाल।
गिद्ध-चील गिद्धा करें, बगुले देते ताल॥

वट-पीपल के देश में, पूजित आज कनेर।
बूढ़ा बरगद मौन है, देख समय का फेर॥

'अनुकृति', ७०६, सेक्टर-१३,
हिसार-१२५००५ (हरि.)
दूरभाष : १६६२-२३८७२०

सेलिब्रिटीज के शिक्षाप्रद कथन

● अश्विनी कुमार दुबे

हमारे यहाँ एक संस्था है विचार-मंच। यह संस्था हर महीने एक व्याख्यान आयोजित कराती है, जिसमें बड़े-बड़े सेलिब्रिटीज आते हैं। सेलिब्रिटीज को बुलाने के बड़े फायदे हैं। सबसे पहले तो संस्था के सदस्यों से उनकी जान-पहचान हो जाती है। यह जान-पहचान बहुत काम की चीज है, जाने कब जरूरत पड़ जाए। वक्त-बेवक्त कम-से-कम उनसे मिल तो सकते हैं। 'हमारे शहर में उस कार्यक्रम में आए थे आप', यहाँ से शुरू करके फिर अपने मतलब की बात आसानी से कही जा सकती है। कार्यक्रम की इस उपयोगिता और महत्ता को देखते व्याख्यानमाला के आयोजन की भूमिका बनी। लगे हाथ नई पीढ़ी को यह भी पता चल जाए कि वह सेलिब्रिटीज कैसे बना? नई पीढ़ी उससे आवश्यक प्रेरणा भी ग्रहण कर ले, इस सदुद्देश्य के साथ कार्यक्रमों का सिलसिला चल निकला। कई महीनों से मैं इनके कार्यक्रमों में जा रहा हूँ। वहाँ मुझे कई महारथियों के जीवन-दर्शन और उनके विचारों को निकट से सुनने-जानने का अवसर मिला। सबसे पहले मैं एक बड़े नेता के वक्तव्य का सार आपको बताता हूँ। जैसा कि आजकल चलन है, हर सेलिब्रिटीज यह बताते नहीं अघाते कि उसका बचपन बहुत गरीबी और अभाव में बीता। अब यहाँ गरीबी के नए-नए इमोशनल दृश्य उपस्थित करना वह नहीं भूलता। उन दिनों घर में खाने को नहीं होता था। पिता कड़ी मेहनत करते थे। माँ किसी प्रकार थोड़े में बड़ा परिवार पालती थी। इन बातों को ज्यादा आगे बताना ठीक नहीं होगा, वरना पाठक भी इमोशनल हो जाएँगे, जो उचित नहीं होगा। हालाँकि सेलिब्रिटीज इन बातों को उस हद तक खींचे चला जाता है, जहाँ तक आप रूमाल निकालकर आँसू नहीं पोंछने लगते और महिलाएँ भावुक होकर 'हाय' नहीं करने लगतीं। आपको बचपन के हृदय-विदारक दृष्टांत सुनाकर फिर वह सेलिब्रिटीज अपनी यौवन की दहलीज पर आता है। वह बड़े गर्व से बताता है कि वह पढ़ने में बहुत तेज था। हर परीक्षा में वह अव्वल नंबरों से पास होता रहा। हालाँकि गरीबी और अभाव राहु व केतु की भाँति पीछे लगे हुए थे, परंतु उसने उनकी कोई परवाह नहीं की। अर्जुन की भाँति उसने चिड़िया की आँख (अपनी मंजिल) पर निशाना साधकर रखा और अंततः सफलता पाई। एक अदने कार्यकर्ता की तरह वह पार्टी में आया और अपनी मेहनत, लगन और ईमानदारी के बल पर आज इस मुकाम पर है। (तालियाँ) इस प्रकार उन महान् नेता का भाषण सुनकर मैं भी गद्‌गद हो गया। भाषण ही ऐसा था कि कोई भी गद्‌गद हुए बिना नहीं रह सकता। भाषण

सुपरिचित व्यंग्य लेखक एवं उपन्यासकार। 'घूँघट के पट खोल', 'शहर बंद है', 'अटैची संस्कृति', 'अपने-अपने लोकतंत्र', 'फ्रेम से बड़ी तसवीर', 'कदंब का पेड़' (व्यंग्य-संग्रह); 'जाने-अनजाने दुःख' (उपन्यास)। उत्कृष्ट लेखन के लिए भारतेंदु पुरस्कार, अखिल भारतीय अंबिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार प्राप्त।

समाप्त होने के पश्चात् संस्था के सदस्य गण उनके स्वागत-सत्कार की दूसरी व्यवस्था में व्यस्त हो गए। इस बीच मेरी उनसे नमस्ते हुई। उन्होंने पहचान लिया, परंतु कोई बातचीत करने का औचित्य नहीं था। मैं उन्हें बचपन से जानता हूँ। बड़े बाप के बिगड़ैल बेटे हैं। जीवन में पढ़-लिखकर कुछ नहीं बन पाए तो उनके पिता ने पार्टी फंड में मोटा अनुदान देकर चुनाव में उन्हें टिकट दिलवा दिया। तब से वे राजनीति में उत्तरोत्तर प्रगति कर रहे हैं; क्योंकि पार्टी हाईकमान के कृपापात्र बने रहने के लिए कुछ भी कर सकते हैं। एक बार तो किसी कार्यक्रम के दौरान उन्होंने पार्टी हाईकमान की सरेआम चरण पादुकाएँ भी खाई थीं।

इस शहर में अपना उद्‌बोधन देकर गए उन्हें अभी महीना भर न हुआ था कि किसी होटल में उनकी पत्नी का मर्डर हो गया, इसके पीछे उनके अवैध संबंधों को प्रमुख कारण ठहराया जा रहा है। बहरहाल, पुलिस जाँच कर रही है। दूरसंचार विभाग के बड़े घोटाले में भी उनका नाम प्रमुख रूप से उभरकर आया है। सच ही कहा था उन्होंने कि उनकी सफलता के पीछे उनकी कड़ी मेहनत, लगन और ईमानदारी का हाथ है। अगले महीने संस्था के कार्यक्रम में एक नामी फिल्म स्टार को आमंत्रित किया गया। अपने शहर में कोई फिल्म अभिनेता आ रहा है, इस बात से बहुत लोग उत्साहित हो जाते हैं। समाचार-पत्रों ने ज्यादा प्रमुखता के साथ इस खबर को छापा। इधर हमारे देश के मीडिया ने फिल्म एक्टरों को तो बिल्कुल महामानव बना दिया है। जैसे ये साक्षात् देवदूत हों, जो सीधे देवलोक से भारत नामक देश में टपके हैं। वे हमारी तरह साधारण इनसान हैं, ऐसा उनके विषय में लिखना-बोलना पाप समझा जाता है। युवा पीढ़ी का तो कहना ही क्या! वह तो इन्हें ऐसे सिर उठाए घूमती है, जैसे यह मनुष्येतर हैं। नियत तिथि में उन फिल्म स्टार महोदय का शहर में आगमन हुआ। सुबह से शाम तक संस्था के सदस्य, उनकी बीवियाँ और बच्चे फिल्म स्टार महोदय के साथ खिलखिलाते हुए फोटो खिंचवाते रहे। इसके लिए समिति सदस्य के परिवारवालों का

ताँता लगा रहा। रात सात बजे से उनके भाषण का कार्यक्रम शुरू हुआ। देर तक चले इस स्वागत अभियान में काफी समय बरबाद हुआ, जो होना ही था। जो अभिनेता आज भाषण देने आए हैं, इनके पिता कभी एक बड़े निर्माता-निर्देशक हुआ करते थे। उन्होंने अपने भाषण की शुरुआत संघर्ष और कड़ी मेहनत जैसे शब्दों से की, जबकि इन शब्दों से उनका दूर-दूर तक कोई रिश्ता नहीं था। उन्होंने बताया कि उनके माता-पिता बहुत मितव्ययी स्वभाव वाले थे। फालतू एक पैसा खर्च न करते थे। इस कारण से बहुत दिनों तक उन्हें अपना जेबखर्च निकालने के लिए पार्टटाइम काम करना पड़ता था। पापा मुझे डॉक्टर बनाना चाहते थे, इसके लिए उन्होंने मुझे इंग्लैंड पढ़ने भेजा। वैसे यहाँ किसी बड़े कॉलेज में मोटा डोनेशन देकर वे मुझे डॉक्टर की डिग्री दिला सकते थे, परंतु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे चाहते थे, मैं अपने बल पर कुछ करूँ। डॉक्टरी की पढ़ाई में मेरा मन नहीं लगा। मैं पढ़ाई छोड़कर अपने देश आ गया। (पढ़ने में डफर थे तो पढ़ाई में मन कहाँ से लगता) यहाँ आकर मेरा संघर्ष शुरू हुआ। मम्मी-पापा नाराज थे कि मैं डॉक्टर नहीं बन सका। मुझे एक्टर बनना है, यह बात मैं उनसे कह नहीं पाया। अब मैं निर्माताओं के दफ्तरों के चक्कर लगाने लगा। सब यही कहते, 'तुम्हारे पिता इतने बड़े-निर्माता निर्देशक हैं। तुम्हें लेकर वह स्वयं कोई फिल्म क्यों नहीं बनाते?' अब मैं उनसे क्या कहता! मुझे तो अपने दम पर कुछ करना था। पापा भी यही चाहते थे। चक्कर लगाते-लगाते एक दिन मेहनत रंग लाई। एक निर्माता मुझे लेकर फिल्म बनाने को तैयार हुए। वह पापा के परिचित थे। कभी पापा ने उनकी मदद की थी, इसलिए उनके एहसानमंद भी थे। पापा ने तो साफ कह दिया, 'तुम्हें अपना पैसा डुबाना है तो उसे लेकर फिल्म बनाओ। बाद में मुझसे कुछ न कहना।' उन्होंने पापा से कहा, 'आपका बेटा तो हीरा है, हीरा। मैं इसे तराशूँगा।' और सचमुच उन्होंने मुझे तराशा और मेरी पहली ही फिल्म सुपरहिट हुई। (तालियों की गड़गड़ाहट और कई कैमरों की एक साथ चमक।)

जबकि चाचाजी केंद्रीय मंत्री न होते तो नेशनल टीम में कभी उनका चयन न हो पाता। फिर क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड में भी तो अपने ही रिश्तेदार थे। इस प्रकार गाड़ी चल निकली सो चल निकली। मैच फिक्सिंग के मामले में कई बार इनका नाम उछला। एक-दो मैचों में तो इन्हें टीम से बाहर रखा गया; परंतु प्रभाव भी कोई चीज होती है कि नहीं? बहुत बड़ी चीज होती है प्रभाव। इसके आगे तो प्रतिभा पानी भरती है। वह अत्यंत प्रभावशाली हैं, इसलिए फिर टीम में आए और मैच खेलने विदेशी दौरों पर अपनी गर्लफ्रेंड सहित गए। खेलों में अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा है, इसलिए खोटे सिक्के यहाँ ज्यादा नहीं टिकते। सिर्फ राष्ट्रीय मामला होता तो खेल के मैदान में यह पूरी उम्र खेलते। अब खेलों से किनारा लेकर सर्वत्र खेलों पर भाषण देते हुए पाए जाते हैं, लेकिन सेलिब्रिटीज हैं। चड्डी से लेकर शराब तक के विज्ञापनों में छाए रहते हैं।

आगे उन्होंने अपनी कई फिल्मों के डायलॉग सुनाए, जो दूसरों ने लिखे थे। अपनी आगामी फिल्मों के विषय में विस्तार से बताया, जो सभी उनके होम प्रोडक्शन की हैं। अपनी सफलता के पीछे वही संघर्ष और कड़ी मेहनतवाली बात उन्होंने फिर दोहराई।

यों वह किसी काम के नहीं थे। पढ़-लिख नहीं पाए, इसलिए फिल्मों में आ गए। बाप का जमा-जमाया व्यवसाय और उनके नाम का सहारा लेकर वे आगे बढ़े। इन दिनों सभी होम प्रोडक्शन की फिल्मों में काम कर रहे हैं। फिल्म कला के विषय में वह कुछ नहीं, फिल्म व्यवसाय के विषय में सबकुछ जानते हैं। उनके कारण कई प्रतिभाशाली लोग, जो यहाँ आ सकते थे, नहीं आ पाए। सबके पास बाप का नाम और पैसों का सहारा थोड़े ही होता है। फिल्म जगत् में इनके कई स्कैंडल हैं और कर-चोरी का एक मामला कोर्ट में चल रहा है। अखबारों में छपता रहता है कि ड्रग्स माफिया वालों से उनके अच्छे संबंध हैं। फोन पर विदेशों में बसे 'डॉन' से इनकी बातचीत भी पिछले दिनों लीक हुई थी। हाँ, उनके अनुसार उनकी सफलता का राज है—संघर्ष और कड़ी मेहनत। तो भैया, संघर्ष कहाँ नहीं होता? और कड़ी मेहनत के बिना इतने संबंध-संपर्क भी तो नहीं बनते, जितने इनके हैं।

आगे विचार मंच के एक कार्यक्रम में किसी बड़े क्रिकेट खिलाड़ी को बुलाया गया। इन्होंने भी अपने भाषण में सबसे पहले अपनी गरीबी का रोना रोया। आजकल गरीबी का रोना एक फैशन बन गया है। किसी का भी भाषण सुन लो, सब लोग यही कहते पाए जाते हैं कि मैंने बहुत गरीबी झेली है, जैसे गरीबी कोई बड़े गौरव की बात है। भले ही वह संपन्न परिवार से रहे हों। सोने का चम्मच मुँह में लेकर पैदा हुए हों, परंतु जब अपने विषय में बोलेंगे तो शुरुआत यहीं से करेंगे, मैंने बहुत गरीबी भोगी है। बहुत अभाव झेला है। उन दिनों मैं पाई-पाई को तरस गया। लैंपपोस्ट के नीचे बैठकर मैंने पढ़ाई की। कई-कई मील दूर पैदल स्कूल जाना पड़ता था। किताबें न खरीद सकता था, दूसरों से किताबें माँगकर पढ़ाई की, फिर भी हर परीक्षा में अव्वल रहा। ये शब्दावलियाँ आप किसी के भाषण में आए दिन सुन लो। इनसे भाषण प्रभावशाली बनता है और लोग आपकी प्रतिभा का लोहा, जो बहुत पिलपिला है, मानने लगते हैं। तो हमारे मेहमान खिलाड़ी महोदय ने गरीबी का भीषण हवाला देते हुए अपनी बात प्रारंभ की। संघर्ष और कड़ी मेहनत की बात आनी ही थी, इसके बिना तो भाषण में मजा ही नहीं आता। इसका जिक्र किए बिना कोई भी भाषण प्रभावशाली नहीं बनता। इसलिए बात को महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए संघर्ष और कड़ी मेहनतवाले मनगढ़ंत किस्से सुनाने पड़ते हैं, जबकि चाचाजी केंद्रीय मंत्री न होते तो नेशनल टीम में कभी उनका चयन न हो पाता। फिर क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड में भी तो अपने ही रिश्तेदार थे। इस प्रकार गाड़ी चल निकली सो चल निकली। मैच फिक्सिंग के मामले में कई बार इनका नाम उछला। एक-दो मैचों में तो इन्हें टीम से

बाहर रखा गया; परंतु प्रभाव भी कोई चीज होती है कि नहीं? बहुत बड़ी चीज होती है प्रभाव। इसके आगे तो प्रतिभा पानी भरती है। वह अत्यंत प्रभावशाली हैं, इसलिए फिर टीम में आए और मैच खेलने विदेशी दौरों पर अपनी गर्लफ्रेंड सहित गए। खेलों में अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा है, इसलिए खोटे सिक्के यहाँ ज्यादा नहीं टिकते। सिर्फ राष्ट्रीय मामला होता तो खेल के मैदान में यह पूरी उम्र खेलते। अब खेलों से किनारा लेकर सर्वत्र खेलों पर भाषण देते हुए पाए जाते हैं, लेकिन सेलिब्रिटीज हैं। चड्डी से लेकर शराब तक के विज्ञापनों में छाए रहते हैं।

इस बार एक पुरस्कृत लेखक को भी विचार मंचवालों ने अपने यहाँ भाषण के लिए बुलवा लिया। वह लेखक अभी-अभी पुरस्कृत हुए थे, इसलिए भाषण देने के लिए बुला लिये गए। पुरस्कृत न हुए होते तो सेलिब्रिटीज कैसे होते? हालाँकि आजकल साहित्य-जगत् में पुरस्कारों की बड़ी दुर्गति है। उत्कृष्ट साहित्य को छोड़कर शेष कई मापदंड हैं, यहाँ पुरस्कृत होने के लिए। अब तो पुरस्कृत लेखक सुनकर ही तरह-तरह के संदेह होने लगते हैं। बहरहाल, वे हमारे शहर में भाषण देने आए। कोई लेखक अपनी गरीबी और बदहाली का जिक्र न करे तो वह लेखक काहे का? कोई उसे लेखक मानने को तैयार न हो। यदि उसके जीवन में गरीबी के मजेदार किस्से न हों। जिसके पास जितना जानलेवा, हृदय-विदारक, गरीबी से भरा हुआ दृष्टांत हो, वह उतना ही बड़ा लेखक। इस प्रकार हमारे इन लेखक महोदय ने भी अपने बचपन की भीषण गरीबी का जिक्र करते हुए अपना भाषण प्रारंभ किया। अब लेखक का बचपन से ही प्रतिभाशाली होना जरूरी है, भले ही वह हर परीक्षा में थर्ड डिवीजन में पास होता रहा हो। अत: वह भी बचपन से ही अत्यंत मेधावी थे अर्थात् तुकबदियाँ कर लेते थे। लेखक होने के लिए यह माना जाता है कि जीवन में कोई अफसल प्रेम-प्रसंग अवश्य होना चाहिए। वरना वियोग भाव कैसे उत्पन्न होगा? और वियोग के बिना कविता नहीं फूटती। कहा भी गया है, 'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।' वियोग की यहाँ कोई कमी नहीं है, क्योंकि उनके जीवन में अनगिनत प्रेम-प्रसंग हैं। हर शहर में एक प्रेमिका है। किसी शहर में एक से अधिक भी, क्योंकि जिस शहर में भी वे काव्य पाठ करने गए, वहाँ की नई पीढ़ी, विशेषकर कन्याओं को इन्होंने कविता के गुर जरूर सिखाए। बदले में वह उनकी प्रेमिका हुई। उनके शहर छोड़ते ही दोनों तरफ वियोग भाव उत्पन्न हो गया और कविताएँ जो हैं, सो परवान चढ़ने लगीं। इस प्रकार वे साहित्यिक जगत् में लोकप्रिय कवि के रूप में पहचाने जाने लगे। लगभग सभी पुरस्कार समितियों में जो विद्वान् साहित्यिक लोग हैं, वे गैर-साहित्यिक कारणों से ही अपनी समिति का पुरस्कार घोषित करते हैं। कहीं तो आधी पुरस्कार राशि समिति को वापस (अनुदान में) करने की भी प्रथा है।

यह प्रथा अब लोकप्रिय हो रही है। बड़ा लेखक कहने के लिए एक बात बहुत जरूरी है, वह यह कि आपका लेखन कार्य भले ही बड़ा न हो, परंतु आपका गुट बड़ा होना चाहिए। गुट में आपकी पैठ होते ही खुद आपको पता नहीं चलता कि कैसे आप रातोरात बड़े लेखक हो गए? यदि आप किसी सत्ता पक्ष के मंत्री के कृपापात्र हैं तो कहना ही क्या! फिर तो बड़ा लेखक होने से आपको कोई माई का लाल नहीं रोक सकता। फेलोशिप, विदेश यात्राएँ, पुरस्कार, अलंकरण आदि सब आपकी झोली में। इस प्रकार आप सेलिब्रिटीज बन गए। अब पधारिए हमारे यहाँ और भाषण दीजिए। आप आए। आपने कृपा की और अपना महत्त्वपूर्ण भाषण दिया। आजकल यह भी फैशन है कि कोई भी लेखक अपने भाषण में विदेशी लेखकों और उनके कालजयी लेखन का जिक्र जरूर करता है।

यह प्रथा अब लोकप्रिय हो रही है। बड़ा लेखक कहने के लिए एक बात बहुत जरूरी है, वह यह कि आपका लेखन कार्य भले ही बड़ा न हो, परंतु आपका गुट बड़ा होना चाहिए। गुट में आपकी पैठ होते ही खुद आपको पता नहीं चलता कि कैसे आप रातोरात बड़े लेखक हो गए? यदि आप किसी सत्ता पक्ष के मंत्री के कृपापात्र हैं तो कहना ही क्या! फिर तो बड़ा लेखक होने से आपको कोई माई का लाल नहीं रोक सकता। फेलोशिप, विदेश यात्राएँ, पुरस्कार, अलंकरण आदि सब आपकी झोली में। इस प्रकार आप सेलिब्रिटीज बन गए। अब पधारिए हमारे यहाँ और भाषण दीजिए। आप आए। आपने कृपा की और अपना महत्त्वपूर्ण भाषण दिया। आजकल यह भी फैशन है कि कोई भी लेखक अपने भाषण में विदेशी लेखकों और उनके कालजयी लेखन का जिक्र जरूर करता है। उसके बिना तो वह भाषण दो कौड़ी का। हमारे मेहमान लेखक ने भी ऐसा ही किया। भारतीय साहित्य का कोई भी जिक्र किए बना उन्होंने अपने भाषण में दुनिया भर के लेखकों और उनके साहित्य की विस्तारपूर्वक चर्चा की। अंत में अपने महत्त्वपूर्ण लेखन के विषय में बताना उन्हें जरूरी लगा, बस यही कुछ था, जो भारतीय साहित्य पर उनके द्वारा कहा गया।

सुबह होटल वाले ने बताया कि विचार मंच वाले जो मेहमान आते थे, उन्होंने इतनी ज्यादा पी ली थी कि रातभर उल्टियाँ करते रहे। होटल का कीमती कालीन खराब कर गए।

तरह-तरह के सेलिब्रिटीज को देखते-सुनते हुए मुझे वह मजबूर लोग याद हो आते हैं, जो प्रतिभाशाली होते हुए भी शिखर पर नहीं पहुँच पाए, जिन्हें रौंदकर ये लोग आगे बढ़ गए। उनके प्रयासों को प्रणाम करते हुए बाबा 'नागार्जुन' लिखते हैं, 'जो नहीं हो सके पूर्ण काम, मैं उनको करता हूँ प्रणाम, जिनकी सेवाएँ अतुलनीय, पर विज्ञापन से रहे दूर, प्रतिकूल परिस्थिति ने जिनके, कर दिए मनोरथ चूर-चूर, मैं उनको करता हूँ प्रणाम।'

५२५-आर, महालक्ष्मी नगर
इंदौर-४५२०१०
दूरभाष : ९४२५१६७००३

कहानी

भरा-भरा घर

● विपुल ज्वाला प्रसाद

भोर हो आई थी। प्रसन्नता में रँगा-चंगा सूरज आकाश में खिली-खिली धूप का बिछौना बिछा रहा था। वृक्षों के कोटरों, पत्तों में दुबके-ढके पखेरू पंख पसार आसमान में ठंड मिटा रहे थे। अस्पताल के परिसर में भी चहल-पहल बढ़ गई थी। मरीज वार्ड से निकलकर खुले परिसर में धूप सेंक रहे थे। वह भी अपने बिस्तर से उठ परिसर में एक खाली बैंच पर आ बैठी थी। वैसे तो उसकी दृष्टि सामने ही परिसर में खड़े उस पीपल के पेड़ के पास खिंचे एक गोल घेरे में फुदक-फुदककर दाना चुग रही चिड़ियों पर थी। पर उसका मन तो कहीं अन्यत्र ही कुलाँचें भर रहा था।

कल राकेश उसकी दवा-दारू, फल-फ्रूट का इंतजाम तथा घंटों उसके पास बैठ वापस घर चला गया था। इन खाली क्षणों में वह तथा उसके पास की बैडवाली नेहा, दोनों आपस में यों ही बातों का सूत कात रही थीं। एकाएक नेहा उससे बोली, ''मैडम, आपके यह मिलनेवाले तो गजब के ही नेक, भले, सभ्य, सुशील; आपका कितना खयाल रखते हैं। आपको कितना चाहते हैं। इतना खयाल तो घरवाले भी नहीं रखते।''

वह मन-ही-मन मुसकाई। नेहा को क्या पता कि राकेश आज से थोड़े ही, उस समय से ही उससे बेसाख्ता मोह-माया रखता है। उस दिन वह बी.एससी. फाइनल की कक्षा में विलियन गैस बनाने की विधि ज्ञात कर लेबोरेटरी की सीढ़ियों से उतर रही थी। गैस के कारण एकाएक उसे चक्कर आ गए। वह गिरने लगी कि साथ चलते राकेश ने उसे हाथोहाथ थाम लिया था। रिक्शा में डाल उसे तुरंत अस्पताल ले गया था। पूरे दिन बेहोश रही। राकेश ही उसके इलाज की व्यवस्था करता रहा था। घटना के दूसरे रोज उसे होश आया। वह कितना खुश हुआ था, 'थैंक गॉड! संध्या, अब तुम खतरे से बाहर हो। सच, तुम्हें बेहोश देख मेरी तो जान ही निकल गई थी।' यदि राकेश उसके लिए इतना नहीं करता तो शायद वह इस संसार में नहीं होती। होती भी तो पता नहीं, किस रूप में? वह भी तो तब उसे कितना चाहती थी। उसके मन में नेह की बेल हर समय लहलहाती रहती थी, राकेश से लिपटने के लिए।

सूर्य आकाश में कुछ गज चढ़ आया था। वातावरण में अब ठंड की खुनक कहीं नहीं थी। नेहा कभी की अपने बैड पर आ जमी थी। वह भी अपने बैड पर आ गई थी। सिकुड़े पड़े बिस्तर को उसने ठीक किया। तिपाई पर बिखरी पड़ी टेबलेट, कैप्सूल, सीरप की शीशियों को तरतीब से जमाया। फिर बैड पर बैठ गई। दोनों को कुछ हिदायतें देता डॉक्टर आगे बढ़ा था। नेहा फिर उसकी छूटी बातों में कड़ियाँ पिरोने लगी, ''मैडम! आपकी तरह आपके यह मिलनेवाले भी कितने स्मार्ट, हैंडसम, मेरी इन्हें नजर नहीं लग जाए, चश्मे बद्दूर! वाकई आप दोनों बड़े जमते हैं। बहुत सुंदर-लवली-प्रैटी।''

जमने की बात पर एक तीखी धारदार पीड़ा उसके अंदर एड़ी से चोटी तक पसर गई। अवसाद के परिंदे टिह-टिह करने लगे। समय की बहुत गर्द-गुबार जम चुकी है उन संबंध-प्रसंगों पर। जमने के अब वे सूत्र-सरोकार कहाँ? अब पुराने संबंधों की डायरी खोल उसे बाँचना निरा सारहीन, थोथा प्रयास। मैगनेट की तरह उसको आकर्षित करनेवाले उसके अंतस के स्नेहित तंतु तो कभी के सूखकर राख हो गए होंगे। उससे अब वह स्नेह-प्रेम का बरताव करता है तो शायद वह अपना कुछ-कुछ फर्ज सा समझे। बाकी और संभावनाओं पर तो पूर्ण विराम ही समझो। कभी-कभी उत्सुकता के पखेरू पंख फड़फड़ा उससे सब बातें जानने का बेतहाशा मन मचलने लगता है। पर उसकी हिम्मत जवाब दे जाती है। काश उसने कह दिया कि वह अब विवाहित है। उसका स्वयं का पुष्पित-पल्लवित नीड़ है। वह एकाध गोरे-गुदकारे बच्चों का बाप भी है। यह सब जान वह सहज-सरल बनी रह सकेगी? उस मलाल, कुछ-कुछ सदमे को झेल पाएगी वह? वह व्यग्र हो उठती है। नहीं-नहीं, वह उससे ऐसा कुछ नहीं पूछेगी। मन के भरम की इस अस्पष्ट सी धुंध को ऐसे ही बनाए रखना ठीक! कुछ तो संबल-तुष्टि है, इस धुंध से ही उसे। उसके साथ की वे महमहाती यादें, अब भी जिल्द बँधी किताब की तरह सुरक्षित हैं उसके मन में। नियति को वह शायद स्वीकार नहीं था।

''लीजिए मैडम! पानी पीजिए।'' उसकी ओर पानी का गिलास करते हुए नेहा ने उसका ध्यान भंग किया। पानी पीते हुए भी उसकी दृष्टि वार्ड के द्वार की ही ओर लगी हुई थी। उसे राकेश आता दीखा। उसे देख सूरजमुखी-सी खिल उठी। राकेश अपने साथ लाए ताजे फल अपने हाथों से छील-छीलकर उसे खिला रहा था। संध्या भीतर से बेहद तरल हो आई। अपने मन में गाँठ की तरह बँधी उस बात को कहने के लिए वह बेहद आतुर हो आई, ''राकेश, इस बीमारी ने मुझे उतना नहीं तोड़ा, जितना उस हादसे ने।''

''हादसा? कौन सा···कैसा?'' राकेश के चेहरे पर अनेक प्रश्न थे। संध्या ने अपने वक्ष पर से सरक आए दुपट्टे को ठीक किया, ''तुम तो मेरे साथ बी.एससी. करने के बाद ऐसे छूमंतर हुए कि कई वर्ष तक तुम्हारा अता-पता नहीं लगा। तुमने कब नौकरी कर ली, मुझे सुराग तक नहीं लगा। बी.एससी. के बाद मैंने एम.एससी. ज्वॉइन कर ली थी। मेरे ही भौतिकी विभाग में बाहर से एक लड़के ने एडमीशन लिया। वह बेहद कुशाग्र था। उसका व्यक्तित्व भी बड़ा आकर्षक था। क्लास में वह मेरे साथ ही बैठता था। किताब-नोट्स की वह मुझसे अदला-बदली करता था। संबंधित विषय में बहस भी करता था। कोई बात मेरी समझ में नहीं

आती तो वह उसे समझाता था। मैं उसकी कुशाग्रता की बड़ी कायल थी।'' एकाएक छींक आने से संध्या ने अपने मुँह पर रुमाल रख लिया। रुमाल उठा फिर कहने लगी, ''धीरे-धीरे वह मुझसे लाड़ लड़ाने लगा। मेरे करीब आने की बड़ी शिद्दत से पहल करता था। मेरे मन में भी उसके प्रति आकर्षण पलने लगा था। एक दिन तो पता नहीं उसने कैसी मिठास-मादक भरी रस धाराएँ ही मेरे रग-रग में प्रवाहित कर दीं। वह दिन भी कैसा खिला-खिला, मद भरा-भरा सा। मंद-मंद फागुनी बयार बह रही थी। शास्त्री पार्क के खिलते गुलाब चलतों को टेरते से लगते थे। सहसा वह मेरा हाथ अपने हाथ में ले कहने लगा, 'संध्या, यह हाथ मुझे सदैव के लिए दोगी? तुम्हें हमसफर बनाने का मेरा नायाब सपना···' मुझे बड़ा सुखद अहसास हुआ था। उस शरबती अहसास की गंध मेरे मन- प्राण में अनुनाद करने लगी थी। मेरी इस प्रतिकिया पर वह मेरी आँखों के झरोखों से ठेठ मेरे भीतर तक पहुँच गया था। 'संध्या! यह मेरी दिली चाहत है? मेरा अजूबा ख्वाब है। मेरे इस सपने में अपना रंग नहीं भरोगी?'

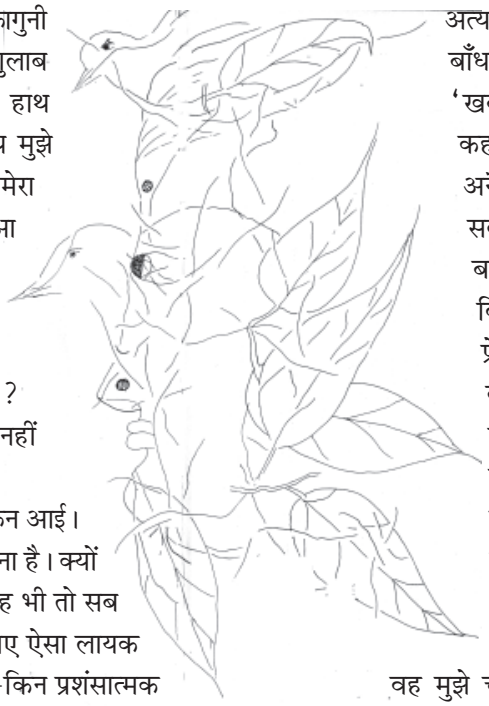

''मैं भी भावुकता से जल भरी नदी-सी उफन आई। सच! अतीत को भूल, जो अब मेरे लिए मात्र सपना है। क्यों न इसके ही रंग में रँग भर उसे सतरंगा कर दूँ? यह भी तो सब तरह से योग्य। डैडी को सरप्राइज दे दूँ अपने लिए ऐसा लायक वर अपने आप ढूँढ़ लेने पर। पता नहीं वह किन-किन प्रशंसात्मक निगाहों से मुझे नवाजेंगे? मैंने भी कह दिया, 'जब तुम्हें यह चाहत इच्छित है तो मुझे भी इनकार नहीं।'

''अब तो वह हर पल हर क्षण मेरा हाथ थामे मेरी उमंगों को हवा देता, 'संध्या, तुम मेरी जान हो, जहान हो। तुम्हें साथ ले प्रेम के आकाश में अनूठा रंगमहल बनाऊँगा।' उसके संग मोहब्बत का ऐसा रंग चढ़ा कि मैं उसकी परछाईं सी हो आई। उसके संग में यह मन-प्राण भी कैसे हो आए थे? साँस महकी-महकी, चाल बहकी-बहकी।' यह गीत भी किस कदर होंठों पर अँगड़ाइयाँ लेता रहता, 'जीवन में पिया तेरा साथ रहे, हाथों में तेरे···' मेरी इस आशक्ति-लगाव में एक दिन, वेस्टर्न कल्वर में रँगी-पगी कैमिस्ट्री की प्रोफेसर मैडम ने उसकी ओर प्रशंसा का केरोसिन डाल और तेज लौ भड़का दी, 'संध्या! योर बॉय फ्रेंड इज अनडाउटेडली वन इन थाउजेंड्स···।'

''उस दिन हम चंबल बेराज पर घूम रहे थे। डूबते सूर्य की परछाईं जल में अनूठे रंग भर रही थी। पर्यटक मछलियों को दाना चुगा रहे थे। मछलियाँ दाना लेने जल से मुँह बाहर निकालतीं। दाना ग्रहण कर अत्यंत चपल, चंचलता से गुप्प से जल में डूब जाती थीं। एकाएक एकांत में पता नहीं उसे क्या सूझा कि एक पत्थर की शिला की आड़ में उसने मुझे अपनी बाँहों में भर लिया। मैं पूरी-की-पूरी लरज गई उसके मीठे-गुदगुदे स्पर्श से। एक क्षण के लिए अजूबे मद में प्रवाहित हो गई। किंतु मन में तुरंत दूसरा विचार आते ही मैं उसके इस अप्रत्याशित व्यवहार पर चौंकी। उसकी आँखों में शैतान नाच रहा था। मैं उससे छिटककर दूर खड़ी हो गई। मैं उसके उस कृत्य पर अत्यधिक आश्चर्यचकित थी। यही इसका वह सभ्य, सुशील, आभिजात्य चेहरा? नाराजगी जताती उससे बोली, 'यह क्या शरारत···' तो वह बड़ी बेशर्मी से आँखों में कामुकता लाता बोला, 'बहुत समय से प्यासा हूँ संध्या तुम्हारे इस रूप, रस, गंध का।' मैं अत्यधिक चिंतित हो आई। वह फिर मुझे भुजाओं में बाँधने को हुआ। इस बार मैंने उसे सख्ताई से डपटा, 'खबरदार, जो तुमने···तुम्हें शर्म नहीं आती, ऐसा कहते-करते। विवाह से पहले यह सब कार्य घोर अनैतिक-पाप···।' लेकिन उस पर तो दूसरा ही भूत सवार था। 'इस मिलन अभिसार की घड़ियों में बाधा मत डालो संध्या? आजकल समाज में फैलते विवाहेतर संबंध, महानगरों में स्त्री-पुरुषों के बॉय फ्रेंड, गर्ल फ्रेंड होना प्रगतिशीलता व आधुनिकता की महत्त्वपूर्ण निशानी मानी जाती है। यहाँ बिना विवाह किए स्त्री-पुरुष साथ-साथ रह रहे हैं। बताओ कहाँ रही तुम्हारी नैतिकता-पाप···? अरे पश्चिम में तो बिना विवाह किए ही लड़कियाँ मातृसुख भोग रही हैं, प्रोगेसिव बनो। इन थोथे-खोखले-विचारों को छोड़ो।' इस पर मैं उस पर चीख पड़ी, 'धीरेंद्र! अब बस करो, प्लीज!' तो वह मुझे चेतावनी देने लगा, 'तुम्हारे-मेरे संबंध समाप्त! अभी इसी समय।' मैं भी क्रोध में फुफकारी, 'यस-यस, नो हार्म।' वह अत्यधिक खिसिया गया था। क्रोध में पागल होते हुए उसने मुझे जोर का धक्का दिया। वह तो मैं बेराज की रेलिंग का सहारा लिये खड़ी थी, नहीं तो बेराज की अनंत जलराशि में समाधिस्थ होती।''

धूप अब सुंदर-सजीले बालक की तरह वार्ड की खिड़की से संध्या के पलंग पर झिलमिल-झिलमिल कर रही थी। चायवाला चाय दे गया था। चाय सिप करते संध्या फिर कहने लगी, ''अब उसने मुझसे मिलना-जुलना बंद कर दिया था। मैंने उसे दुत्कार तो दिया था, पर उसके वियोग-बिछोह को सहन नहीं कर पा रही थी। जेहन में चौबीसों घंटे बस वह ही घूमता था। उसके साथ जिए वे स्नेहिल पल, प्यार की वे रसीली बेसुध घड़ियाँ हर समय मुझे सालती रहतीं। मैं सुलगती रहती पीड़ा की आग में। मुझे लगता, उसके बिना यह जीवन बेहद नीरस-बेस्वाद-बेमतलब···।

''उसके बिना मैं जी नहीं पाऊँगी। गुस्सा थूक देने के लिए मैं उसके पास गई थी। मैंने उसकी मिन्नत-चिरौरी की थीं, 'मुझसे विवाह कर लो। तुम बेरोजगार हो तो कोई बात नहीं। मैं तो रोजगार वाली हूँ। विवाह के बाद यह मन-प्राण सबकुछ तुम्हारा, लेकिन उसकी तो वही शर्त। दरअसल, उसे मुझसे विवाह थोड़े करना था। उसकी तो मुझे फरेब में रख, कुछ दूसरी ही नीयत थी। बाद में मुझे पता चला कि उसने इसी तरह कई लड़कियों को अपने साथ विवाह करने की मृगमरीचिका दिखा, उनको

पथभ्रष्ट किया था।' कहते-कहते संध्या की आँखों में आँसू आ गए थे।

राकेश उसे ढाढ़स-तसल्ली की थपकियाँ देने लगा, ''इतना भावुक नहीं बना करते संध्या। जीवन में कभी जाने-अनजाने में ऐसी घटनाएँ हो जाती हैं। इसका मतलब यह थोड़े ही कि उन्हें याद करके उनके लिए रो-रोकर अपनी जान ही होम दें। निकालो इस दुस्वप्न को अपने दिमाग से। फिर नई शुरुआत करो। फिर नए सपने बुनो। अच्छी तरह सतर्क···सावधान हो। अनोखे···अद्‌भुत!''

उस दिन राकेश दफ्तर से लौटा तो संध्या अपना सामान पैक कर रही थी। वह चैकअप कराने अस्पताल से राकेश के क्वार्टर पर ही आ गई थी। ''यह क्या कर रही हो संध्या?'' राकेश कुरसी पर बैठ जूतों के तस्मे खोल रहा था। ''आज डॉक्टर ने फाइनली छुट्टी दे दी है। घर लौट जाना चाहती हूँ। डैडी चिंता करते होंगे। सर्विस पर गए भी बहुत समय हो गया।''

''चले जाना यार! दो-चार रोज और रुको।''

''फिर भी तो जाना होगा?'' राकेश रेलिंग के सहारे दुमंजिले पर खड़ा हो केशर बाग पर डूबते सूर्य का दिलकश नजारा देख रहा था। वह एकाएक संध्या की तरफ मुखातिब हुआ। ''बहुत समय से खालीपन भरने की बाट जोहता मेरा यह घर तुम्हें पसंद नहीं संध्या?''

''क्या···'' संध्या की आँखें कपाल से जा लगीं, ''तुम अभी तक अविवाहित?''

''हाँ संध्या! तुम्हें पाने के लिए मैं बी.एससी. करने के बाद नौकरी के लिए युद्ध-स्तर पर जुट गया था।

''तुम जानती हो, आजकल यहाँ नौकरी मिलना आकाश-कुसुम तोड़ लेने के बराबर है। काफी मेहनत से बहुत समय में नौकरी मिल सकी, लेकिन तब तक तुम धीरेंद्र के साथ! बस तब से ही मन में ऐसी वितृष्णा हुई कि विवाह का नाम ही दिमाग से निकाल दिया। तो तुम्हें मेरा प्रस्ताव स्वीकार है संध्या?''

संध्या के मुँह से बोल ही नहीं फूट पा रहे थे। उसके चेहरे पर सिर्फ अपूर्व आनंद, प्रसन्नता, हर्ष, उल्लास की रोशनाई दिपदिपाने लगी थी। राकेश को एहसास हुआ कि उनका सूना-सूना, सन्नाटा बुननेवाला घर किसी प्रिय की स्थायी आमद से चहका-चहका, भरा-भरा हो आया है।

कृष्णा कॉलोनी, रामगंज मंडी
कोटा-३२६५१९८ (राज.)
दूरभाष : ९१६६०९९२९९

गजल

आपका चेहरा बयाँ है

: एक :

जब तक उनके पास रहा,
मैं हूँ ये अहसास रहा।

सब खोकर भी क्यों मुझको,
पाने का आभास रहा।

आखिर को लौटोगे ही,
मुझको यह विश्वास रहा।

दुनियादारी जीकर भी,
मुझमें इक संन्यास रहा।

राम अयोध्या लौट गए,
सीता को बनवास रहा।

: दो :

जो सदा से लामकाँ है
वो मुझे रखता कहाँ है।

जो नहीं महफूज खुद ही
क्यों हमारा पासबाँ है।

तू अगर मंजिल नहीं तो,
फिर मुझे जाना कहाँ है।

● **विज्ञान व्रत**

मिल चुका हूँ आपसे पर
आपको देखा कहाँ है।

आप बोलें या न बोलें
आपका चेहरा बयाँ है!

: तीन :

पहले सोचा खत लिखूँ
फिर सोचा घर फोन करूँ।

हाँ बिटिया! हाँ! मैं पापा,
कैसी हो? मैं अच्छा हूँ।

बात कराओ मम्मी से
हाँ, कह दो मैं फोन पे हूँ।

हाँ जी! सब ठीक तो है न,
बस मन था कुछ बात करूँ।

काम बचा है थोड़ा सा
बस आने ही वाला हूँ।

अच्छा फिर बात करूँगा,
ओ.के. अब मैं रखता हूँ।

: चार :

मुसकराना चाहता हूँ,
क्या दिखाना चाहता हूँ।

याद उनको भी नहीं जो,
वो भुलाना चाहता हूँ।

जिस मकाँ में हूँ उसे अब,
घर बनाना चाहता हूँ।

कर्ज जो मुझ पर नहीं है,
क्यों चुकाना चाहता हूँ।

आपकी जानिब से खुद को,
आजमाना चाहता हूँ।

एन-१३८, सेक्टर-२५
नोएडा-२०१३०१
दूरभाष : ९८१०२२४५७१

ढलान

मूल एवं अनुवाद : **बलजीत सिंह रैना**

जम्मू-कश्मीर में जनमे पंजाबी भाषा के सुपरिचित कथाकार। पंजाबी में 'एक जमा दो मनफी', 'घर परत रेहा आदमी', 'अजीब आदमी', 'मिट्ठी-मिट्ठी चोभ', 'जायज-नाजायज', 'कथा अजब देश दी' ओर 'सुधीश पचौरी ने केहा सी' (कहानी-संग्रह); 'जिऊण लेई', 'मैनूं इवें ही प्यार कर', 'तीजी अक्ख दे नां' (कविता-संग्रह); 'एक और प्रेम कथा', 'पृष्ठभूमि', 'जादूगर', 'विज्ञापन', 'मंजिलें और रास्ते' (नाटक) चर्चित रहे। सर्वोत्तम पुस्तक पुरस्कार दो बार, सर्वोत्तम निर्देशक पुरस्कार, मॉडर्न लिटरेरी स्कॉलर अवार्ड तथा कई अन्य सम्मान प्राप्त।

बहुत सोच-विचार करने के पश्चात् वह चलने के लिए तैयार हो गया था। वह दिसंबरी पौष मास के ठंडे दिन थे और मुट्ठी भर धूप तक पास नहीं थी। दिन भर धुंध और कोहरे का वातावरण बना रहता और इस कड़ाके की ठंड ने उसे पत्नी के साथ विश्वासघात करने के लिए उकसा दिया था।

गरम कपड़ों से लदा हुआ वह अपने अर्दली के साथ क्वार्टर से निकल पड़ा था। पहाड़ी पगडंडी से उतरते हुए वह अच्छे दिनों को याद करने लगा था।

वह गरमियों के दिन थे और उसका उस पहाड़ी इलाके में अभी नया-नया तबादला हुआ था। उसकी पत्नी शोभा भी साथ आई थी और इस बात के लिए खुश थी कि जम्मू की अपेक्षा यहाँ गरमी अधिक नहीं थी और सुबह-शाम ठंडी हवा बहती रहती थी। बड़े मजेदार दिन थे। लेकिन ठंडे मौसम के आते ही शोभा की पुरानी कई बीमारियाँ सुरजीत हो उठी थीं और वह वापस जम्मू लौट गई थी।

शोभा लौट गई, लेकिन उसे वहीं रहना था, उस पहाड़ी इलाके में···अकेले, तन्हा, जहाँ चीड़ और देवदारों के पेड़ को रुई जैसी सफेद बर्फ अब वस्त्रों सी ढकने लगी थी।

उसका अर्दली छज्जूराम अच्छी तरह से जानता है कि साहब लोगों को खुश कैसे रखा जाता है। शायद वह उससे पहले दूसरे अफसरों को भी ऐसे ही खुश रखा करता था।

सामने ढलान में बने एक घर की ओर इशारा करते हुए वह बताने लगा कि लाजो वहीं उस घर में अपनी बच्ची के साथ रहती है, उसकी बच्ची अब पाँच वर्ष की हो गई है, उसे एक धोखेबाज ने कुँवारी माँ बना दिया था, उसके पिता ने गुस्से में आकर उस धोखेबाज को कुल्हाड़ी से मार डाला था, उसके पिता को फाँसी लग गई थी, बाद में बच्ची को जन्म देने के बाद वह साहब लोगों से रुपया-पैसा लेकर उन्हें खुश करने लगी थी, वह बड़ी खूबसूरत और कामुक औरत है, मैंने उससे आपके लिए बात कर ली थी।

घर के पास पहुँचकर छज्जूराम ने पुकारा, ''लाजो!''

एक छोटी सी बच्ची ने दरवाजे के पीछे से सिर निकालकर बाहर देखा और फिर बाहर आकर सामने बरामदे में खड़ी हो गई।

छज्जूराम ने बताया, ''यह लाजो की बेटी चंदा है।''

''माँ पानी लेने गई है।'' चंदा ने बताया।

''कोई बात नहीं, हम इंतजार करेंगे। अभी आती ही होगी।'' घर में घुसते हुए छज्जूराम ने उसे अंदर बुला लिया था, ''आइए न साहब!''

घर के भीतर कदम रखते हुए एकाएक उसे लगा कि यहाँ आकर उसने अच्छा नहीं किया और उसे अपने अर्दली के साथ इस तरह से इतना अनौपचारिक नहीं हो जाना चाहिए था।

कुरसी वगैरह तो उस घर में कोई थी नहीं, हाँ एक खटिया पर मैला सा बिस्तर जरूर बिछा हुआ था, जिसमें से अजीब सी सीलन भरी महक आ रही थी। चारपाई पर बैठने के बाद उसने महरास किया कि दरवाजे के साथ लगकर खड़ी बच्ची की आँखें लगातार उसे देखे जा रही थीं। उसे लगा कि वह अधिक समय तक इन नन्हीं मासूम आँखों के सामने नहीं बैठ पाएगा और एकाएक उठ खड़ा हुआ। ''चलो छज्जूराम, फिर कभी···''

''पर साहब, आती ही होगी लाजो।''

लेकिन तब तक वह कमरे से बाहर निकल चुका था। बाहर ड्योढ़ी से एक खूबसूरत औरत पानी से भरे दो मटके लिये घर में दाखिल हुई। एक मटका सिर पर और दूसरा कमर में कूल्हे पर टिका हुआ। उसे देखकर वह मुसकराई, ''आप आ गए, साहब!''

''साहबजी, यही लाजो है जी!'' छज्जूराम की आवाज उसके कानों में पड़ी।

उस बला की पहाड़ी खूबसूरती ने उसके कदमों को जैसे बाँध लिया था। वह पहाड़न तो अपने आप में ही पहाड़ियों का खूबसूरत सा एक सिलसिला थी। ''आप बाहर क्यों खड़े हैं, अंदर आइए न, साहब?'' कहते हुए वह थोड़ा झुककर बरामदे से होती हुई कमरे में दाखिल हो गई थी।

वह कमरे की ओर बढ़ने ही वाला था कि दरवाजे के पीछे से बाहर उसकी तरफ देखता हुआ बच्ची का चेहरा उभरा। 'आह! इतना मासूम सा खूबसूरत चेहरा!' जाने क्यों वह आगे नहीं बढ़ पाया था। झट से वह छज्जूराम

की ओर घूमा, ''इसे क्वार्टर में भेज देना।'' कहा और ड्योढ़ी में से बाहर निकल गया।

छज्जूराम को कुछ समझ में नहीं आया।

''कहाँ गए, साहब?'' लाजो ने बाहर निकलकर पूछा तो छज्जूराम ने कंधे उचका दिए।

''मुझसे कोई गलती हो गई क्या?'' उसने फिर पूछा।

''मालूम नहीं, तुम्हें क्वार्टर में आने को बोले हैं।''

''हाँ भई, बड़े साहब हैं, गरीब के घर में कैसे बैठेंगे?''

''अरे ऐसे कामों में अमीरी-गरीबी का सवाल कहाँ आता है बीच में? फिर क्या कारण रहा होगा?''

''यही तो समझ में नहीं आया। खैर, तुम शाम को बँगले पर चली जाना।''

शाम को लाजो जब साहब के बँगले पर पहुँची तो वह छत पर से दूर ढलानों पर फैले देवदार के जंगल को देख रहे थे। छज्जूराम ने लाजो को आते ही छत पर भेज दिया था और वह बड़ी देर से साहब के पीछे खड़ी उनके मुड़ने का इंतजार कर रही थी। लेकिन जब उससे रहा नहीं गया तो उसने पूछ ही लिया था, ''क्या देख रहे हैं, साहब?''

वह एकाएक चौंककर घूमा था, ''ओह तुम! कब आई?''

''मैं तो कब से आकर खड़ी हूँ, लेकिन आप इतनी देर से क्या देख रहे थे?''

''ढलान।'' कहते हुए वह फिर ढलान की ओर घूम गया था।

लाजो भी उसके नजदीक चली गई थी। उसे समझ में नहीं आ रहा था कि कैसा साहब है! कब से आकर खड़ी हूँ और यह ढलान की ओर ही देखे जा रहा है! पहलेवाला साहब तो उसे सामने पाते ही दबोच लेता था। अजीब आदमी है!

''यह ढलान देख रही हो न, लाजो!'' उसने सामने इशारा करते हुए कहा था।

लाजो ने मुँह बिदकाते हुए लापरवाही से उत्तर दिया था, ''यह ढलान तो रोज ही देखती हूँ।''

''रोज देखती हो?'' उसे जैसे विश्वास न हुआ हो, ''यह ढलान तुम्हें कुछ नहीं कहती?''

''यह आप कैसी बातें कर रहे हैं, बाबू साहब? भला पहाड़ी ढलान भी किसी से कुछ कहती है!''

''क्यों नहीं कहती? जरूर कहती है। पहाड़ों में जिंदगी का फलसफा छुपा है।''

''क्या छुपा हुआ है, बाबू?''

''फलसफा।'' उसने स्पष्ट किया था।

''यह कौन सा फल होता है?''

हँस पड़ा था वह। फिर समझाते हुए बोला, ''यह फल नहीं होता है बल्कि फल का दर्शन होता है।''

''आप भी पहेलियाँ बुझाते हैं, बाबू साहब। जो फल ही नहीं होता है, उसका दर्शन कैसे हो सकता है?''

''क्यों, इनसान एक फल नहीं है? जैसे पेड़ के साथ फल लगता है, वैसे ही औरत-मर्द की गृहस्थी के पेड़ पर भी बच्चे-सा फल लगता है।''

लाजो को लगा जैसे बात उसकी समझ में आ गई है, तपाक से बोली, ''तो ऐसे कहिए न औरत-मर्द वाला फल। पर ऐसे फल छत पर इस तरह दूर-दूर खड़े रहने से थोड़े ही लग जाते हैं।''

वह उसकी बात सुनकर मुसकरा दिया था। फिर जब लाजो ने कहा, ''नीचे कमरे में चलते हैं।'' तो उसने 'न' में सिर हिला दिया था।

''पहले मेरी बात का जवाब तो दे दो।''

''कौन सी बात?''

''यही कि···यह पहाड़ी ढलान तुमसे क्या कहती है?''

लाजो खीझ उठी थी, ''फिर ढलान! मुझे नहीं मालूम।''

लाजो के चेहरे पर उभरे भाव देखकर उसने जैसे इरादा बदलकर कहा था, ''आओ, नीचे चलें।''

कमरे में पहुँचते ही लाजो निर्लज्जता से पलंग पर कुछ इस तरह से फैल गई, जैसे उसकी देह एक जिस्म होने के साथ-साथ ही एक भरपूर निमंत्रण भी हो, कि आगे बढ़ो और मुझ में समा जाओ।

उसने लाजो के जिस्म पर एक भरपूर नजर डालने के बाद कहा, ''तुम क्या समझती हो, मैं तुम्हारे जिस्म का भूखा हूँ?''

''मर्द तो औरत के जिस्म के ही भूखे होते हैं।'' स्पष्ट कह गई लाजो।

''लेकिन मेरी भूख इतनी छोटी नहीं है। मैं बहुत ज्यादा भूखा हूँ। मुझे तन की भूख के साथ-ही-साथ मन की भूख भी लगती है। इसलिए मैंने छत पर तुमसे कहा था कि यह पहाड़ी ढलान कुछ कहती है। जानती हो क्या कहती है?'' लाजो ने लेटे-लेटे ही 'नहीं' में सिर हिलाया था।

''यह कहती है कि आज तुम जवानी की चोटी पर खड़ी हो और इस चोटी पर पहुँचने के लिए इनसान को पहाड़-सी जिंदगी के नीचे बचपन से शुरू करना पड़ता है। आहिस्ता-आहिस्ता इनसान उम्र के कई सालों की सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ इस जवानी की चोटी पर पहुँचता है और चोटी के बाद ढलान शुरू होती है। जिंदगी की इस ढलान में जब कोई हमें पुराना-बूढ़ा समझकर देखना भी पसंद नहीं करेगा, तब भी तुम मुझे प्रेम करो और मैं भी तुम्हें आज की तरह ही चाहता रहूँ। एक ऐसे अटूट रिश्ते की कल्पना देती है यह ढलान।''

लाजो उठकर बैठ गई थी। उसे यकीन नहीं आ रहा था कि उसके कानों ने जो कुछ भी सुना है, वह बाबू साहब ही कह रहे हैं। सचमुच कैसा बाबू है यह!

उसने फिर कहा था, ''लाजो, मुझसे प्रेम करना है तो इतना करो कि हम उम्र की ढलान में अंत तक साथ दे सकें।''

एकाएक लाजो को महसूस हुआ कि जिंदगी में पहली बार किसी मर्द से पाला पड़ा है, जिसने बुढ़ापे तक साथ देने की, सहारा बनने की बात कही है।

और फिर जब इस नए रिश्ते की गरमाहट उनके जिस्मों में घुल-मिल गई तो शांत होते ही उसने लाजो को बताया कि वह शादीशुदा जरूर है, लेकिन वह अपनी पत्नी से खुश नहीं है, उसकी पत्नी अभी तक माँ

नहीं बन सकी, उसका सबसे बड़ा सपना पिता बनने का है, उसकी शादी को चार वर्ष हो चुके हैं, आज वह उसे पाकर बहुत खुश है, उसे अब किसी और के साथ सोने की जरूरत नहीं है, वह उसकी सारी जिम्मेदारियाँ ले लेगा, वह उससे मंदिर में गुप्त विवाह भी कर लेगा, इस विवाह के बारे में किसी को पता नहीं चलना चाहिए, उसकी नौकरी जा सकती है।...

□

आज लाजो की बेटी दूर कहीं किसी बोर्डिंग स्कूल में पढ़ती है। साल में एक बार छुट्टियों में घर आती है। उसका साहब भी अपनी जुबान का पक्का निकला। हालाँकि उसकी बदली हो चुकी है, लेकिन वह तीन-चार महीने में एक बार प्राय: उसके पास आता रहता है। चाहे दो दिन के लिए ही आए, मगर आता जरूर है।

बस एक ही अफसोस रह गया है लाजो को, वह भी साहब की पत्नी की तरह साहब के लिए बाँझ ही निकली। दस साल कम नहीं होते। जब जरूरत नहीं थी तो बिन ब्याही ही माँ बन गई थी और पिछले दस सालों में चाहकर भी नहीं बन पाई। यह परमेश्वर भी अजीब खेल खेलता है। वह प्राय: सोचती है।

ऐसा नहीं कि उसे साहब से गर्भ ठहरा ही नहीं। एक बार ठहरा था। तब साहब की बदली नहीं हुई थी। कितने खुश हुए थे साहब। हमेशा अपने बचपन की तसवीर देखते रहते। तसवीर के एक-एक नक्श को अपनी यादों में सँभालते रहते। कहते, 'लाजो, अब मुझे लोग गलत नहीं समझेंगे। मैं उनको बताऊँगा कि मैं भी बाप बनने के काबिल हूँ। शोभा भी मुझे ही गलत कहती है। मैं उसको बताऊँगा।'

पर तीसरे महीने ही गर्भपात हो गया था। कितने दु:खी हुए थे साहब तब! उनका सपना टूट गया था। उनका सबसे बड़ा सपना, पिता बनने का सपना!

अब तो चंदा बेटी भी जवान हो गई है। मैट्रिक की परीक्षा देगी इस बार। खुशी से उसकी आँखों से आँसू छलक आए थे। उसके खानदान में कोई भी तो मैट्रिक तक नहीं पहुँचा था।

हाय! कितनी सुंदर निकली है चंदा! किसी की नजर न लग जाए। किस्मत अच्छी थी, जो साहब जैसा आदमी पिता के रूप में मिल गया। वरना क्या पता उसकी गरीबी उससे क्या कुछ करवा डालती। लाजो एकाएक सिहर उठी थी।

''कहाँ खोई हुई हो?''

साहब की आवाज सुनकर एकाएक उसके चेहरे पर चमक आ गई थी। झट से स्वागत के लिए उठती हुई बोली, ''दो ही जन तो ऐसे हैं इस दुनिया में, जिनकी याद में खो जाना अच्छा लगता है।''

''चंदा को याद कर रही थी?'' चारपाई पर बैठते हुए पूछ लिया था साहब ने।

लाजो ने साहब के पास बैठते हुए कहा, ''हाँ, चंदा को भी और चंदा के ईश्वर समान पिता को भी।''

कुछ परेशान हो गए थे साहब। चारपाई पर पीठ लगाकर पसरते हुए बोले, ''अब चंदा याद करने लायक कहाँ रह गई है!''

लाजो का माथा ठनका था। 'यह साहब आज कैसी बातें कर रहे हैं।'

''क्या हुआ चंदा को?''

''जवानी चढ़ गई है उसे और क्या होना है?''

''सच सच बताओ, क्या हुआ उसे?''

उत्तर में साहब ने जेब से एक चिट्ठी निकालकर लाजो की ओर बढ़ा दी थी, ''लो पढ़ो इसे। मिलते ही सीधा तुम्हारे पास चला आया हूँ।''

लाजो ने जल्दी से चिट्ठी खोली थी, ''पर यह तो अंग्रेजी में है।''

''हाँ, अब अंग्रेज हो गई है तुम्हारी बेटी! अंग्रेजी संस्कृति वाला प्यार हो गया है उसे। अपने साथ पढ़नेवाले एक लड़के को वह अपना मन ही नहीं, तन भी समर्पित कर चुकी है और उसके बच्चे की माँ बननेवाली है!''

लाजो के तो पाँव के नीचे से जैसे जमीन ही खिसक गई थी। 'यह क्या कर दिया चंदा ने! भगवान् ने उसे साहब जैसे पिता का आसरा देकर जिंदगी सँवारने का इतना अच्छा अवसर दिया था, लेकिन उसकी किस्मत में भी अपनी माँ की तरह बिन ब्याही माँ बनना ही लिखा था।'

''हे भगवान्। अब क्या होगा?'' उसके मुँह से इतना ही निकला।

''अब कुछ नहीं हो सकता लाजो, कुछ नहीं। वह लड़का बड़े घराने का था और आगे पढ़ने के लिए विदेश चला गया है। उस पर यह भेद चंदा ने इतनी देर के बाद खोला है कि अब डॉक्टर भी कुछ नहीं कर सकते। अब तो उसे हर हाल में बच्चे को जन्म देना ही होगा?''

लाजो की आँखें भर आई थीं, ''अब मेरी बेटी पर भी बिन-ब्याही माँ होने का दोष लगेगा।'' वह सुबकने लगी तो साहब ने उठकर उसके कंधे पर अपना स्नेह भरा हाथ रख दिया। फिर उसकी आँखों से बहते हुए आँसुओं को पोंछते हुए साहब बोले, ''तुम चिंता क्यों करती हो? मैं हूँ न, सब सँभाल लूँगा। मैंने सब सोच लिया है। वह बच्चे को किसी दूसरे शहर में जन्म देगी। जहाँ उसे कोई नहीं जानता होगा। तुम्हें दो-तीन महीने वहाँ उसके साथ रहना होगा। मैं खुद दोनों को वहाँ छोड़कर आऊँगा। चिंता की जरूरत नहीं। अब कुछ-न-कुछ तो करना ही है।''

लाजो ने श्रद्धाभाव से साहब की ओर देखा, 'कैसा देवता स्वरूप इनसान है साहब! जरूर पिछले जन्म में उसने कुछ पुण्य किए होंगे, जो साहब जैसा आदमी उसकी जिंदगी में आ गया है।' सोचते-सोचते वह स्वत: बोल उठी थी, ''लेकिन होनेवाले बच्चे का क्या करेंगे?''

''उसे मैं अपना लूँगा।''

लाजो ने साहब की आँखों में झाँका तो साहब ने पलकें झुकाकर 'हाँ' में गरदन हिलाई थी, ''शायद भगवान् ने मेरी झोली में इसी तरह से किसी बच्चे को डालना था।''

लाजो तन से चाहे साहब की बाँहों में समा गई थी, लेकिन मन से

वह उनके चरणों में जा पड़ी थी।

दूर-दराज के एक शहर में चंदा ने एक बच्ची को जन्म दिया और कुछ दिन वहाँ रहने के बाद लाजो चंदा और उसकी बच्ची को साथ लेकर अपने पहाड़ पर लौट आई थी। आने से पहले उसने साहब को चिट्ठी डालकर बच्ची के जन्म की खबर कर दी थी और जल्दी आने के लिए भी लिखा था।

लेकिन साहब के आने से पहले ही एक दुर्घटना घट गई। चंदा एक पथरीली ढलान पर से फिसल गई और लहू से लथपथ होती हुई दूर उन दरख्तों तक फिसलती चली गई थी, जिनकी एक टूटी हुई नुकीली शाख ने पेट में घुसकर उसे और अधिक फिसलने से रोक लिया था।

'''और मरने से पहले जो कुछ उसने अपनी माँ को बताया, वह उसे पागल बना देने के लिए काफी था। लाजो की बाँहों में ही दम तोड़ा था चंदा ने। चंदा के अंतिम संस्कार से पहले ही वह मुक्त हो जाना चाहती थी उस बोझ से, जो चंदा के अंतिम शब्दों ने उसकी छाती में किसी कील सा गाड़ दिया था।

एकाएक वह उठ खड़ी हुई थी। उसने लेटी हुई बच्ची को उठाया और उसी पथरीली ढलान की ओर चल पड़ी, जहाँ उस बच्ची की माँ चंदा फिसलकर मौत के मुँह में जा पड़ी थी।

कुछ ही देर में वह ढलान के बीच में खड़ी उन नुकीली चट्टानों को देख रही थी, जिन्होंने उसकी फूल-सी बेटी के जिस्म की चमड़ी को यहाँ-वहाँ से छील दिया था। सहसा उसने अपने कंधे पर एक जाने-पहचाने हाथ का स्पर्श महसूस किया और झट से वह कंधा झटककर अलग जा खड़ी हुई थी।

''मुझे मालूम पड़ा, अभी-अभी कि हमारी बेटी अब इस दुनिया में नहीं रही।'' साहब ने गहरा शोक प्रकट करते हुए कहा, ''छज्जूराम ने बताया अभी-अभी, समझ में नहीं आता, मैं इस दु:ख की घड़ी में तुम्हें किस प्रकार समझाऊँ! मैं तो खुद अपने ही मन को नहीं समझा पा रहा कि हमारी बेटी, अब इस दुनिया नहीं है।''

''हमारी बेटी मत कहो, मेरी चंदा को!'' एकाएक लाजो फट पड़ी, ''वह सिर्फ मेरी बेटी थी'''मेरी। एक दिन तुमने मुझ से पूछा था न! 'यह ढलान तुम्हें क्या कहती है लाजो', आज मैं फिर वही सवाल तुम से पूछती हूँ बाबू साहब, यह ढलान तुम्हें क्या कहती है? बताओ-बताओ मुझे, चुप क्यों हो तुम? यही सवाल तूने मेरी बेटी से भी पूछा था न? मेरे शरीर की तरह उसके शरीर को भी पहाड़ियों का खूबसूरत सिलसिला कहता था तू? यह देख एक और पहाड़ियों का खूबसूरत सिलसिला मेरी बाँहों में साँस ले रहा है। इससे भी पूछेगा कि यह पहाड़ी ढलान इसे क्या कहती है?''

''लाजो, तुम होश में नहीं हो।'' उसने उसे शांत करते हुए कहा था, ''बेटी के गम ने तुम्हें पागल बना दिया है। सँभालो अपने आपको।'' कहते हुए साहब उसकी ओर बढ़ा तो वह चिल्ला पड़ी थी, ''मेरे नजदीक मत आना तुम। बाप बनने का बड़ा शौक था न तुम्हें? शक के कीड़े, तू अपने बचपन की तसवीर बार-बार सिर्फ इसलिए देखा करता था कि जब मैं तुम्हारे बच्चे की माँ बनूँ तो तुम देख सको कि उसका चेहरा तुम्हारे बच्चे के चेहरे से कितना मिलता है। लेकिन मैं तुम्हें तुम्हारी बच्ची का चेहरा देखने नहीं दूँगी। बहुत पूछता था तू ढलान के बारे में। पर आज मैं पूछती हूँ तेरे को बाबू साहब, देखो इस पथरीली ढलान को और बताओ कि यह आज तुम्हें क्या कह रही है? बता धोखेबाज'''बोल?''

''लाजो!'' इस बार साहब गुस्से में चिल्लाया था।

''चिल्लाओ मत बाबू साहब, मैं बताती हूँ यह ढलान तुम्हें क्या कहती है। आज यह ढलान तुम्हें कहती है, बाबू साहब कि जैसे इस पगली लाजो की बेटी नहीं बची, वैसे ही तेरी बेटी भी नहीं बचेगी। नहीं बचेगी, बाबू साहब!'' और इससे पहले कि वह आगे बढ़कर उसकी बाँहों में से अपनी बच्ची को छीन पाता, लाजो ने वह बच्ची पथरीली ढलान की ओर उछाल दी थी।

साअ

कुंजवानी, शहीद फिलिंग स्टेशन
के पीछे, जम्मू-१८००९०
दूरभाष : ९७९७६५७२११

इस अंक के चित्रकार

राघवेंद्र तिवारी

३० जून, १९५३ में ललितपुर (उ.प्र.) में जनमे राघवेंद्र तिवारी एक सक्षम साहित्यकार और चित्रकार हैं। इनके रेखांकनों में जीवन के गतिशील चित्र और मानव भंगिमाएँ इतने सहज और प्रभावी रूप में आती हैं कि ये रेखांकन खुद कविता की भाव-व्यंजक सतरों सरीखे लगते हैं। किसी एक रूढ़ शैली में बँधने की बजाय राघवेंद्र अपने रेखांकनों को खुले जीवन और हवाओं की तरह बहने देते हैं। और इसीलिए उनमें मानवीय सुख-दुःख के साथ-साथ भीतरी उजास दरख्तों का उष्मिल विस्तार और परिंदों की उड़ान भी देखी और महसूस की जा सकती है। 'शिक्षा का नया विकल्प : दूर शिक्षा', 'भारत में जनसंचार और संप्रेषण के मूल सिद्धांत', 'कविता की अनुभूतिपरक जटिलता' तथा दो खंडकाव्य, कुछ कहानियाँ, व्यंग्य लेख एवं निबंध आदि प्रकाशित। संप्रति इ.गां.रा.मु. विश्वविद्यालय में परामर्शदाता।

संपर्क : ई एम ३३, इंडस टाउन
होशंगाबाद रोड, भोपाल-४६२०२६
दूरभाष : ९४२४४८२८१२

गावो विश्वस्य मातर

● सुरेश कुमार

हमारा देश जो विश्वगुरु कहलाता था, आज पतन की ओर है, क्योंकि हिंदुस्तान की संस्कृति नष्ट हो रही है, सभ्यता नष्ट हो रही है, देश में पाश्चात्य संस्कृति का विकास हो रहा है, सबसे बड़ी बात यह है कि विश्व की माता कही जानेवाली गाय, आज हिंदुस्तान में दु:खी है।

दिन-प्रतिदिन हिंदुस्तान में गायों की संख्या में कमी आ रही है, क्योंकि हिंदुस्तान में हजारों की संख्या में कत्लखाने चलते हैं, जहाँ पर गायों को काटा जाता है।

१५ अगस्त, १९४७ को जब हिंदुस्तान आजाद हुआ था, जब ब्रिटेन सरकार के आँकड़े यदि हम देखें तो उस समय हिंदुस्तान में ८५०-९०० कत्लखाने थे, जिनका लाइसेंस ब्रिटिश सरकार ने दे रखा था! अंग्रेजों के लिए गाय माँ नहीं थी। क्यों नहीं थी, क्योंकि उनका धर्म है ईसाई, और ईसाई, धर्म का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है बाइबिल! बाइबिल में यह कहीं नहीं लिखा है कि गाय हमारी माँ है; जब धर्म में नहीं है तो वे क्यों मानेंगे।

हिंदुस्तान आजाद होने के ६६ वर्ष बाद भी जब हम अपने आप को आजाद मानते हैं, हम अपना अमूल्य मत देकर अपने नेताओं को दिल्ली भेजते हैं, उस आजाद स्वतंत्र भारत की धरती पर ४९,००० कत्लखाने चलते हैं, जिनका लाइसेंस भारत सरकार ने दे रखा है। भारतीय परंपरा कहें या हमारा दुर्भाग्य, कि यदि कोई एक काम भारत में लाइसेंस से होता है तो तीन काम अवैध रूप से होते हैं! यदि ४९००० कत्लखानों का लाइसेंस है तो १,५०,००० कत्लखाने बिना लाइसेंस के चलते होंगे।

पिछली बार एक सर्वेक्षण हुआ था कि जिस भारत में श्रीकृष्ण भगवान् ने गौ माता की सेवा की, भगवान् श्रीराम का जन्म कामधेनु की कृपा से रघुकुल में हुआ था, वह भारत की धरती पूरे भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में गौ मांस बेचने में नंबर वन आई है।

कुछ लोग कहते हैं कि मुसलमान गायों को काटते हैं, निवेदन करता हूँ कि हम मुसलिम भाइयों को दोष नहीं दे सकते; लेकिन कुरान में यह कहीं नहीं लिखा है कि गाय हमारी माँ है, ईसाई धर्म के सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ बाइबल में यह कहीं नहीं लिखा है कि गाय हमारी माँ है। भारतीय संस्कृति के प्रत्येक ग्रंथ में यह बात निश्चित रूप से लिखी हुई है कि 'गावो विश्वस्य मातर...!' गाय मेरी या आपकी माँ नहीं बल्कि पूरे विश्व की माता है।

मुसलिम संस्कृति में इतिहास की एक बात बताना चाहता हूँ कि जब जहाँगीर दिल्ली का शासक बना था, तब तुलसीदास के गुरु नरहरिदास (जिनका जन्म भैरूंदा गाँव अजमेर, राजस्थान में हुआ था) एक बार जहाँगीर के दरबार में हाजिर हुए तो जहाँगीर ने पूछा कि आप कौन हो, तो उन्होंने जवाब दिया कि मेरा नाम नरहरिदास है और मैं राजस्थान के अजमेर से आया हूँ। जहाँगीर ने पूछा कि मुझसे कोई आपको काम है तो बताओ, तब नर हरिदास ने कहा कि राजा, मेरी इस बात का जवाब दो कि जब कोई व्यक्ति कितना भी बड़ा अपराध कर दे और गाय के चारे का तिनका मुँह में रखकर यह कह देता कि मैं गाय हूँ और मुझे माफ कर दो तो गाय के नाम लेने पर उसको माफ कर दिया जाता है। मेरा सिर्फ यह प्रश्न है कि यदि किसी को गाय के नाम से माफ कर दिया जाता है तो हिंदुस्तान में गाय क्यों कट रही है?

मित्रो, मुसलिम संस्कृति में एक इतिहास हुआ कि जहाँ औरंगजेब ने इतने अत्याचार करवाए, वहीं जहाँगीर ने अपने तख्त पर बैठकर एक फरमान जारी कर दिया कि मैं जब दिल्ली के तख्त पर बैठा हूँ। हिंदुस्तान में कोई भी गाय को नहीं काटेगा। वह उस समय की बात थी। आज इस देश का प्रधानमंत्री हिंदू है, देश में सबसे ज्यादा मुख्यमंत्री हिंदू हैं, जितने भी मंत्री हैं, उनमें सबसे ज्यादा मंत्री हिंदू हैं, हिंदू होने के बाद भी कुछ वोट के लिए कि भाई एक समुदाय नाराज हो जाएगा, उसके लिए हिंदुस्तान में गौ हत्या बंद नहीं होती। यह हमारे लिए सोचने का विषय है। अभी मैं

बताना चाहता हूँ कि हिंदुस्तान का सबसे बड़ा कत्लखाना आंध्रप्रदेश में था। उस कत्लखाने का नाम था 'हल कबीर कत्लखाना', जो अब नोयडा में आ गया है। उस कत्लखाने में एक दिन में २०,००० पशुओं का कत्ल होता है, जिसमें से ६० प्रतिशत गायें होती हैं। सबसे ज्यादा गायें राजस्थान की धरती से जाती हैं; जहाँ पर वीर नेजाजी ने अपने प्राण दे दिए, बाबूजी राठौड़ ने अपने विवाह को छोड़ दिया। जितने भी लोकदेवता हुए हैं, सबने गायों के लिए अपने प्राण निछावर कर दिए।

अभी मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मैं किसी भी राजनीतिक विषय पर चर्चा नहीं करना चाहता हूँ, लेकिन मुझे एक प्रकार का लेख मिला है कि हिंदुस्तान की गौ-मांस बेचने की सबसे बड़ी कंपनी का नाम 'अरिहंत एक्सपोर्ट' है, जो इस देश के कैबिनेट मंत्री थे, कानून मंत्री कपिल सिब्बल की पत्नी हैं, उनके नाम से वह रजिस्टर्ड है। उस कंपनी को भारत सरकार ने गौ मांस निर्यात करने का लाइसेंस दे रखा है।

काटने से पहले गाय के साथ कैसा दुर्व्यवहार होता है। सबसे पहले गाय को वहाँ पर ले जाया जाता है। तीन-चार दिन तक बिना पानी व चारे के रखा जाता है। बाद में गाय के चारों पैरों को बड़ी मोटी जंजीरों से बाँधकर उल्टा लटकाया जाता है। लगभग ३०-३५ फीट ऊपर हाइड्रोलिक क्रेन से ऊपर चढ़ाया जाता है। १००-१५० डिग्री तापमान पर पानी उबलता है। उबलते हुए पानी के फव्वारे उस गाय माता के ऊपर डाले जाते हैं, उसकी चमड़ी को नरम करने के लिए।

उस लटकती हुई गाय के गले में छेद कर दिया जाता है। नीचे एक बड़ा बरतन रखा जाता है। टपक-टपककर गाय माता का रक्त उस बरतन में गिरता है। हमारी गाय माता १२० करोड़ बेटों के होते हुए वहाँ पर तड़पती हुई अपने प्राण त्याग देती है।

जिस गाय के पेट में बछड़ा होता है, उस गाय के प्रजनन अंग से तेज प्रेशर से उसके पेट में हवा भरी जाती है। उसके पेट को फुलाया जाता है। जीवित या मुरदा बछड़ा निकाला जाता है, उसका 'क्रूम' बनता है। गाय के जितने भी अवयव हैं (रक्त, मांस आदि), वे विदेशों में भी जाते हैं, वहाँ से धन आता है और भारत की सरकार उस धन का कहीं-कहीं उपयोग हिंदुस्तान के विकास में लगाती है। कहीं पंचायत भवन बनते हैं, कहीं पाठशालाएँ बनाई जाती हैं, ऐसी पाठशालाओं में हमारे विद्यार्थी पढ़ते हैं, हम किस दिशा की ओर जा रहे हैं।

मेरा निवेदन है कि हम सब भारतवासी मिलकर गायमाता को राष्ट्रीय पशु के रूप में विकसित करें। इस देश में मोर के लिए कानून है, हिरण के लिए कानून है, शेर के लिए कानून है, इनके साथ जो दुर्व्यवहार करता है तो उसको सजा हो जाती है। ये तीनों दूध भी नहीं देते हैं, लेकिन गाय माता सदियों से अपने बछड़े को भूखा रखकर १२० करोड़ बेटों को दूध पिलाती है। फिर भी उसके साथ कितना अन्याय हो रहा है, उसे कोई रोकनेवाला नहीं है।

यह देश कैसे सुधरेगा? इसका मुझे पता नहीं, लेकिन मुनि तरुण सागरजी महाराज ने अपनी पुस्तक 'कड़वे प्रवचन' में लिखा है कि भारत की सभी राज्यों की राजधानी व मुख्य राजधानी दिल्ली में बैठे १०,००० लोगों को सुधार दो, देश के १२० करोड़ लोग अपने आप सुधर जाएँगे। यह मैंने नहीं कहा है—एक राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय क्रांतिकारी संत ने कहा है।

गाँव+पोस्ट : केकड़ वाया-धौरीमन्न,
तहसील-८ सेड़वा, जिला-बाड़मेर-३४५७०५ (राज.)
दूरभाष : ९९५०८४१५५४

बुद्धि

कविता

● गोपेश शरण शर्मा 'आतुर'

बुद्धि तू दुर्बुद्धि से लड़ती नहीं है,
मार्ग में इसके तनिक अड़ती नहीं है।

लाभ क्या होगा तुझे चिंता नहीं है,
मनुजता को अब समय गिनता नहीं है।

नित अनेकों खोज करते आ रहे हैं,
आदमी उस ओर दौड़े जा रहे हैं।

बाद में उनकी बताते हानियाँ हैं,
इक कहानी नहीं बहुत कहानियाँ हैं।

आज भी विस्फोट करते जा रहे हैं,
व्यर्थ रचना ध्वंस करते जा रहे हैं।

लाभ क्या होगा नहीं तू सोचती है,
मनुजता का व्यर्थ खिलना रोकती है।

कार्बन क्यों वायुमंडल में घुला है,
पेड़ कम, भूजल रसातल को चला है।

उग्र वैश्विक ताप पिघले ग्लेशियर हैं,
छोड़ता मर्याद सागर, दिक नगर हैं।

इसलिए कुछ यत्न कर सद्बुद्धि आए,
प्रार्थना कर वह नियंता जग बचाए।

प्लाट नं. २८, लेन नं. २
सिविल लाइंस कॉलोनी
मदरामपुरा, सिविल लाइंस
जयपुर-३०२००६
दूरभाष : ०१४१-२५००५६१

कहानी

हस्तक्षेप

● इंदु मौआर

खुशी की जब शादी हुई थी, उस समय उसका वजन सिर्फ पैंतीस किलो था। वह पतली-दुबली, साँवली-शरमीली लड़की थी। उसके साथ उसके पति की यह दूसरी शादी थी। पहली पत्नी से उन्हें कोई ऐसी तकलीफ थी, जिसके कारण उन्हें दूसरा विवाह करना पड़ा था। पति भी दुबले ही थे, पर उनकी पूर्व पत्नी का वजन बहुत ज्यादा था।

लेकिन शादी के फौरन बाद ही सौत की आत्मा से उसका साक्षात्कार हुआ। उन दोनों के बीच वह आती और खुशी के भीतर समा जाती। वह खाना खाने बैठती तो खाना-पानी के मार्फत वह उसके शरीर के भीतर समा जाती। उसका वजन भी धीरे-धीरे बढ़ने लगा। कुछ ही वर्षों में वह इतनी मोटी और भारी हो गई कि उससे उठना-बैठना भी नहीं हो पाता था।

हालाँकि उसकी सौत बदन के भारीपन के बावजूद बहुत फुरतीली थी। वह अपना काम-काज कर लेती थी, किंतु उसकी जिद थी कि वह खुशी को खुशी से जीने नहीं देगी। उसके शरीर को अपने समान ही भारी-भरकम बनाकर छोड़ेगी। इसलिए वह अकसर उसके सामने आ जाती थी।

खुशी को ताज्जुब होता था कि वह तो जिंदा है, पर उसकी आत्मा निकल कैसे आती है और उसके खाने पर बैठकर उसका खाना कैसे खाने लगती है।

क्या वह बहुत भूखी है और उससे बदला ले रही है? उसके मन में अनेक प्रश्न उठते—क्या वह मेरे शरीर के माध्यम से इनके साथ संबंध बनाए रखना चाहती है, क्या ऐसा संभव है? क्या यह छिपी रह सकती है? यदि हमारे बच्चे होंगे तो किसके होंगे, हम दोनों के या मेरी सौत के?

यदि उनके हुए तो क्या होगा? शरीर का उपभोग तो वह कर सकती है, पर बच्चे की परवरिश पर क्या असर पड़ेगा?

लेकिन इसकी नौबत नहीं आई। उसका शरीर इतना भारी और बेडौल हो गया कि उसकी संतान हो ही नहीं सकी। कुछ वर्षों के इंतजार के बाद खुशी को अकसर कुछ बच्चों की आत्माएँ दिखाई देने लगीं, जो उसके पास आकर बोलतीं, 'हमनी के बाल-बच्चा न रहनी। अब रउआ के बाल-बच्चा काहे के होई।'

खाने के समय वह भी सौत के साथ उसका खाना खाने लगे और उसके साथ जबरन जीने लगे। उनका कहना था कि यह घर हमारा है। हम इस घर के हैं।

अब तक चार कहानी संग्रह, एक कविता संग्रह और एक शोध-ग्रंथ प्रकाशित। कथा-लेखन के लिए बिहार राजभाषा विभाग का सम्मान। संप्रति पटना विश्वविद्यालय के मगध महिला कॉलेज में हिंदी विभागाध्यक्ष।

जब वह कुछ सामान खरीदकर लाती तो उसके भीतर से सुनाई पड़ता, 'ई सामान हमनी के बा। अपना खातिर लाइल रहनी है।' वह पूछती, तुम हमें भीतर से बोलकर परेशान क्यों कर रहे हो? अपने से ही वह सुनती, 'हमनी के मान-आदर करावें। आइल रहनी ह। रउआ हमार माई न रहनी ह। जाई रउआ खुश रहीं, हमहूँ खुश रहब।'

खुशी को लगता, यह कैसी शुभकामना है कि अपनी आत्मा के भीतर से ही आवाजें आती हैं। उसके दांपत्य-जीवन के बीच यह कैसी दीवार है। अपने सीने पर दूसरे का बोझ लेकर जी रही है। उसकी हँसी-खुशी कहीं गुम हो रही है। 'काश! उसे पहले से मालूम होता कि आत्माएँ जीवन में हस्तक्षेप भी करती हैं।'

एक दिन खुशी ने अपने पति से पूछा, ''आपने मुझे किस जंजाल में फँसा दिया।''

उन्होंने कहा, ''घर-गृहस्थी को जो जंजाल समझते हैं, वे ठीक से कहाँ जी पाते हैं।''

उसने कहा, ''मुझे ठीक से जीना चाहिए, किंतु मेरी आत्मा में आपकी पूर्व पत्नी और बच्चों ने बसेरा कर लिया है। वे हरदम कुछ-न-कुछ बोलते रहते हैं। ऐसे में मेरा जीना हराम होने लगता है। कृपया आप ही बताएँ कि मैं क्या करूँ?''

''मेरा सिर क्यों खराब करती हो। तुम्हें जो जी में आए सो करो। अरे, मेरा उनसे अब कोई वास्ता ही न रहा तो तुम्हारा क्या है? यह सब वहम है।''

वह फिर सोचने लगी, 'इतनी स्पष्ट आवाजें क्या वहम हो सकती हैं? या पूर्वजन्म का कोई नाता है?' उसकी आत्मा ने कहा, 'तुम मानो या न मानो, नाता तो है ही। वह अपना अधिकार पा न सकी तो तुम्हारे भीतर समा गई; क्योंकि वह भी जीना चाहती है। कुछ करना चाहती है। पर करे

तो क्या करे, उसे समझ में नहीं आता। अब तुम उससे जो कहोगी, वह करेगी, क्योंकि तुम्हारे अधिकार क्षेत्र में है।'

खुशी ने सोचा कि मेरे शरीर पर मेरा कब्जा ही नहीं है, पर वह मेरे अधिकार में है, यह कैसी बात है। उसने पूछा, ''क्या तुम मेरे साथ रहकर मेरी तरह सोच सकती हो।''

''हाँ, क्यों नहीं। मैं तो तुम्हारे ही साथ हो गई तो मेरी सोच पर असर पड़ना ही है।''

उसने कहा, ''बोलो, मैं क्या करूँ तुम्हारे लिए।''

खुशी ने कहा, ''मैं तुम्हारी तरह फुरतीली बनना चाहती हूँ, ताकि अपना काम-धाम ठीक से कर सकूँ। बोलो मेरा वजन कम होगा कि नहीं।''

''अब मैं क्या बोलूँ? मैं तो ढाई मन की हूँ। तुम्हारे भीतर रहने लगी हूँ, इसलिए तुम भारी-भरकम लगती हो।''

''तो तुम मेहरबानी करके निकल जातीं तो मैं पूर्ववत् हलकी हो जाती।''

उसने कहा, ''इसके लिए तुम्हें कुछ देना पड़ेगा।''

''क्या?''

''मैं तुम्हारी सारी संपदा ले लेना चाहती हूँ, क्योंकि तुम्हारे पति के जीवन में पहले से मैं ही थी।''

''अच्छी बात, तो तुम चली क्यों गईं? यदि अनबन न होती तो तुम्हें ही रहना था। फिर संपत्ति भी तुम्हारी होती।''

''हाँ, यह बात तो है। मेरा पानी कड़ा है, ऐसा उन्होंने समझा, तभी तो आज यह नौबत आई।''

खुशी ने कहा, ''मेरा भी पानी कड़ा है। क्या मैं भी चली जाऊँ?''

''नहीं, नहीं, ऐसा नहीं सोचना। वह अकेले पड़ जाएँगे तो मुझे भी दुःख होगा।''

''तो फिर क्या करूँ?''

''अरे, तुम्हारे भीतर रहकर मैं उनके भी साथ हो जाती हूँ तो लगता है कि मैं सार्थक हो गई, किंतु तुम्हें तकलीफ है तो मैं ही निकल जाती हूँ। लो, तुम तन-मन से हलका महसूस करो, मैं चली।''

और वह फुर्र से निकलकर उड़ गई। उड़ते-उड़ते वह बहुत ऊपर आकाश में चली गई, पर उसकी जीभ धरती पर लटक रही थी। खुशी को देखकर बेहद ताज्जुब हुआ कि यह क्या है? इसका मतलब क्या है? उसकी सौत ने कहा, ''मैं तुम्हें छोड़कर ऊपर उठ गई। इसका मतलब यह तो नहीं कि धरती पर मेरा कब्जा नहीं रहेगा। धरती और आसमान दोनों मेरे ही हैं। मेरा जब जी चाहेगा, मैं इस धरती पर आ सकती हूँ। लेकिन धरती की भीड़-भाड़ से मेरा मन दुःखी हो जाता है। मैं यहाँ लौटकर भी क्या करूँगी।''

वह फिर ऊपर उठी और कहा, ''मुझे हर हाल में जन्नत की खोज करनी है। जन्नत है कहाँ? जन्नत है कहाँ?'' कहते हुए वह शून्य में विलीन हो गई।

४ एम/१३८, बहादुरपुर हाउसिंग कॉलोनी
भूतनाथ रोड, पटना-८०००२६

क्या सीखा हमने

कविता

● सुकीर्ति भटनागर

मस्त पवन से क्या सीखा है,
क्या सीखा फूलों से?
दूर क्षितिज से क्या सीखा है,
क्या सीखा कूलों से?

बादल से क्या सीखा हमने,
क्या सीखा पानी से?
धरती से न सीखा कुछ भी,
न संतों की वाणी से॥

रैन-दिवस नित ही समझाते,
जन्म-मरण के भेद।
पर कब माना परिवर्तन को,
रहा घिरा निर्वेद॥

सूरज-चाँद, सितारे सारे,
ज्योति-कलश छलकाते।
आते-जाते पल चुपके से,
कितना कुछ कह जाते॥

पर क्या सीखा उनसे हमने,
क्या गुण है अपनाया?
मन की घोर कलुषिता कारण,
अंधकार ही पाया॥

क्या सीखा जीवों से हमने,
उनको सदा सताया।
वनस्पति, पेड़ों को हमने,
कष्ट सदा पहुँचाया॥

त्याग, अहिंसा, समता सारी,
कैसे कहो भुला दी।
कुविचारों की खोल पिटारी,
वसुधा पर फैला दी।
पुष्पबेल में काँटे ढूँढ़े,
मानस जलधि सुनामी।
धरती का अंतर ऊसर है,
समयचक्र अधोगामी॥

दिशा-दिशा में इस सृष्टि के,
छिपा तत्त्व जीवन का।
शुभ आशीष झरे कण-कण से,
मुक्तिमार्ग बंधन का॥

पर हमने तो अहंकारवश,
निज पहचान भुला दी।
क्या है, क्या होना था हमको,
यही बात बिसरा दी॥

४३२, अर्बन एस्टेट, फेज-१
पटियाला-१४७००२
दूरभाष : ८९४६७३३५५५

हम सतत परिवर्तनशील प्रवाह में हैं

मूल : **ग्युंटर ग्रास**
अनुवाद : **बालकृष्ण काबरा 'एतेश'**

एलिजाबेथ गैफनी द्वारा ग्युंटर ग्रास से जून १९९१ में 'द पेरिस रिव्यू' के लिए अंग्रेजी में लिए गए साक्षात्कार एवं वर्ष १९९९ में साहित्य का नोबेल पुरस्कार ग्रहण करने के समय दिए गए उनके भाषण 'टू बी कंटीन्यूड···' के आधार पर हिंदी में अनूदित है। जर्मनी के नोबेल विजेता साहित्यकार ग्युंटर ग्रास के साक्षात्कार और भाषण के अंश 'हम सतत परिवर्तनशील प्रवाह में हैं' यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं–

पहले उपन्यास के आकस्मिक अंत के साथ मैंने हार स्वीकार की। मेरे लेखक बनने का संबंध उस सामाजिक स्थिति से है, जिसमें मैं पला-बढ़ा। हमारा निम्न-मध्य-वर्ग परिवार था। हम दो कमरों के अपार्टमेंट में रहते थे। मेरी बहन और मेरे लिए अलग से कमरा नहीं था। यहाँ तक कि रहने के लिए ठीक से जगह भी नहीं। लिविंग रूम में दो खिड़कियों के बाद एक छोटा सा कोना था, जहाँ मेरी किताबें व अन्य चीजें—मेरे वाटर कलर्स आदि सब रखे गए थे। जिस चीज की भी जरूरत होती थी, उसके बारे में सोचना पड़ता था कि वह कहाँ पड़ी हुई है। मैंने शुरू से ही शोर के बीच पढ़ना सीख लिया था। बहुत छोटी उम्र से ही मैंने लिखना और ड्राइंग बनाना शुरू कर दिया था।

एक बच्चे के भीतर वह कौन सी जिद होती है, जो उसे उन्माद तक ले जाती है? जब मैं बारह वर्ष का था, मुझे लगा कि मैं कलाकार बनना चाहता हूँ। यह संयोग था कि द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो चुका था। उस समय मैं डैंसिंग के बाहरी इलाके में रहता था। किंतु मुझे पेशेवर विकास का पहला अवसर एक साल बाद मिला, जब मैंने हिटलर यूथ मैगजीन 'हिल्फ मिट!' (हाथ बँटाओ) में एक आकर्षक प्रस्ताव देखा। यह एक कहानी प्रतियोगिता थी पुरस्कारों सहित। मैंने शीघ्र ही अपना पहला उपन्यास लिखना शुरू कर दिया। अपनी माँ की पृष्ठभूमि से प्रभावित इस उपन्यास का शीर्षक 'द कशूबियंस' था। कशूबियन लोगों की संख्या वर्तमान में घट चुकी थी, अत: उसमें घटनाक्रम वर्तमान का न होकर तेरहवीं सदी के उस समय का है, जब कोई शासक नहीं था। एक भयावह काल, जहाँ प्रमुख मार्गों पर लुटेरों और डाकुओं का शासन था और न्याय के नाम पर कंगारू (गैरकानूनी) अदालतें थीं।

जैसा कि मुझे याद है, मैंने कशूबिया के भीतरी प्रदेशों की आर्थिक हालत की संक्षिप्त रूपरेखा देते हुए एक प्रतिशोध के साथ लूटमार और नरसंहार की घटनाओं को लेकर लिखना आरंभ किया। इसमें गला घोंटने, छुरा भोंकने, सलाखों से भेदने, गैर-कानूनी अदालतों द्वारा फाँसी पर लटकाने और प्राणदंड देने की इतनी घटनाएँ थीं कि पहले अध्याय के अंत तक सभी प्रमुख पात्र और अच्छी संख्या में छोटे पात्र मारे जा चुके थे या तो उन्हें दफनाया जा चुका था अथवा कौओं के खाने के लिए छोड़ दिया गया था। मेरी शैलीगत संवेदना ने मुझे इस बात की अनुमति नहीं दी कि मैं लाशों को प्रेतों में और उपन्यास को प्रेतकथा में बदल दूँ। अत: लेखन के आकस्मिक अंत के साथ मुझे हार स्वीकार करनी पड़ी और मैं नहीं लिख सका कि 'आगे जारी है... (टू बी कंटीन्यूड···)। बेशक हमेशा के लिए नहीं; किंतु नौसिखिए को अपना पहला सबक मिल चुका था कि अगली बार उसे अपने पात्रों के साथ थोड़ी नरमी बरतनी होगी।'

मैंने अपनी हर पुस्तक के तीन वर्जन लिखे

असफल उपन्यास के बाद मेरी पहली पुस्तक में कविताएँ और चित्र शामिल थे। कभी कल्पना में चित्र आते थे तो कभी शब्द झरने लगते थे। जब मैं २५ वर्ष का हुआ, मेरी स्थिति इस लायक थी कि टाइपराइटर खरीद सकूँ। मैंने अपनी दो उँगलियों से टाइपिंग शुरू की। 'द टिन ड्रम' का पहला वर्जन मैंने टाइपराइटर से पूरा किया। उम्र बढ़ने के साथ जब मैंने यह जाना कि मेरे साथी अब कंप्यूटर पर लिख रहे हैं तो मैं फिर से अपनी पुस्तकों का पहला वर्जन हाथ से लिखने लगा। अत: अब मैं अपनी पुस्तक का पहला वर्जन हाथ से लिखता हूँ, फिर दूसरा और तीसरा वर्जन टाइपराइटर पर पूरा करता हूँ। मैंने अपनी किसी भी पुस्तक को इसके तीन वर्जन लिखे बिना पूरा नहीं किया है। सामान्यत: चौथा वर्जन भी, कई सुधारों के साथ।

''मैं पहला वर्जन तेजी से लिख लेता हूँ। यदि उसमें कमी है, तो है। फिर मेरा दूसरा वर्जन सामान्यत: अधिक लंबा, विस्तृत और पूर्ण होता है। इसमें कमियाँ तो दूर हो जाती हैं, किंतु यह थोड़ा शुष्क होता

है। इसके बाद तीसरे वर्जन में मैं पहले वर्जन की सहजता और दूसरे वर्जन की विशिष्टता बनाए रखने का प्रयत्न करता हूँ। यह बहुत कठिन होता है। एक बात और कि अपना पहला वर्जन लिखते समय मैं एक दिन में पाँच से सात पृष्ठ लिखता हूँ, जबकि तीसरे वर्जन तक यह गति कम होकर तीन पृष्ठ रह जाती है। यह भी कि मैं रात में लेखन नहीं करता। मुझे रात में लिखने में विश्वास नहीं है, क्योंकि यह बड़ी आसानी से हो जाता है। जब सुबह मैं इसे पढ़ता हूँ तो यह पसंद नहीं आता। मुझे लेखन शुरू करने के लिए दिन का प्रकाश चाहिए। सुबह नौ से दस बजे के बीच देर तक मेरा नाश्ता होता है, पढ़ते और संगीत सुनते हुए। नाश्ते के बाद मैं काम शुरू करता हूँ और दोपहर कॉफी के लिए ब्रेक लेता हूँ। ब्रेक के बाद मैं शाम सात बजे तक उस दिन का काम पूरा करता हूँ। जब मैं किसी महाकाव्य जैसी बड़ी पुस्तक पर काम करता हूँ तो इसमें अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। सभी वर्जनों को पूरा करने में चार से पाँच साल लग जाते हैं। जब मैं थक जाता हूँ, मेरी किताब पूरी हो जाती है।'

कोलकाता : जहाँ शब्द और चित्र एक-दूसरे पर आरोपित हो गए

'चित्रकारी और लेखन मेरे काम के दो मुख्य अंग हैं, किंतु समय रहने पर मैं शिल्पकारी भी करता हूँ। मेरे लिए कला और लेखन में बड़े स्पष्ट रूप से 'आदान-प्रदान' का संबंध है। यह संबंध कभी सशक्त तो कभी कमजोर होता है। पिछले कुछ वर्षों में यह बहुत शक्तिशाली रहा। कोलकाता की पृष्ठभूमि पर आधारित 'शो यूवर टंग' इसका उदाहरण है। यह पुस्तक बिना चित्रकारी के अस्तित्व में नहीं आ पाती। कोलकाता की अविश्वसनीय गरीबी मुझे सतत ऐसी स्थितियों की ओर खींच ले जाती है, जहाँ भाषा की शक्ति कम हो जाती है और हमें शब्द नहीं मिल पाते। जब मैं वहाँ था, मुझे चित्रकारी से शब्द खोजने में फिर से सहायता मिली।

इस पुस्तक में कविताएँ केवल प्रिंट रूप में नहीं हैं, बल्कि चित्रों के ऊपर हाथ से भी लिखी गई हैं। दरअसल, कविता के कुछ तत्त्वों का संकेत या आभास चित्रों से मिला। अंतत: जब शब्द सूझने लगे तो मैं चित्रों के ऊपर लिखने लगा—शब्द और चित्र एक-दूसरे पर आरोपित हो गए। चित्रों पर लिखे शब्दों को यदि आप पढ़ सकते हैं तो अच्छा है, वह वहाँ पढ़े जाने के लिए हैं। तथापि, चित्रों में सामान्यत: मेरा आरंभिक ड्राफ्ट समाया होता है, जिसे फिर मैं टाइपराइटर से लिखता हूँ। इस पुस्तक को लिखना बहुत मुश्किल था। शायद इसलिए कि इसका विषय कोलकाता था। मैं वर्ष १९७५ में पहली बार कोलकाता गया था। 'शो योअर टंग' लिखना शुरू करने के ग्यारह वर्ष पहले। तब मैंने वहाँ कुछ ही दिन गुजारे। मैं स्तंभित हो गया। तभी मेरी इच्छा थी कि मैं वहाँ दोबारा जाऊँ, अधिक दिन रुकूँ, अधिक देखूँ और फिर लिखूँ। मैंने एशिया और अफ्रीका की यात्राएँ कीं, किंतु जब भी मैंने हांगकांग, मनीला या जकार्ता की मलिन बस्तियों को देखा, मुझे कोलकाता की हालत याद आई। मेरे ध्यान में ऐसी कोई दूसरी जगह नहीं, जहाँ विकसित और विकासशील देशों; दोनों की समस्याएँ एक साथ दीख पड़ीं।

अत: मैं फिर से कोलकाता गया और वहाँ मैं अपने भाषा प्रयोग की क्षमता खो बैठा। मैं एक शब्द भी नहीं लिख सका। इस समय चित्रकारी महत्त्वपूर्ण हो गई। कोलकाता के यथार्थ को कैद करने का यह दूसरा तरीका था। अंतत: चित्रों की सहायता से मैं फिर से गद्य लिखने में समर्थ हो गया, यह उसका पहला भाग था, निबंध के रूप में। फिर मैंने इसके तीसरे भाग पर काम किया, जिसमें बारह हिस्सों में एक लंबी कविता थी। यह कविता कोलकाता शहर के बारे में है। यदि आप गद्य, चित्र और कविता को एक साथ देखें तो उसमें कोलकाता एक-दूसरे के सापेक्ष होते हुए अलग-अलग रूप में है। तीनों की संरचना बहुत भिन्न है, किंतु उनके बीच एक संवाद चलता रहता है।

राजनीति निर्णायक शक्ति के रूप में कार्य करती है

लेखक केवल अपने भीतरी और बौद्धिक जीवन में ही नहीं, बल्कि दैनिक जीवन की प्रक्रिया में भी शामिल रहते हैं। लेखन, चित्रकारी और राजनीतिक सक्रियता—इन तीनों से मेरा अलग-अलग सरोकार है। सबकी अपनी एक गहराई है। मैं जिस समाज में रहता हूँ, उससे विशेष रूप से जुड़ा हुआ हूँ और उसका अभ्यस्त हूँ। मेरे लेखन और चित्रकारी दोनों में ही राजनीति अटल रूप से घुली-मिली है; चाहे मैं ऐसा चाहूँ या न चाहूँ।

वास्तव में मैं जो भी लिखता हूँ, उसमें राजनीति को शामिल करने की मेरी कोई योजना नहीं होती। होता यह है कि जब मैं किसी विषय को बार-बार कुरेदता हूँ, मुझे वह चीजें मिलती हैं, जिनकी इतिहास के द्वारा उपेक्षा की गई है। मैं कभी भी वह कहानी नहीं लिखना चाहूँगा, जो सीधे-सीधे और विशेष रूप से किसी राजनीतिक यथार्थ के बारे में हो, फिर भी इसमें राजनीति के नहीं आने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि यह हम सबके जीवन में एक बड़ी निर्णायक शक्ति के रूप में काम करती है। यह किसी-न-किसी तरीके से जीवन के हर पहलू में प्रवेश कर जाती है।

मुझे लगता है कि राजनीति को पार्टियों के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए। यह बहुत ही खतरनाक होगा।

साहित्य परिवर्तन उपस्थित करता है

'क्या साहित्य दुनिया को बदल सकता है।' इस विषय पर अनेक संगोष्ठियों और सम्मेलनों के आयोजन होते रहते हैं। मेरा विचार है कि साहित्य में परिवर्तन उपस्थित करने की शक्ति है। कला में भी यह शक्ति है। आधुनिक कला के परिणामस्वरूप हमने चीजों को देखने की आदतों को बदला है, वह भी उन तरीकों से, जिनके बारे में हम शायद ही जानते हैं। क्यूबिज्म जैसे आविष्कारों ने हमें दृष्टि की नई शक्तियाँ प्रदान की हैं। 'यूलिसिस' में जेम्स जॉयस द्वारा आंतरिक एकालाप की शुरुआत ने अस्तित्व के बारे में हमारी समझ की जटिलता को प्रभावित किया। यह भी कि साहित्य जिन परिवर्तनों को उपस्थित कर सकता है, उन्हें मापा नहीं जा सकता। एक पुस्तक और उसके पाठक के बीच में संवाद शांतिपूर्ण और अज्ञात होता है।

पुस्तकों ने किस हद तक लोगों को बदला? हमें इस विषय में ज्यादा कुछ पता नहीं है। मैं केवल यह कह सकता हूँ कि पुस्तकें मेरे लिए निर्णायक रही हैं। अपनी युवावस्था में, युद्ध के बाद अनेक पुस्तकों के बीच अल्बर्ट कैम्यू की छोटी पुस्तक 'द मिथ ऑफ सिसिफस' मेरे लिए महत्त्वपूर्ण रही। इसमें प्रसिद्ध मिथकीय नायक को यह सजा दी जाती है कि वह एक शिला को ढकेलते हुए पहाड़ के ऊपर तक पहुँचाए, किंतु उस शिला को तो बार-बार लुढ़ककर नीचे ही आना है, पारंपरिक रूप से एक सच्चा दुखद चरित्र मेरे लिए कैम्यू ने इसकी नई व्याख्या की थी कि यह उसके लिए सौभाग्यदायी है, शिला को पहाड़ पर ढकेलकर ले जाने का बार-बार असफल प्रयास वास्तव में उसके अस्तित्व का संतोषजनक कार्य है; वह दु:खी हो जाएगा यदि कोई उससे वह शिला छीनकर ले जाए। इसका मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा। मैं अंतिम लक्ष्य पर विश्वास नहीं करता, मैं यह नहीं सोचता कि शिला पहाड़ के शीर्ष पर टिक पाएगी। हम इस मिथक को मानवीय स्थिति का सकारात्मक चित्रण मान सकते हैं, भले ही यह जर्मन आदर्शवाद सहित सभी आदर्शवाद और हर विचारधारा का विरोध करता है। हर पश्चिमी विचारधारा किसी-न-किसी अंतिम लक्ष्य का विश्वास दिलाती है—एक सुखी, न्यायपूर्ण और शांतिपूर्ण समाज का। मैं इसमें विश्वास नहीं करता। हम सतत परिवर्तनशील प्रवाह में हैं। यह हो सकता है कि शिला हमेशा हमसे दूर फिसल जाती है, जिसे फिर से ऊपर ढकेलकर ले जाना चाहिए; हमें कुछ-न-कुछ करना ही चाहिए; वह शिला हमारी है।

इस दुनिया में पशु, पक्षी, मछलियाँ और कीट भी हैं

'द रैट', 'द फ्लाउंडर', 'फ्रॉम द डायरी ऑफ ए स्नेल', 'डॉग ईयर्स' आदि मेरी कई पुस्तकों के केंद्र में पशु हैं। इसका कुछ कारण भी है। मैंने हमेशा महसूस किया है कि हम मनुष्यों के बारे में बहुत अधिक बोलते हैं। यह दुनिया मनुष्यों से तो भरी पड़ी है, किंतु यहाँ पशुओं, पक्षियों, मछलियों और कीटों की भी भरमार है। हमसे पहले वह यहाँ मौजूद थे और आगे भी वह रहेंगे, तब भी जब ऐसा दिन आ जाए कि मनुष्य यहाँ न हों। उनमें और हममें एक अंतर है। हमारे म्यूजियमों में करोड़ों वर्ष रह चुके डायनासोर और अनेक जानवरों के कंकाल हैं। वे जब मरे तो उनकी मृत्यु बड़े ही साफ तरीके से हुई। कहीं भी विष नहीं। उनके कंकाल बहुत साफ हैं। हम यह देख सकते हैं। लेकिन ऐसा मनुष्यों के साथ नहीं होगा। जब हम मरेंगे तो जहर से भरी भयानक साँस होगी। यह कहना ठीक नहीं कि मनुष्य का मछलियों, पक्षियों, मवेशियों और हर जीवधारी पर प्रभुत्व है। हमने पृथ्वी पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया, पर इसके परिणाम अच्छे नहीं रहे।

११, सूर्या अपार्टमेंट
रिंग रोड, राणाप्रताप नगर,
नागपुर-४४००२२ (महा.)
दूरभाष : ९४२२८११६७१

दोहे

प्रेरक दोहे

● माणिक मृगेश

मात-पिता सम देवता, दूजा जग में नाहि।
वृद्धाश्रम में छोड़कर, काहे मंदिर जाहि॥

जीते-जी रोटी नहीं, मरने पर हरिद्वार।
ऐसे ही ज्यादा मिले, हमको श्रवण कुमार॥

बच्चा जब पैदा हुआ, था वह बिल्कुल नग्न।
समाज ने चिपका दिए, जाति-धर्म के चिह्न॥

भ्रष्ट-भ्रष्ट चिल्लाहिं जो, वे भी नहिं कम भ्रष्ट।
निर्भ्रष्ट खुद होईए, जग होवे निर्भ्रष्ट॥

ज्यों-ज्यों मानव ने किया प्रकृति से खिलवाड़।
भूकंप सुनामी प्रलय, और कहीं पर बाढ़॥

शिक्षा का जिस दिन जुड़ा, व्यापारी से तार।
उसी दिवस से हो गया, इसका बँटाधार॥

सर्वाधिक उसकी चले, इस जग में दुकान।
ग्राहक को सम्मान दे, जो बेचे सामान॥

बच्चा आया गर्भ में, जिस क्षण इस संसार।
उसी वक्त से सोच का, पैमाना तैयार॥

खान-पान परिधान हैं, बिल्कुल निजी पसंद।
जाति-धर्म औ बुद्धि से न कोई संबंध॥

हर विद्यार्थी को शिक्षा, सुविधा एक समान।
आरक्षण का एकमात्र, है सरल समाधान॥

२२-बी, 'मृगेशायन', मनोरथ सोसाइटी, न्यू समा रोड, वडोदरा (गुजरात)
दूरभाष : ९९०९०१९९५१

यात्रा-संस्मरण

महाकाल की नगरी उज्जयिनी में दो दिन

● प्रेमपाल शर्मा

उज्जयिनी में कलकल प्रवाहित शिप्रा के पावन तट पर सिंहस्थ महाकुंभ-२०१६ के अंतिम शाही स्नान के साथ कल इस महापर्व का समापन हो रहा है। सो २० मई, २०१६ को हम इंदौर इंटरसिटी से यात्रा पर निकल पड़े हैं। हमारे यात्री-दल में मेरे अभिन्न मित्र आनंद शर्मा, जीतभाई और उनकी माताजी व मौसी, मेरी श्रीमतीजी सहित छह लोग हैं। परंतु सराय रोहिल्ला स्टेशन पर चौ. वीरेंद्र सिंह और उनकी श्रीमतीजी, भाई विनोद सिंह और उनकी माताजी, बुराड़ी से जीतभाई के जानकार शर्मा दंपती भी हमारे साथ जुड़ गए। ठीक ९.३५ पर गाड़ी अपनी मंजिल की ओर सरकने लगी। भीषण गरमी पड़ रही है, परंतु कुंभ-स्नान के उछाह में इसकी भीषणता का अहसास नहीं हो रहा है। शिप्रा में स्नान और महाकाल के दर्शन की हर्ष-उमंगें हिलोरें मार रही हैं। गाड़ी चीखती-चिल्लाती दौड़ती चली जा रही है। रात्रि के ग्यारह बज रहे हैं, सो सोने का उपक्रम किया। पूरी रात गाड़ी राजस्थान की भूमि को रौंदती-नापती रही और हम लोग रुकते-चलते प्रात: सवा नौ बजे नागदा जं. पर पहुँच गए। यहाँ गाड़ी में इंजन आगे से खोलकर पीछे लगाया जाता है। जिस दिशा में अब तक गाड़ी आ रही थी, यह रूट वडोदरा को जाता है, यहाँ नागदा से गाड़ी ठीक पूरब दिशा में उज्जैन की ओर लौटती है।

गाड़ी काफी देर खड़ी रही, यहाँ एक स्वयंसेवी संस्था के लोग पूरी गाड़ी में आगे-पीछे दौड़-दौड़कर यात्रियों को पानी पिला रहे हैं। अब गाड़ी आगे बढ़ी। लेकिन यह क्या, अब तो गाड़ी कहीं भी खड़ी हो जा रही है। नागदा से उज्जैन मात्र ५६ कि.मी. दूर है। रबी की फसल कटने के बाद खेत खाली पड़े हैं, गहरी काली मिट्टी को देखकर लगता है, जैसे मिट्टी भीगी हुई हो! पता चला है, इस ट्रैक पर पाँच-सात गाड़ियाँ आगे-पीछे चल रही हैं, कहीं-कहीं दो गाड़ियाँ समानांतर खड़ी हैं। मेला स्पेशल गाड़ियों को प्राथमिकता दी जा रही है, क्योंकि ये गाड़ियाँ ही मेले की भीड़ को बराबर हल्का कर रही हैं। सामने से आनेवाली सब रेलगाड़ियाँ तीर्थयात्रियों से बेतरह भरी हैं, लोग पायदानों पर भी लटके-बैठे हैं। परंतु यहाँ छोटे-छोटे स्टेशनों पर भी पेयजल की व्यवस्था है। जहाँ गाँव और बसावट है, वहाँ के लोग भी बाल्टियाँ ढो-ढोकर ला रहे हैं और प्यासे यात्रियों को पानी पिलाने का पुण्य कमा रहे हैं। यात्रियों की बोतल जल्दी भरे और पानी बेकार न गिरे, इसके लिए प्लास्टिक के कीप इनके पास हैं। पानी-सेवा करनेवाले बालक-बूढ़े-जवान सभी हैं। छोटे से स्टेशन 'उन्हेल' पर आधा घंटे से गाड़ी खड़ी है। दोपहर के बारह बज रहे हैं। लगता है, और भी लंबा समय लगनेवाला है, तब तक हम आपको मोक्षदायिनी उज्जयिनी के बारे में कुछ बताते हैं।

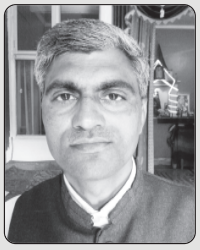

सुपरिचित लेखक-संपादक। बुलंदशहर (उ.प्र.) के मीरपुर-जरारा गाँव में जन्म। देसी चिकित्सा लेखन में विशेष दक्षता। 'जीवनोपयोगी जड़ी-बूटियाँ', 'स्वास्थ्य के रखवाले, शाक-सब्जी-मसाले', 'सचित्र जीवनोपयोगी पेड़-पौधे', 'घर का डॉक्टर', 'स्वस्थ कैसे रहें?' तथा 'स्वदेशी चिकित्सा सार' कृतियाँ चर्चित। पत्र-पत्रिकाओं में विविध लेख प्रकाशित। श्रीनाथद्वारा (राज.) की सुप्रसिद्ध संस्था 'साहित्य मंडल' द्वारा 'संपादक-रत्न' की मानद उपाधि। संप्रति 'सवेरा न्यूज' (साप्ताहिक) का संपादन एवं आयुर्वेद पर स्वतंत्र लेखन।

'उज्जयिनी' का शाब्दिक अर्थ है—उत्+जयनि, अर्थात् 'उत्कर्ष के साथ विजय करनेवाली'। इसे अवंति और अवंतिपुर भी कहा जाता है। परंतु त्रिपुरी की शासक जाति पर विजय के फलस्वरूप लोगों ने इसका नाम 'उज्जयिनी' रखा। इसके पहले छह कल्पों में इसके छह नाम हो चुके हैं। प्रथम कल्प में 'स्वर्णशृंगा', द्वितीय कल्प में 'कुशस्थली', तृतीय में 'अवंतिका', चौथे कल्प में 'अमरावती', पाँचवें में 'चूड़ामणि' और छठवें में 'पदस्वती' नाम से पुकारा गया। कल्पों में नाम बदलते रहने के कारण विद्वान् लोगों द्वारा इसे 'प्रतिकल्पा' भी कहा जाता है। यह पृथ्वी का नाभि-स्थल कहा गया है। ज्योतिष के देशांतर की शून्य रेखा भी यहीं से शुरू होती है। देश के आजाद होने पर उस समय के उद्भट विद्वान् पं. सूर्यनारायण व्यास ने उज्जयिनी को सबसे सुरक्षित नगर बताते हुए इसे देश की राजधानी बनाने का सुझाव किया था। उज्जैन को मंगल ग्रह की जन्मस्थली होने का गौरव प्राप्त है। यह सात मोक्षदायिनी पुरियों में से एक है। बारह ज्योतिर्लिंगों में से एक महाकाल ज्योतिर्लिंग के रूप में भगवान् भूतनाथ साक्षात् विराजमान हैं। देश के ५१ शक्तिपीठों में एक हरसिद्धि शक्तिपीठ यहाँ विराजित है, यहाँ सती की कोहनी का पात हुआ था। इतना ही नहीं, द्वापर में यह नगरी भगवान् श्रीकृष्ण और बलदाऊ की शिक्षा स्थली रही, जहाँ शिप्रा के तट पर ऋषि सांदीपनि के आश्रम में भगवान् ने अक्षर-ज्ञान प्राप्त किया। धरा पर गिरी अमृत की चार बूँदों में से एक ने इस स्थान को अमर कर दिया।

न्याय की इस धरा पर विक्रमादित्य जैसा दूसरा शासक आज तक नहीं हुआ। उनके राज्यकाल में उज्जयिनी भारत की राजधानी रही। कविकुलगुरु कालिदास की यह कर्मस्थली है। सम्राट् बिंदुसार के शासन काल तथा सम्राट् अशोक की न्यायप्रियता की साक्षी रही है यह नगरी। भगवान् महावीर भी धर्म-प्रवर्तन के लिए यहाँ आए; बौद्ध धर्म ने अपनी ऊँचाइयों को यहीं प्राप्त किया। पवित्र नदी शिप्रा इसे तीन ओर से घेरे

हुए है। उज्जैन का अतीत अत्यंत उज्ज्वल और वैभव-संपन्न रहा है। भर्तृहरि के 'शतक त्रय' ने यहीं पर आकार लिया; कालिदास की विश्वप्रसिद्ध रचनाएँ 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'रघुवंश' और 'मेघदूत' यहीं पर जनमीं; बाणभट्ट की 'कादंबरी', चारूदत्त का 'मृच्छकटिक' और कल्हण की 'राजतरंगिणी' जैसे ग्रंथरत्नों ने यहीं जीवन धारण किया। इस नगरी का माहात्म्य बताते हुए 'स्कंद पुराण' में कहा गया है—

महाकालः सरिच्छिप्रा गतिश्चैव सुनिर्मला।
उज्जयिन्यां विशालाक्षि वासः कस्य न रोचयेत्॥
स्नानं कृत्वा नरो यस्तु महानद्यां हि दुर्लभम्।
महाकालं नमस्कृत्य नरो मृत्युं न शोचयेत्।
मृतः कीटः पतङ्गो वा रुद्रस्यानुचरो भवेत्॥

अर्थात् जहाँ भगवान् महाकाल हैं, शिप्रा नदी है और जहाँ सुनिर्मल गति प्राप्त होती है, ऐसी उज्जयिनी में रहना भला किसे अच्छा नहीं लगेगा! जिस पवित्र शिप्रा में स्नान करना सौभाग्य की बात है तथा महाकाल को प्रणाम-नमन कर लेने पर मृत्यु की चिंता नहीं सताती है। कीट-पतंगा भी मरने पर रुद्र का अनुचर होता है, ऐसी उज्जयिनी की महानता के क्या कहने!

विलंब से ही सही, गाड़ी अब उज्जैन की सीमा में प्रवेश कर रही है। अपराह्न के ३.३० बज रहे हैं। दूर से ही मेले के टैंट-पंडाल दिखाई पड़ रहे हैं। पटरी के दोनों ओर तीर्थयात्रियों का रेला दीख पड़ रहा है। शिप्रा के पुल पर उतरना तय हुआ था, सो आगे-पीछे लदर-पदर जैसे-तैसे उतर पड़े। यहाँ रेलवे पुल के नीचे सबको इकट्ठा होने में काफी समय लगा। हमारी बोगी के दो सहयात्री तथाकथित भाई-बहन भी मान न मान, मैं तेरा मेहमान की तरह हमारे साथ लग गए। अब यह दल पंद्रह यात्रियों का हो गया है। आनंदजी का कहना है कि स्नान 'रामघाट' पर ही करेंगे, सो तीर्थयात्रियों की भीड़ के साथ शिप्रा के किनारे-किनारे रामघाट की ओर बढ़ने लगे। कुंभ स्नान के लिए शिप्रा पर लगभग आठ किलोमीटर लंबे कंक्रीट के नए पक्के घाट बनाए गए हैं। कपड़ा बदलने, स्नान करने की सब घाटों पर अच्छी व्यवस्था है। हमारे दल के कुछ यात्री चाहते हैं कि यहीं स्नान कर लिया जाए, पर पुराने अनुभवी यात्री कहते हैं कि स्नान रामघाट पर ही करेंगे। अतः धीरे-धीरे रामघाट की ओर बढ़ रहे हैं, लू के थपेड़े तो यहाँ नहीं लग रहे हैं, पर गरमी तीखी है। जहाँ भी वृक्षों और इमारतों की छाया है, वहाँ तीर्थयात्री अँटे पड़े हैं। सब दिशाओं में सब रास्तों पर बेशुमार यात्री आ रहे हैं, जा रहे हैं। मार्गों के किनारे जगह-जगह सरकारी प्याऊ लगे हैं, पर आज इनमें पानी गायब है। सफाईकर्मी मुस्तैदी से अपना काम कर रहे हैं। जब तक हम रामघाट पहुँचें, तब तक आपको शिप्रा के माहात्म्य के बारे में बताते हैं।

पावन शिप्रा किसी पर्वत या गोमुख से नहीं, धरा के गर्भ यानी शिप्र सरोवर से निकलकर धरातल पर उत्तर दिशा की ओर प्रवाहित होती है, इसलिए यह 'लोकसरिता' है। अपने आराध्य महाकाल का युगों-युगों से अभिषेक करती हुई यह हिंदू जनमानस की आस्था का केंद्र बन गई है। हर बारह वर्ष के अंतराल पर यहाँ आस्था का महामेला सिंहस्थ कुंभ सजता है। पुराणों में इसके चार नाम उल्लिखित हैं—शिप्रा, पापघ्नी, ज्वरघ्नी और अमृतसंभवा। शिप्रा का उल्लेख तो यजुर्वेद में भी आया है। 'शिप्रेः अवेः पत्रः' कहकर वैदिक ऋषियों ने इसका स्मरण किया है। महाभारत, भागवतपुराण, ब्रह्मपुराण, अग्निपुराण, शिवपुराण, लिंगपुराण तथा वामनपुराण में भी शिप्रा की महिमा गाई गई है। महर्षि वसिष्ठ एवं महाकवि कालिदास ने भी शिप्रा की स्तुति की है। शिप्रा की उत्पत्ति के संबंध में कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं।

एक किंवदंती के अनुसार एक बार उज्जयिनी में अत्रि ऋषि ने अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाए कई हजार साल तक तपस्या की। तपस्या पूरी होने पर जब उन्होंने अपने नेत्र खोले तो क्या देखा कि उनके शरीर से प्रकाश की दो धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं। एक धारा आकाश की ओर गई, जिसने चंद्रमा का रूप धारण कर लिया और दूसरी ने जमीन पर शिप्रा नदी का आकार पाया। इसी से इसे 'सोमवती' भी कहा जाता है। एक दूसरी कथा के अनुसार एक बार आदिदेव शिव ने किसी कारणवश विष्णुजी की उँगली काट दी। रक्त की धार प्रवाहित होकर शिप्रा नदी बन गई। विष्णुजी से उत्पत्ति होने के कारण यह प्रेत आदि से मोक्ष दिलानेवाली, स्नान करनेवाले श्रद्धालुओं की मनोवांक्षा पूरी करनेवाली कही गई है। इसकी उत्पत्ति विषयक और भी कथाएँ जनमानस में प्रचलित हैं। कुंभ का शाही स्नान इसके प्रसिद्ध रामघाट पर होता है। पवित्र शिप्रा के किनारे-किनारे २८ तीर्थ हैं, इनमें कर्कराज, नृसिंहतीर्थ, पिशाच मुक्ति, गंधर्वतीर्थ, केदारतीर्थ, सोमतीर्थ, चक्रतीर्थ, कालभैरवतीर्थ, मंगलतीर्थ और शक्तिभेद तीर्थ प्रमुख हैं।

आगे-पीछे ही सही, चलते-चलते हम लोग रामघाट पर आ पहुँचे। जन-सैलाब को देखकर हमारे और भी पसीने छूटने लगे। चूँकि आज अंतिम शाही स्नान है, सो पूरे घाट पर तिल धरने को भी जगह नहीं है। पुलिस के जवान तथा व्यवस्था में लगे वॉलंटियर तीर्थयात्रियों को एक स्थान पर ठहरने नहीं देते, बराबर आगे बढ़ाते जाते हैं, घाट से बाहर निकलनेवालों के लिए रास्ता बना रहे हैं। हम अपना सामान और कपड़े कहाँ रखें, पूरा घाट भीगा तथा हल्की कीचड़ से पच-पच हो रहा है। सूखे स्थान की तलाश में थोड़ा और आगे बढ़े। डर यही है कि इस भीड़ में कोई बिछुड़ न जाए। लाउडस्पीकर पर बिछुड़े लोगों की बराबर उद्घोषणा हो रही है। सामने उस पार जूना अखाड़े का भवन दिखाई पड़ रहा है। आखिर इसी के सामने घाट पर चबूतरेनुमा बने छोटे से मंदिर के स्थान पर अपना सामान जमा दिया। महिलाएँ पहले स्नान करने गईं। कुछ पुरुष भी स्नान कर आए। इनके लौटने पर मैं, जीतभाई, आनंदजी, विनोदजी स्नान करने गए। घाट पर स्नानार्थियों के ठट्ट के ठट्ट खड़े हैं, पानी में घुसने के लिए जगह बनानी पड़ रही है। पानी के अंदर सीढ़ियाँ बनी हैं, प्रशासन ने एक सीमा के अंदर पानी की बाड़बंदी कर दी है। वालंटियर उससे आगे यात्रियों को जाने नहीं देते, बराबर वहाँ से हटाते रहते हैं। पानी तो ठंडा ही है। सुना है, इन दिनों शिप्रा में पानी नहीं रहता, यह तो म.प्र. सरकार द्वारा कुंभ स्नान के लिए नर्मदा का जल इसमें

लाया गया है। जगह-जगह पानी को साफ करनेवाले यंत्र लगे हैं। इस पार से उस पार जाने के लिए कितने सारे पंटून पुल बना दिए गए हैं, कोई असुविधा नहीं है। मैंने शिप्रा में डुबकी लगाई—पूर्वजों के नाम की, माता-पिता के नाम की, परिवार जनों के नाम की, मित्रों तथा सुहृदों के नाम की और अंत में अपने सभी भूले-बिसरे बंधु-बांधवों के लिए भी। जहाँ हम स्नान कर रहे हैं, यहाँ एक ओर धर्मराज चित्रगुप्त मंदिर, पिशाच मुक्तेश्वर महादेव तथा और कई छोटे-छोटे मंदिर हैं। बड़ी गरमी लग रही थी, खूब स्नान किया, तन-मन दोनों शीतल हो गए। यह सोचकर ही रोमांच हो आया कि कई महीनों से शिप्रा में कुंभ-स्नान की जो साध लिये बैठे थे, आज पूरी हो गई।

यहाँ घाट पर तीखी धूप लग रही है। स्नान तो हो ही गया, सो घाट से बाहर की ओर निकल पड़े। अब एक ठिकाने की दरकार है। सभी के अपने-अपने दावे थे कि मैं अपने फलाने परिचित के यहाँ चला जाऊँगा, कि आश्रम में चला जाऊँगा। लेकिन अब उनमें से किसी का भी फोन पर संपर्क नहीं हो पा रहा है। मेरे एक पाठक बंधु ने भी मुझे अपने यहाँ आकर ठहरने का आग्रह किया था, परंतु मैं बड़े धर्मसंकट में हूँ, पंद्रह लोगों का दल लेकर किसी के यहाँ कैसे जा सकता हूँ! धीरे-धीरे चलते नहीं, घिसटते हुए आखिर नृसिंह घाट तक आ गए हैं। सब लोग थकावट और भूख से बेहाल हैं। यहीं शिप्रा के बाएँ तट पर क्षत्रिय सभा की एक धर्मशाला निर्माणाधीन है, विशाल प्रांगण में यात्रियों के विश्राम के लिए टैंट में दरिया बिछी हैं। सो इन्हीं दरियों पर पसर गए। धर्मशाला के दूसरे सिरे पर भंडारा भी चल रहा है, सो सब लोग भोजन करने चले गए, आंनदजी सामान के पास रह गए। स्वयं थाली उठाकर उसमें खाना लिया। अब खाने में पूरी, चावल तथा तरीदार सब्जी ही बची है। भोजन का स्वाद तो भूख में ही आता है। यह भोजन ही परम स्वादु लग रहा है। भोजन कर थाली धोकर यथास्थान रख पानी पिया। महाकाल की नगरी में किसी चीज का अभाव नहीं। सबके बाद में आनंद शर्मा भोजन करने गए। फिर सब लोगों ने लंबे होकर कुछ देर आराम किया।

पावन शिप्रा पर सिंहस्थ महाकुंभ, उज्जैन

ठौर-ठिकाने की समस्या अब भी बरकरार है। कोई भी दल को छोड़कर जाने को तैयार नहीं। आखिर आनंद शर्माजी ने अपने गुरु जूनागढ़ अखाड़े के नागाबाबा अगस्त्य गिरीजी को फोन किया। उन्हें अपनी समस्या बताई। नागा अखाड़े में दिक्कत महिलाओं को लेकर है, वहाँ महिलाओं का रहना वर्जित होता है। कुछ देर बाद ही अगस्त्य गिरीजी का फोन आ गया कि आ जाओ, सबकी व्यवस्था हो जाएगी। चूँकि स्थान के बारे में पता नहीं था, मेला विशाल क्षेत्र में फैला है। नागा डेरे का पता पूछते-चलते पैर जवाब दे गए, ऊपर से आनंद भाईजी विदाउट ब्रेक ठहरे, ज्यादातर लोग पिछड़ गए, मैं और मेरी श्रीमती ही आनंदजी के साथ लग पाए। बाकी लोग निराश हो नृसिंह घाट के किनारे बैठ गए, जबकि इसके ठीक सामने ही जूनागढ़ नागा अखाड़ा का पंडाल लगा है। पूरे चार-पाँच किलोमीटर का चक्कर लग गया। जिस स्थान से हम चले थे, यह अखाड़ा तो इसके ठीक सामने शिप्रा के इस पार ही स्थित है। खैर, सब लोगों ने नागा अखाड़े में आश्रय पाया।

नागाबाबा गिरीजी ने पूरा एक टैंट खाली करवाकर हमारे हवाले कर दिया। इसके पीछे शौचालय तथा स्नान आदि की व्यवस्था है। बाईं ओर रसोई में खाना तैयार हो रहा है। सब लोगों ने हाथ-मुँह धोकर आश्वस्ति की साँस ली। पंडाल के बिल्कुल सामने, सड़क के किनारे धूना रमा हुआ है, यहाँ एक युवा नागाबाबाजी दिगंबर अवस्था में तीर्थयात्रियों को पीठ पर कपड़े का कौड़ा मारकर आशीर्वाद तथा धूने की भभूत का प्रसाद दे रहे हैं। कुंभपर्व ही वह दुर्लभ अवसर है, जब इन महा तपस्वी, कठोर साधना करनेवाले नागा साधुओं के दर्शन हो पाते हैं, बाकी दिनों में तो इन्हें ढूँढ़ना भी मुश्किल होता है। नागा बाबा भी कुंभ के अवसर पर विभिन्न अखाड़ों तथा साधना-स्थलों से आकर गृहस्थ-दर्शनार्थियों, तीर्थयात्रियों को आशीर्वाद से लाद देते हैं; इनका आशीष पाना अपने आप में बड़े सौभाग्य की बात होती है। अपनी कठोर साधना से ये अपने तन और मन पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। इन्हें सांसारिक चीजों में कोई रुचि नहीं होती। इस बार देश के तेरह अखाड़े तो इस महाकुंभ में आए ही हैं, एक चौदहवाँ 'किन्नर-अखाड़ा' भी पहली बार शामिल हुआ है। किन्नरों की महामंडलेश्वर लक्ष्मीजी इसका नेतृत्व कर रही हैं। हमारा सौभाग्य ऐसा कि दो दिन हमें नागा बाबाओं से बातचीत करने, उनके चरणों में बैठने, नागा रसोई का प्रसाद पाने का पुण्य प्राप्त हुआ।

रात्रि को भोजन के बाद हम चार जन मेला की शोभा देखने निकल गए। नृसिंह घाट से लेकर रामघाट तक विभिन्न नागा अखाड़ों के पंडाल लगे हैं। देर रात्रि को भी यात्रियों की चहल-पहल और भीड़ में कोई कमी नहीं आई है। हम शिप्रा पुल से इसके किनारे-किनारे टहलते हुए घाटों की शोभा देखते हुए लौट रहे हैं। रंग-बिरंगी लड़ियाँ और फुहारों के बीच लकदक रोशनी अलौकिक दृश्य उपस्थित कर रही है। अब भी लोग स्नान कर रहे हैं। घाटों पर पुलिसकर्मी, वालंटियर तथा सफाईकर्मी मुस्तैद खड़े हैं। पूरा मेला क्षेत्र सी.सी.टी.वी. की निगरानी में है। अँधेरे को मार भगा दिया गया है, घाटों के किनारे ही हजारों तीर्थयात्री मीठी नींद ले रहे हैं। शिप्रा के तट पर वास, यहीं स्नान, यहीं पर पूजन-ध्यान,

धन्य हैं ये तीर्थयात्री! रात्रि में बड़ी तेज हवा चल रही है, जो जैसे लेट गया, वैसे ही नींद ने धर दबोचा। हम भी जाकर लेट गए। सच में बड़ी मीठी नींद में बेसुध था कि प्रात: साढ़े तीन बजे जीतभाई ने जगा दिया कि प्रात: चार बजे महाकाल के दर्शन करने हैं। सब लोग झटपट तैयार हो गए। एक पैर से विक्लांग अखाड़े के एक युवा बाबाजी हमें दर्शन कराने के लिए आगे-आगे चल पड़े। बैसाखी के सहारे वे शॉर्ट रास्ते से तेज-तेज चले जा रहे हैं, एक-दो यात्री ही उनके साथ लग पाता है, आगे ठहरकर वे बाकी लोगों के पहुँचने का इंतजार करते हैं, सब के आते ही पुन: उसी गति से चल पड़ते हैं। आखिर मंदिर पर पहुँच महाकालेश्वर के दर्शनार्थ लगी कतारों में पंक्तिबद्ध हो गए। इतने प्रात: भी भारी भीड़ है, देश के कोने-कोने से लोग आए हुए हैं। पुलिस माइक पर पंक्ति को आगे बढ़ाने, धक्का-मुक्की न करने, बुजुर्गों तथा बच्चों का अपने आगे रखने की सलाह जारी कर रही है। पंक्ति के बीच-बीच में भी पुलिसवाले खड़े हैं। भीड़ को नियंत्रित करने के लिए रास्ते को काफी घुमावदार बना दिया गया है, इससे पंक्तियाँ निरंतर चलती रहती हैं। पंक्तिबद्ध आगे बढ़ते हुए हम आपको महाकालेश्वर के माहात्म्य के बारे में बताते चलते हैं।

लोक मान्यता है कि महाकाल ज्योतिर्लिंग स्वयंभू आवेष्टित है। इसकी उत्पत्ति विषयक एक कथा स्कंद पुराण में आती है, जिसमें कहा गया है कि पुराकाल में उज्जयिनी के राजा चंद्रसेन शिव के परम भक्त और उपासक थे। इन्हीं के नगर में श्रीकर नाम का एक गोप बालक भी रहता था। राजा चंद्रसेन की भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीमणिभद्र ने उन्हें एक मणि भेंट की। मणि का चमत्कार ऐसा था कि उसके समक्ष उच्चारण करने मात्र से मनोवांछित वस्तु प्राप्त हो जाया करती थी। आसपास के अन्य राजा अब इस मणिधारी चंद्रसेन से भारी ईर्ष्या करने लगे। मणि को छीनने के इरादे से उन्होंने संगठित होकर कई बार उज्जयिनी पर चढ़ाई की। मणि के लिए एक के बाद एक युद्ध हो रहे थे तो इस स्थिति से दु:खी होकर राजा चंद्रसेन भगवान् भोलेनाथ की आराधना करने लगे। इसी समय विधवा ग्वालिन तथा उसका एक गोप बालक उधर आ निकले। राजा द्वारा किए जा रहे शिव-पूजन को वह बालक बड़े कौतुक और श्रद्धाभाव से देखता रहा। बालक जल्दी ही बड़ों का अनुकरण करने लग जाते हैं, सो घर जाकर बालक ने एक पत्थर उठा उसे शिवलिंग मानकर भूमि पर स्थापित कर दिया। उस पत्थर रूपी शिव को श्रद्धाभाव से स्नान कराकर शिव-उपासना में तल्लीन हो गया।

जब बार-बार पुकारने पर भी बालक भोजन के लिए नहीं आया, तो काफी विलंब जानकर ग्वालिन उसे बुलाने आई। कई बार पुकारने पर भी बालक हिला तक नहीं, तब उसने झुँझलाकर उस पत्थर रूपी शिव को उठाकर एक ओर फेंक दिया। जब बालक का ध्यान टूटा तो यह सब देखकर वह जार-जार रोने लगा, माँ की पुचकार और समझाने का भी उस पर कोई असर न हुआ, बल्कि रोते-रोते बालक बेहोश हो गया। लंबी मूर्च्छा के बाद जब उसे होश आया तो उसने अपने आपको एक शिवालय में पाया, जहाँ पर मणि खचित स्तंभ थे और दरवाजे स्वर्ण के। बालक ने उठकर शिवलिंग को प्रणाम किया और देखा कि मंदिर के समीपवाले भवन में रत्नाभूषणों से अलंकृत उसकी माँ सोई हुई है। उसने झटपट माँ को जगाया, यह सब देख माँ भी विस्मय-विमुग्ध हो गई। आनन-फानन में यह समाचार पूरी उज्जयिनी में फैल गया। यह घटना सुनकर राजा चंद्रसेन भी शिवालय में आए और ऐसा चमत्कार हुआ कि हमलावर सब राजाओं के मन ही बदल गए। सब के हृदय में भक्तिभाव हिलोरें लेने लगा। उसी समय भगवान् भोलेनाथ प्रकट हुए, उनके साथ वीर हनुमान भी थे। करुणार्द्र हो पवनपुत्र बोले, 'हे गोप बालक! तुम्हारी भक्ति निश्छल और अनन्य है, तुम्हारी ही आठवीं पीढ़ी में श्रीहरि का कृष्ण के रूप में अवतार होगा और तुम श्रीकर के नाम से प्रसिद्ध होगे, ऐसा मेरा आशीर्वाद है।' इतना कहकर पवनपुत्र अंतर्धान हो गए। बालक की प्रार्थना पर भगवान् भूतेश्वर उसके द्वारा स्थापित शिवलिंग में विराजमान हो गए, और उज्जयिनी में महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग के रूप में प्रसिद्ध हुए। इस ज्योतिर्लिंग मंदिर का बराबर जीर्णोद्धार होता रहा। वर्तमान में सामने जो महाकालेश्वर मंदिर दिखाई पड़ रहा है, इसका नवनिर्माण लगभग २७६ वर्ष पूर्व राणोजी शिंदे के दीवान बाबा रामचंद शेणवी द्वारा कराया गया था। मंदिर में प्रतिष्ठित महाकाल की प्रतिमा दक्षिणमुखी है। आजकल इस मंदिर की देखभाल महाकाल मंदिर समिति कर रही है।

मंदिर में वर्ष भर में कई उत्सव मनाए जाते हैं। प्रात: चार बजे भगवान् महाकाल की भस्म आरती होती है, इसी भस्म आरती में शामिल होने के लिए हम सब आगे बढ़ रहे हैं। पूरा एक बड़ा हॉल घूमने के बाद अब सीढ़ियाँ कुछ नीचे उतर रही हैं। महाकाल ज्योतिर्लिंग नीचे गर्भगृह में स्थापित है। मंदिर प्रशासन द्वारा ज्योतिर्लिंग दर्शन की व्यवस्था बाहर, यानी थोड़ा दूर से कर दी गई है, एक बार में सैकड़ों तीर्थयात्री दर्शन करते चलते हैं। इस समय पूरे दर्शन नहीं, झलक दर्शन हो रहे हैं। महाकाल की झलक पाते ही मस्तक स्वत: नत हो गया। होंठ बुदबुदा उठे—कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं···हृदयारविंदे भवं भवानि सहितं नमामि। हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए आगे बढ़ गया हूँ। सभी लोगों ने इसी प्रकार दर्शन किए।

दल के सब लोग दर्शन कर गर्भगृह से बाहर आ गए। महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग के ठीक ऊपर श्रीओंकारेश्वर महादेव मंदिर अपने कलात्मक नक्काशीदार खंभों के कारण आकर्षण का केंद्र है। यहाँ दर्शन करने के बाद सब लोग मंदिर के विशाल आँगन में एक ओर बैठ गए। मैं देख रहा हूँ, मेरे दाहिनी ओर पंडित सूर्यनारायण व्यास अतिथि भवन स्थित है। ओंकारेश्वर मंदिर के लगभग सामने वटवृक्ष के नीचे प्रसाद एवं दान का काउंटर है। बाईं ओर महाकालेश्वर का विशाल भवन सिर उठाए खड़ा है। वालंटियर तथा पुलिस के सिपाही यहाँ भी तीर्थयात्रियों को ठहरने नहीं दे रहे हैं, बैठे हुए सब लोगों का एक फोटो खींचकर हम लोग उठ खड़े हुए और भोलेनाथ को पुन: प्रणाम कर बाबाजी के पीछे-पीछे डेरे की ओर लौट पड़े। हम चार लोग ही बाबाजी के साथ लगते हुए डेरे तक पहुँच पाए, बाकी तो शिप्रा में स्नान करने लगे। जब वे लौटकर आए तो मैं, मेरी श्रीमतीजी, चौधरी साहब और उनकी श्रीमतीजी नृसिंह घाट पर स्नान करने गए। सूर्योदय हो रहा है, शिप्रा के जल से बालरवि को

अंजलि से अर्घ्य दिया। जीभर स्नान किया। प्रात: का मौसम बड़ा सुहावना हो रहा है। हाँ, लौटते में एक चीज अखर रही है, रात्रि में जो तीर्थयात्री शिप्रा तट पर विश्राम करते हैं, वे शौचादि से यहीं निबट लेते हैं, अत: घाट के ऊपर बदबू चारों ओर पसरी हुई है। हम शीघ्र ही डेरे पर लौट आए।

रात्रि के बाद अब आनंदजी के दर्शन हुए। मैं इन्हें स्नान कराने ले गया। स्नान से लौटकर तैयार हो शीघ्र किन्नर अखाड़ा के लिए पैदल ही निकल पड़े। आनंदजी के साथ हैं—मैं, मेरी श्रीमती, जीतभाई तथा बुराड़ी के शर्मा दंपती। थोड़ा आगे चलकर भूखी माता का मंदिर है, यह ज्यादा बड़ा नहीं है, शिप्रा के लगभग किनारे पर ही है, परंतु यहाँ भी दर्शनार्थियों की भीड़ लगी है। हम लोगों ने यहीं से चलते-चलते हाथ जोड़कर प्रणाम कर लिया। किन्नर अखाड़ा की ओर चलते-चलते ही हम आपको भूखीमाता के बारे में बताते हैं कि पूर्वकाल में यहाँ का राजा एक दिन से ज्यादा जीवित नहीं रह पाता था। नगर में विचरण करनेवाली देवियाँ उसे अपना ग्रास बना लेती थीं। इस विपदा के समाधान-स्वरूप अवंति में हर घर से एक व्यक्ति प्रतिदिन राजा बनने लगा। परंतु एक दिन एक वृद्धा के इकलौते पुत्र की बारी आई। बेटे की मृत्यु निश्चित जान वृद्धा जोर-जोर से रोने लगी। उसी समय युवा विक्रमादित्य वहाँ से गुजर रहे थे। उन्होंने वृद्धा के विलाप का कारण जान उस दिन वृद्धा के पुत्र की जगह स्वयं राजा बनने का निश्चय किया। बुद्धि से संपन्न विक्रमादित्य ने नाना प्रकार के स्वादु पक्वान्न-मिष्टान्न और अपना एक पुतला देवियों के आने के नियत स्थान पर रखवा दिया। भूख से व्याकुल देवियाँ स्वादु व्यंजन खाकर तृप्त हो गईं, उनकी भूख शांत हो गई; परंतु कुछ देवियाँ विक्रमादित्य का पुतला खाने लगीं तो दूसरी देवियों ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया।

सांदीपनि आश्रम में 'वल्लभ निकुंज', उज्जैन

अंत में देवियों ने कहा कि हम तुम्हारी सेवा से प्रसन्न हैं, जो इच्छा हो, सो माँगो। पास ही में छिपे राजा विक्रमादित्य सामने आकर बोले, 'हे माताओ! अगर आप प्रसन्न हैं तो यह नगर छोड़कर चली जाओ।' देवियों ने तथास्तु तो कहा, परंतु बोलीं कि हम सिंहस्थ में अवश्य आएँगी। विक्रमादित्य ने अनुमति देते हुए कहा कि माँ, आप यहाँ एक पल के लिए ही आ सकती हैं। देवियाँ मान गईं। एक पल में ये देवियाँ कितना कहर बरपा सकती हैं, यह राजा अच्छी तरह से जानते थे। अत: उन्हें संतुष्ट करने के लिए राजा विक्रमादित्य ने सिंहस्थ से पूर्व देवी-पूजन की परंपरा शुरू की, जो आज तक निर्बाध रूप से जारी है। शासन की ओर से जिलाधीश एवं संभागायुक्त द्वारा भूत-पूजा आयोजित की जाती है, जिसमें शराब तथा अन्य सामग्री को नगर के मुख्य मार्गों पर परोसा जाता है और सिंहस्थ के आरंभ के पूर्व भूखीमाता मंदिर में विशेष पूजा की जाती है।

काफी लंबा चलने के बाद आखिर किन्नर अखाड़ा के पंडाल पर पहुँचे। यह रेलवे लाइन के पास है, परंतु महामंडलेश्वर दीदी देर रात तक जागरण के कारण अभी सो रही हैं। दर्शनार्थियों से उनका मिलने का समय ग्यारह बजे से है। आनंदजी के अनेक प्रयास करने के बावजूद उनसे भेंट न हो सकी, अत: यहाँ से एक ऑटो में नागा डेरे से होते हुए मंगलनाथ मंदिर के लिए निकले। बाकी बचे लोग डेरे से दूसरे ऑटो में सवार हुए। थोड़ी ही देर में मंगलनाथ मंदिर पहुँच गए। यहाँ ऑटोवाले भी यात्रियों को खूब लूट रहे हैं। चार कि.मी. दूरी के पाँच-पाँच सौ रुपए झटक लिये। खैर, मंदिर-प्रवेश से पूर्व मंगलनाथ मंदिर के बारे में बताते हैं। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि यह मंगलग्रह का जन्मस्थान है। मंगल दोष की शांति के लिए संसार भर में यह अकेला मंदिर है। मंगली जातकों के शादी-विवाह में आनेवाली बाधा के लिए यहाँ पूजा की जाती है। मंदिर के बाहर जूता स्टैंड पर जूत-चप्पल रख दिए और मंदिर में जाने के लिए पंक्तिबद्ध हो गए। बाहर ही दोने में प्रसाद बिक रहा है। देख रहे हैं कि मंदिर काफी बड़ा है। यहाँ एक श्याम शिलानुमा मंगल देव पर वह प्रसाद चढ़ाया जा रहा है। मंदिर का संगमरमरी फर्श धूप से बहुत गरम हो गया है, पैर जल रहे हैं। मंदिर में दर्शन कर सब आगे-पीछे मंदिर से बाहर आ गए। जूता-चप्पल यहीं छोड़ आनंदजी पैदल ही सबको भैरव मंदिर की ओर ले चले। सड़क पर पैर झुलस रहे हैं। सब लोग आनंदजी को कोस रहे हैं। चलना असह्य होने पर आखिर एक टैंपो में बैठे। थोड़ा पैदल चल भैरव मंदिर तक पहुँचे तो यहाँ लंबी कतारें देख चौधरी साहब ने सबको लौटा लिया। यहाँ से ऑटो में बैठ वापस मंगलनाथ मंदिर लौटे।

अपने-अपने जूते-चप्पल पहन यहाँ से वाहन में सांदीपनि आश्रम के लिए निकले। यह मंगलनाथ मार्ग पर ही है, पहुँचने में ज्यादा देर नहीं लगी। अब हम सांदीपनि आश्रम के द्वार पर हैं, यहीं स्थित जूता-स्टैंड पर जूते-चप्पल रखे और आगे बढ़ गए। यह स्थान बड़ा पवित्र और ऐतिहासिक है। उस काल में शिक्षा का अग्रणी केंद्र होने के कारण ही भगवान् कृष्ण अपने भ्राता बलदाऊ के साथ सांदीपनि ऋषि के आश्रम में शिक्षा ग्रहण करने आए थे। यहीं सुदामा उनका सहपाठी बना और बाद में गहरा मित्र। जिनकी मित्रता की आज भी मिसाल दी जाती है। थोड़ा रास्ता चलने के बाद चौक है, इसके ठीक सामने वह स्थान है, जहाँ श्रीकृष्ण ने अक्षरज्ञान लिया, इसे 'वल्लभ निकुंज' कहते हैं। इसके अंदर ऋषि सांदीपनि, उनके पुत्र, श्रीकृष्ण, बलराम तथा सुदामा की मूर्तियाँ हैं।

इसके पीछे गोमती सरोवर नामक कुंड है, जिसमें सभी अंतेवासी शिष्य मज्जन-स्नान किया करते थे। बाईं ओर सर्वेश्वर महादेव मंदिर है, जहाँ पर कालसर्प दोष, पितृदोष शांति के लिए पूजा होती है। दाहिनी ओर महाप्रभुन की बैठक है। यहाँ से आनंदजी ने कुछ पुस्तकें खरीदीं। इसके ठीक सामने ही एक छोटा सा तालाबनुमा फुहारा है, जिसमें पत्थर का एक हाथी खड़ा है। यात्री लोग न जाने क्यों, हाथी पर पानी उलीच-उलीचकर आगे बढ़ जाते हैं, यह भी कोई अंधविश्वास ही है। इन सब के बीचोबीच में एक गोल मंडप है, जहाँ पंडित-पुरोहित कालसर्प दोष की शांति के लिए पूजा की तैयारी कर रहे हैं। कई यजमानों की पूजा-सामग्री पंक्तिबद्ध रखी हुई है। स्नान-कुंड के किनारे नीम की छाया में हम लोग कुछ देर बैठ गए। दोपहर का लगभग एक बज गया है, सो यहाँ से निकल, वाहन पकड़ नागा डेरे पर लौट आए।

डेरे पर दोपहर का भोजन तैयार हो गया है, सो पंक्ति में बैठकर भोजन किया। कुछ देर आराम करने के बाद सामान व्यवस्थित कर लगभग चार बजे स्टेशन के लिए निकले। चलने के पूर्व सभी ने श्रीअगस्त्य गिरि बाबाजी के चरणों में अपनी श्रद्धा भेंट की। कृपालू बाबाजी ने बड़े अपनेपन और स्नेह से सभी को आशीर्वाद देकर विदा किया। बाबाजी का कहना है कि आखिर हम संन्यासी लोग भी तो गृहस्थों के आश्रित हैं। आनंद भाई अगले दिन लौटनेवाले हैं, उनसे गले मिलकर विदा हुए। पैदल ही शिप्रा के उस पार निकलकर महाकाल मंदिर के सामने से प्रसाद लिया तथा महिलाओं ने थोड़ी-बहुत खरीदारी की।

उज्जयिनी में अनेक दर्शनीय स्थल हैं, जिनमें महाकाल मंदिर, हरिसिद्धि देवी, बड़े गणेश, गोपाल मंदिर, गढ़कालिका, भर्तृहरि गुफा, कालभैरव, सांदीपनि आश्रम, सिद्धवट, मंगलनाथ मंदिर, वेधशाला आदि, पर समयाभाव के कारण हम कुछ ही स्थलों के दर्शन कर पाए। शिप्रा पर बहुत सारे घाट हैं, पर हम दो घाटों पर ही स्नान का पुण्य अर्जित कर सके। यहाँ से निकलकर स्टेशन के लिए वाहन में बैठे। उज्जैन के रेलवे स्टेशन पर आ गए हैं। स्टेशन परिसर तथा प्लेटफॉर्मों पर पैर रखने को भी जगह नहीं है। हर प्लेटफॉर्म से बराबर गाड़ियाँ निकल रही हैं, पर आनन-फानन में भीड़ फिर बढ़ जाती है। हमारी गाड़ी डेढ़ घंटा लेट हो गई है। इधर से हम बारह यात्रियों में से किसी का टिकट कन्फर्म नहीं हो पाया है। हमारे साथ चार बुजुर्ग भी हैं, सबकुछ महाकाल के भरोसे है। आखिर साढ़े पाँच के स्थान पर सायं सात बजे हमारी गाड़ी प्लेटफार्म नंबर पाँच पर आई तो प्लेटफार्म पर जैसे भूचाल आ गया। गिरते-पड़ते बड़ी मशक्कत के बाद आखिर बोगी में घुसने में कामयाब हो गए। भीड़ के मारे हालत ऐसी हो गई कि जो रिजर्वेशन वाले हैं, वे प्लेटफॉर्म पर खड़े हैरान-परेशान पुलिसवालों से गाड़ी में चढ़ाने के लिए अनुनय-विनय कर रहे हैं। गाड़ी चलती है, तुरंत चैन पुलिंग हो खड़ी हो जाती है। पुलिसकर्मी तथा वॉलंटियर गाड़ी को सकुशल चलवाने में हलकान हो रहे हैं। ड्राइवर ने लगभग पाँच बार गाड़ी को चलाने का प्रयास किया, परंतु हर बार रोक दी गई। अंततः गाड़ी अपने गंतव्य की ओर चली। गाड़ी के अंदर हालात ऐसे हैं कि जो जहाँ खड़ा या बैठा है, वहाँ से हिल नहीं सकता, न ही शौचालय आदि के लिए जा सकता है। भोलेनाथ के भक्त बोगी में अँटे पड़े हैं। मैं बोगी के बीचोबीच आर ए सी सीट पर एक पंजाबी बुजुर्ग सज्जन के पास बैठ गया हूँ, जो सिंहस्थ में महीने भर सेवा कैंप चलाकर दिल्ली लौट रहे हैं। थोड़ी देर में नीचे बैठे एक सज्जन भी मेरे बराबर में बैठ गए, जो भरतपुर लौट रहे हैं। मैं यहाँ से उठने की स्थिति में नहीं हूँ, अतः फोन पर श्रीमतीजी का हाल मालूम करता हूँ, वे भी बैठ गई हैं, जीतभाई साथ ही हैं। गाड़ी नागदा स्टेशन पर आ लगी। यहाँ थोड़ा समय लगता है, इंजन बदलना पड़ता है।

संसार में एक से एक अच्छे लोग हैं, ऐसे परोपकारियों की भी कमी नहीं, जो दूसरों के कष्ट के आगे अपना दुःख-दर्द भूल जाते हैं। ऐसा हुआ कि मेरी सीटवाले बुजुर्ग पानी के लिए खाली बोतल खिड़की से बाहर निकालकर खट्-खट् कर रहे थे कि कोई पानी लाकर दे दे। कितने ही लोग प्लेटफॉर्म पर आ-जा रहे हैं, कितने ही यात्री-शेड के नीचे प्लेटफार्म पर बैठे भी हैं, पर किसी ने उस ओर ध्यान नहीं दिया। एक महिला थोड़ा हटकर शेड के नीचे छोटे गोल चबूतरे पर लेटी हुई थी, आखिर वह उठकर आई और तुरत पानी भरकर बोतल हाजिर कर दी। बस फिर क्या था, दुःखी-परेशान जरूरतमंद यात्री एक के बाद एक कुछ-न-कुछ मँगाने लगे, वह बेचारी दौड़-दौड़कर सब लाती रही। आखिर मँगाने का यह सिलसिला कुछ थमा और गाड़ी चलने को हुई तो भरतपुर वाले सज्जन ने भाषा-बोली पहचानकर धन्यवाद देते हुए पूछा कि आप कहाँ जा रही हैं, तो उस महिला ने बड़े सकुचाते हुए कहा कि भैया, इसमें धन्यवाद की क्या बात है, यह तो पुन्न का काम है। हम कुंभ से आ रहे हैं और अगली गाड़ी से भरतपुर जाएँगे। मेरे पेट में दर्द हो रहा था, सो मैं लेट गई थी। ये बाबाजी पानी के लिए बोतल बजा रहे थे, मैंने सोचा कि इन्हें पानी की जरूरत है, बस मैं उठकर आ गई। भैया, इनसान की सेवा करने से पुन्न मिलता है। और फिर हमारी गाड़ी रेंगने लगी। यह एक देहाती अपढ़ महिला की तथाकथित उच्च शिक्षितों के लिए जीवन की एक जरूरी शिक्षा है।

रात्रि स्याह हो गई है। गाड़ी में लोकल यात्रियों की भरमार थी, धीरे-धीरे भीड़ कुछ हल्की हुई। सब उपायों के बाद भी नींद ने अपने पाश में कस लिया, सो गैलरी में ही लुढ़क गया। किसी का पैर किसी के सिर से लग रहा है, कोई किसी के ऊपर अधलेटा है तो कोई ऊँघते हुए किसी के ऊपर पूरा झुक गया है, किसी को कोई शिकायत नहीं। किसी तरह रात कटी और प्रातः निजामुद्दीन रेलवे स्टेशन पर उतर, ऑटो पकड़ घर की राह ली। भगवान् महाकाल की कृपा से स्नान भी शानदार हुआ, दर्शन भी शानदार हुआ और साधु-संतों का साहचर्य भी शानदार रहा। भगवान् भूतेश्वर सबकी सुनते हैं, औघड़ दानी जो हैं। जय महाकाल! जय माँ शिप्रे!!

साअ
जी ३२६, अध्यापक नगर, नांगलोई
दिल्ली-११००४१
दूरभाष : ९८६८५२५७४१

कहानी

एक नया सवेरा

● बीना सिद्धेश

मंदिर में हो रहे कीर्तन की मधुर ध्वनि ने वातावरण को झंकृत कर दिया। कृष्णा हड़बड़ाकर उठ बैठा। खुद अपने ऊपर हँसी आने लगी। पता ही नहीं चला कब दोपहर से शाम हुई, आँख लगी और आँखों ही आँखों में रात गुजर गई। न नहाने का मन हुआ, न पेट की चिंता, कितना बौरा गया है कृष्णा! क्या हो गया है कृष्णा को? किंतु जो भी हुआ है, उसमें एक अनोखा आनंद महसूस कर रहा है वह, तभी तो हवा में खुशबू और मन में अनोखा संकल्प जन्म ले चुका है। कृष्णा कल की भाँति आज भी जल्दी-जल्दी खाना तैयार करने लगा। एक तरफ अगर स्टोव पर सब्जी चढ़ा दी, तो दूसरी तरफ उतनी ही देर में नहाकर तैयार हो गया। झटपट दो-चार परौंठे सेंककर टिफिन में रखे और बस स्टॉप पर जाकर बेसब्री से उसकी प्रतीक्षा करने लगा। आज का हर पल कृष्णा को पहाड़ बराबर लग रहा था। उसकी आँखें दूर-दूर तक उसे खोजने का प्रयत्न कर रही थीं। तभी एक भिखारिन रोज की तरह चुपचाप पीछे से आकर सामने खड़ी हो गई। उसने देखा, आज वह रोज से अधिक भली और सौम्य लग रही थी। उसने कृष्णा को अपनी ओर ताकते देखकर अपनी आँखें और झुका लीं। कृष्णा ने बड़ी हिम्मत से उससे पूछा—

''क्या नाम है तुम्हारा?''

''सुधा!''

''सुधा···यानी अमृत! फिर भी तुम भीख माँगती हो? किसी के घर में नौकरी क्यों नहीं कर लेतीं?''

''जमानत कौन देगा, बाबू? फिर आप सब लोग यह भी तो कहते हैं कि मैं कुलच्छिनी हूँ? बदमासी करती हूँ, भीख माँगने का नाटक करती हूँ।''

''नहीं-नहीं, ऐसा सब नहीं कहते। खासकर मैं तो ऐसा कभी नहीं मानता।''

''तुम अच्छे हो बाबू, इसलिए मुझे भी अच्छा देखते हो।''

''अगर मैं तुम्हें काम दूँ तो करोगी?'' कृष्णा ने उसके मन को टटोला।

''क्यों न करूँगी बाबू? तुम्हारा दिया हुआ हर काम भीख माँगने से तो अच्छा होगा। फिर मेरा कौन सा अपना चरित्र है, जो तुम्हारे काम करने से बिगड़ जाएगा।'' उसने पाँव के अँगूठे से जमीन कुरेदते हुए कहा।

''हर आदमी का चरित्र होता है। तुम्हारा भी अपना चरित्र है।''

''रहने दो बाबू। झूठी तसल्लियों से क्या होता है? अपना काम बताओ?''

सुपरिचित रचनाकार। कई पत्र-पत्रिकाओं में लगभग एक दर्जन कविताएँ प्रकाशित। आकाशवाणी से कविताओं का प्रसारण। संप्रति गृहिणी।

''हाँ, एक बात है। फिर मैं भीख न माँगूँगी, भले ही दो रोटी खाने को मिलें।''

बच्चों के समान ठुनककर बोली।

''नहीं-नहीं ऐसा नहीं होगा।''

''तो फिर देर काहे की, काम बताओ बाबू। क्या करना होगा मुझे?''

''मेरे घर की मालकिन बनना होगा तुम्हें। मेरी देखभाल करनी होगी। मजदूरी में मैं नहीं, तुम मुझे सुबह-शाम दो रोटियाँ दोगी। बोलो, कर सकोगी मेरा काम।'' कृष्णा आवेश में बोला।

''बाबू, कहीं मेरी हँसी तो नहीं उड़ा रहे हो तुम।''

''नहीं, मैं तुम से ब्याह करना चाहता हूँ, सुधा।''

''मुझे पता था, तुम ऐसा ही कहोगे। लेकिन मैं मरदों को खूब पहचानती हूँ। मर्द यही कहकर तो औरत को फाँसता है।''

''सुधा समझने की कोशिश करो।''

''समझ रही हूँ, तभी तो कहती हूँ। इतने नाटक की क्या जरूरत थी। औरों की तरह पाँच रुपया दिखाकर किसी पुल या पेड़ के पीछे आने का इशारा कर देते।'' वह खिलखिलाने लगी।

''सुधा!'' कृष्णा का भरपूर तमाचा उसके गाल पर पड़ा। तड़ाक की आवाज ने लोगों को चौंका दिया। सब उन दोनों को घूरने लगे। इस अप्रत्याशित घटना से वह सहम गई। कृष्णा भी हतप्रभ रह गया। कुछ पल वह कृष्णा को देखती रही और अचानक भीड़ में गुम हो गई। बस के आ जाने से कृष्णा भी लपककर उसमें चढ़ गया।

पूरा दिन ऑफिस में गुजारने के बाद कृष्णा का मन वहाँ नहीं लग रहा था। घर लौटकर चुपचाप आँखें मूँदकर पड़ा रहना चाहता था। लेकिन ऐसा भी नहीं कर पा रहा था वह! लेकिन मजबूरीवश घर तो आना ही था। यह सोचकर वह बस स्टॉप पर गया। बस तैयार खड़ी थी। उसके चढ़ते ही वह चल दी। आज बीस मिनट का सफर बहुत लंबा लग रहा

था। बार-बार कृष्णा का मन उसे धिक्कार रहा था कि आखिर उसका क्या कसूर था, जो मैंने उसपर हाथ उठाया। अभी आगे शायद अपने को और कोसता कि चौराहा आ गया। वह अनमना सा उतर पड़ा। अभी आगे बढ़ने की सोच ही रहा था कि किसी कोमल स्पर्श ने कृष्णा को चौंका दिया। पीछे मुड़कर देखा तो सुधा निगाह झुकाए खड़ी थी। आश्चर्य से कृष्णा के मुँह से इतना ही निकला, ''सुधा! तू···।''

''हाँ बाबू मैं···। मुझे माफ कर दो बाबू। मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूँ। क्या करोगे मुझसे विवाह?'' उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे।

''हाँ···। मैं तुमसे विवाह करूँगा, सुधा। लेकिन···।''

''लेकिन क्या बाबू? मन न भरे तो छोड़ देना। मैं कभी गिला न करूँगी।''

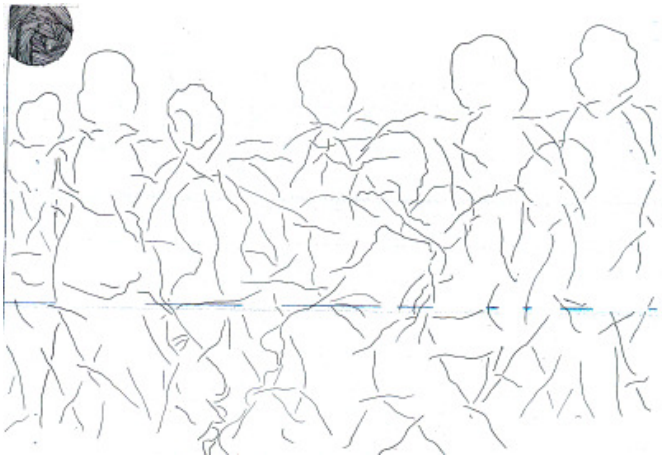

''नहीं यह बात नहीं है। मैं सोच रहा हूँ कि क्या तुम्हें मैं खुश रख सकूँगा?''

''खुश तो तुम्हें रखना होगा, बाबू।'' वह संग चलते हुए बोली।

''एक बात बताओगी, सुधा। अचानक तुमने मुझपर इतना विश्वास कैसे कर लिया? क्यों तैयार हो गई ब्याह को?''

''बस मन आ गया। सोचा, बिन ब्याहे तो न जाने कितने ब्याहे मुझे परखते हैं। मैं भी ब्याह करके एक अनब्याहे को परखूँ।''

''मैं परखने के लिए नहीं हूँ, सुधा। जीवन बिताने के लिए हूँ।''

वह हँस दी। उसकी हँसी से कृष्णा का मन सहम गया। पुन: मन-ही-मन में कहा—

'मना कर दो इस नीच लड़की को। मत करो इससे ब्याह। रह गई माँ की बात, वह खुद ही कहीं-न-कहीं मेरे लिए लड़की ढूँढ़ लेगी। गरीब हूँ तो क्या? इज्जत है, चरित्र है अपना।' तभी उसने टोका—

''क्या सोच रहे हो बाबू? अब भी अगर ब्याह न करना चाहो तो मना कर दो। हमारा तो धंधे का बखत है। ज्यादा टेम खराब करने से क्या फायदा?''

''सुधा! पता नहीं तुम इतना क्यों बोल रही हो?'' उसने टोका।

''ठीक है बाबू। अब न बोलूँगी। एक रात तुम भी परख लो मुझे, सवेरे देखा जाएगा।''

और उसने भी सोचा, 'सवेरे देखा जाएगा। कम-से-कम ब्याह के नाम पर माँ गाँव से शहर तो आ जाएगी। रोटी-पानी की सुविधा हो जाएगी।' अभी न जाने और क्या-क्या सोचता, तभी मंदिर पास आ गया। कृष्णा सुधा का हाथ पकड़कर अंदर चला गया। कृष्णा की बात सुनकर पहले तो पुजारी ने न-नुकुर की। फिर ब्याह कराने को तैयार हो गए। हवन-कुंड के सात फेरे लेकर कृष्णा ने सुधा की माँग में सिंदूर भर दिया। सुधा ने भी कृष्णा को माला पहना दी और दोनों अपने घर आ गए।

घर पहुँचते ही कृष्णा का अपना नन्हा सा कमरा बड़ा लगने लगा। टूटा बदरंग बक्सा नया लगने लगा। टूटी चारपाई तो इतनी बड़ी लगने लगी, जैसे कमरे में शादी का नया डबलबेड पड़ा हो। रास्ते में खरीदी गई पूड़ियाँ खाकर कृष्णा सोने की तैयारी करने लगा। इतनी देर में सुधा कृष्णा की लाई हुई साड़ी पहनकर तैयार हो गई। कमरे में आते ही उसकी निगाहें उसपर टिक गईं। उसके माथे पर गोल सूरज जैसी बड़ी बिंदी दमदमा रही थी। उसने बरबस उसे बाँहों में खींच लिया और फिर पता ही नहीं चला कब रात गुजरी, उजाला हो गया। कृष्णा हड़बड़ाकर उठ गया। सोचा, 'मारे गए। आज भी देर हो गई। फिर घर के राशन-पानी का इंतजाम भी तो करना है।' तभी सुधा ने अपनी रेशमी बाँहें कंधे पर टिकाते हुए कहा, ''क्या सोच रहे हो बाबू?''

''मैं तुम्हारा नहीं···। तुम्हारे बच्चों का बाबू हूँ, सुधा! तुम्हारा तो कृष्णा हूँ। केवल कृष्णा!''

''अच्छा···।'' और वह हँसती हुई लाज से दोहरी हो गई।

''सुधा! तुम झूठी भी हो। आज मुझे पता चला तुम्हारा चरित्र।''

''मैंने पहले ही कहा था कि बहुत सी बुराइयाँ है मुझमें। लेकिन आप न माने। कहें तो अब चली जाऊँ वापस।''

''मैं मानता हूँ, तुम सीता जैसी पवित्र हो। तुम्हें समाज की कोई आग नहीं जला सकती, किंतु मैं राम की तरह तुम्हें छोड़कर लोक-दिखावा नहीं कर सकता, सुधा।''

''कृष्णा! मुझे इतना मान मत दो। कहीं मैं बिखर न जाऊँ?''

''सुधा, मैं तुम्हारे चरित्र की सदैव रक्षा करूँगा। तुम्हें बिखरने नहीं दूँगा। तुम गंगा जैसी पवित्र हो, चरित्रहीन नहीं।''

कुछ देर वह मूर्तिवत् खड़ी रही और फिर सिसकती हुई कृष्णा की बाँहों में समा गई। उसे लगा मानो आज से शंकर ने गंगा के लिए अपनी जटाएँ खोल दी हों। उसकी बाँहों में अनोखा कसाव आ गया। उसने उसका निर्मल शरीर भुजाओं में भर लिया। तभी दूर कहीं बजता हुआ रिकॉर्ड सुनाई पड़ा—

'चाँद जैसे मुखड़े पर बिंदिया-सितारा···'

सिद्धेश सदन, किड्स कॉर्मल स्कूल के बाएँ
द्वारिकापुरी, रोड नं.२, हनुमान नगर
कंकड़बाग, पटना-८०००२०
दूरभाष : ९२३४७६०३६५

राष्ट्रीय गीतों के लेखक कविवर प्रदीप

● **सतीश चंद्र चतुर्वेदी**

जब सन् १९९७ में हम मुंबई गए थे, तब हमारे मन में उस राष्ट्रीय कवि प्रदीपजी से मिलने की बड़ी इच्छा थी, जिसने ऐसे गीत लिखे और गाए, जो आज भी याद आते हैं। हम प्रदीपजी से मिलने २३-०२-१९९७ को गए थे। हमारे साथ हमारे पुत्र प्रियदर्शन चतुर्वेदी और गोविंद प्रसादजी के पुत्र रमेश चंद्र चतुर्वेदी भी थे। उस समय के पाँच चित्र हमारे संग्रह में हैं, जो उस समय की याद दिलाते हैं। जिस दिन हम प्रदीपजी से मिलने गए थे, उस समय का चित्र हमें उनकी याद दिलाता है, जिसमें प्रदीपजी, प्रियदर्शन चतुर्वेदी तथा मैं (सतीश चंद्र चतुर्वेदी) बैठे हैं। हमारी उनसे बहुत देर बातचीत होती रही। हमने उनके साथ चाय भी पी थी। उनके संबंध में जो जानकारियाँ मिली थीं, उनमें प्रमुख इस प्रकार हैं—प्रदीपजी का जन्म बाद नगर उज्जैन, मध्य प्रदेश में दिनांक ६ फरवरी, १९१५ को हुआ था। उनका पूरा नाम रामचंद्र नारायणजी द्विवेदी था, लेकिन वह 'प्रदीपजी' के नाम से जाने जाते थे। कवि प्रदीपजी की पहचान १९४० में रिलीज हुई फिल्म 'बंधन' से बनी। हालाँकि स्वर्ण जयंती हिट फिल्म 'किस्मत' के गीत 'दूर हटो ऐ दुनियावालो हिंदुस्तान हमारा है' ने उन्हें देशभक्ति गीत के रचनाकारों में अमर कर दिया। गीत के अर्थ से क्रोधित तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने उनकी गिरफ्तारी के आदेश दिए। इससे बचने के लिए कवि प्रदीप को भूमिगत होना पड़ा। पाँच दशक के अपने पेशे में कवि प्रदीप ने ७१ फिल्मों के लिए १७०० गीत लिखे। उनके देशभक्ति गीतों में फिल्म 'बंधन' (१९४०) में 'चल-चल रे नौजवान' फिल्म 'जागृति' (१९५४) में 'आओ बच्चो तुम्हें दिखाए', 'दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल' और फिल्म 'जय संतोषी माँ' (१९७५) में 'यहाँ-वहाँ जहाँ-तहाँ मत पूछो कहाँ-कहाँ' हैं। इस गीत को उन्होंने फिल्म के लिए स्वयं गाया भी था।

आपने हिंदी फिल्मों के लिए कई यादगार गीत लिखे, जो इस प्रकार हैं—

ऐ मेरे वतन के लोगों (कंगन), चल-चल रे नौजवान (बंधन), रुक न सको तो जाओ (बंधन), खींचो कमान खींचो (अनजान), दूर हटो ऐ दुनियावालों हिंदुस्तान हमारा है (किस्मत), अब तेरे सिवा कौन मेरा (किस्मत), कान्हा बजाए बंसरी (नास्तिक), कितना बदल गया इनसान (नास्तिक), साबरमती के संत (जागृति), हम लाए हैं तूफान से (जागृति), आओ बच्चो तुम्हें दिखाएँ (जागृति), तेरे द्वार खड़ा भगवान् (वामन अवतार), पिंजरे के पंछी रे (नागमणि), इनसान का इनसान से हो भाईचारा (पैगाम), साँवरिया रे अपनी मीरा को भूल न जाना (आँचल), आज के इस इनसान को ये क्या हो गया (अमर रहे ये प्यार), चल अकेला चल अकेला (संबंध), जय-जय नारायण-नारायण हरी-हरी (हरिदर्शन), प्रभु के भरोसे हाँको गाड़ी (हरिदर्शन), मारनेवाला है भगवान् बचानेवाला है भगवन् (हरिदर्शन), मैं तो आरती उतारूँ (जय संतोषी माँ)।

भारतीय कवि एवं गीतकार थे, जो देशभक्ति गीत 'ऐ मेरे वतन के लोगों' की रचना के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने १९६२ के भारत-चीन युद्ध के दौरान शहीद हुए सैनिकों की श्रद्धांजलि में ये गीत लिखा था। लता मंगेशकर द्वारा गाए इस गीत का तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू की उपस्थिति में २६ जनवरी, १९६३ को दिल्ली के रामलीला मैदान में सीधा प्रसारण किया गया। गीत सुनकर जवाहरलाल नेहरू की आँख भर आई थीं। कवि प्रदीप ने इस गीत का राजस्व युद्ध विधवा कोष में जमा करने की अपील की थी। प्रदीपजी को भारत सरकार ने सन् १९९७-९८ में दादा साहब फाल्के पुरस्कार से सम्मानित किया। प्रसिद्ध गीतकार व राष्ट्र कवि ८४ वर्षीय प्रदीपजी का निधन ११ दिसंबर, १९९७ को हुआ था। उनका गीत 'पिंजरे के पंछी रे तेरा दर्द न जाने कोई' उनके संवेदनात्मक मानसिकता का प्रतीक है। प्रदीपजी का प्रसिद्ध गीत 'ऐ मेरे वतन के लोगो, जरा आँख में भर लो पानी, जो शहीद हुए हैं उनकी जरा याद करो कुरबानी' लता मंगेशकर द्वारा गाया गया था। यह गीत २७ जनवरी, २०१४ को महालक्ष्मी रेसकोर्स मुंबई में हजारों लोगों की उपस्थिति में गाया गया था। लता मंगेशकरजी को एक लाख रुपए से सम्मानित किया गया था। लताजी ने वह रुपए ले जाकर प्रदीपजी को भेंट कर दिए थे। चूँकि उस गीत के रचनाकार कवि प्रदीपजी ही थे।

चौबेजी का कटरा
किनारी बाजार, आगरा-३
दूरभाष : ०५६२-६४५०२८८

आओ, मेरा संधान करो

● नीरज कुमार

अंचल मेरे कुछ अनिल-अनल

मैं भाव-समर में होता विह्वल, नीर बीच नीरज-शीतल।
शुद्ध, सुलोचन मध्य सरोवर,
कीच धरे पग, प्रीत नयन भर;
नूतन-नवल-प्रभात लिये,
मैं पुष्पक, प्रेम-प्रपात लिये;
मेरा कोई प्रतिरूप नहीं,
मुझसे पाती शृंगार मही;
हंसवाहिनी का आसन,
अहा! कैसा सुंदर श्वेत बदन।
क्षण भर सूर्य-प्रभा में जीवित, निशा-भ्रमर का हृदय-विलय।
पर कुंठा धारण से पहले, मेरा वय कितना निर्मल!

इस वसुधा को आलोकित करता, मैं दिन कर नभ-मध्य प्रज्ज्वल;
परम पराक्रम, परम प्रकाश,
मुझसे जीवन का शिलान्यास;
मैं विभा-सुहागन की शृंगार,
मेरे कंधे नवयुग का भार;
घन-घने क्षणिका, अत्यल्प ग्रहण,
पर अंशु मेरा लिए श्वसन;
उस सुमन वाटिका पर टूटे,
मुसकान सुकोमल मुख फूटे।

हरित धरा पर स्नेह लुटाता, थका क्षितिज के पार चला।
पर फैला पाश दिवस का देखो, देखो मृत भू पर हलचल।

मैं सुप्त अलंकृत क्षितिज लिये, अपने अंचल कुछ अनिल-अनल।
कुछ दिवा-समर का सार लिये,
कुछ लज्जा, कुछ स्वभार लिये;
सुकृत्य निहारूँ कोने से,
अपने नवकल्प सलोने से;
मैं अलसाया मुसकान लिये,
सुख-सृजन का सर सम्मान लिये;
अब अँधियारे की ओर चलूँ,
कुछ होता आत्म-विभोर चलूँ।

वृद्ध वृषभ सा विस्मित, अपने वन-उपवन का अभिभावक,
पृथक् जीव समुदाय से अपने, चलूँ लिये दो नयन सजल।

अंतिम मैं अश्वेत विभा में, बिछा हुआ भूमि का तल।
मृत मृत्यु-नृप संग्राम लिये,
अनदेखा तन निष्काम लिये;
इस मृतक विश्व में जगा हुआ;
सब देखूँ लेटा ठगा हुआ।
हे अंशु! कुछ कल्याण करो;
आओ, मेरा संधान करो,
तुम आओ तो चम द्वार चलूँ,
इस जीवन तम के पार चलूँ।

मैं ही अतीत में पोषक था, अब पोषण बिन मैं तिमिर-कोष,
सबने इस पर चलना सीखा, तो फैला है निस्तेज अचल,
कल मिले मुझे, मैं मिला आज, मुझको फिर तुम पाओगे कल।

विद्वानों का संसार

पुस्तक पढ़े, बने विद्वान्, तनिक नहीं मानवता जाने,
अपनी तो पहचान नहीं, पर सबको एक झलक पहचाने।

गणित की घोर जटिलता, भय से उनके दूर स्वयं हो जावे,
जल, भूमि और वायु का ज्ञानी, तुरंत भेद-स्वभाव बतावे।
ज्ञात समाजशास्त्री को है, विश्व में कितने लोग रहे,
भाव विहंगम अपनों के, पर दुष्ट न ढूँढ़ परखना ठाने।

पंडित का पांडित्य वेद का अक्षर-अक्षर जान गया,
साहित्य का ज्ञाता रचता है, दर्शन-अनुसंधान नया।
भौतिक शास्त्र के क्या कहने, आकाश-पाताल की खबर उसे,
शास्त्री केवल घर के कोने, बूढ़ा कौन है, यह नहीं जाने।

काहे का विद्वान्, स्वार्थवश, मोह-लिप्त जग लूट रहा,
चोर, लुटेरे, ठग, पानी और नीच का नया ये रूप रहा।
विद्या का अधिकार उसे, जो जगत्-पुस्तिका पढ़ता है,
वरदपुत्र वह केवल, जो किसी आँख बसी करुणा पहचाने।

दिल्ली पब्लिक स्कूल
पटना
दूरभाष : ८७५७५२०५५२

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

'साहित्य अमृत' का नवंबर अंक प्राप्त हुआ। बाल-साहित्य पर सभी रचनाएँ सारगर्भित लगीं। संपादकीय में आपने सुभाष चंद्र बोस पर लिखी पुस्तक 'सुभाष बोस : एक इंडियन समुराई' के हवाले से कई नई जानकारियाँ दीं। राजनैतिक और खुफिया एजेंसियों द्वारा इस व्यक्ति पर शुरू से ही घातक प्रहार किए गए। हरिपुरा के कांग्रेस अधिवेशन में जब सुभाष पट्टाभि सीतारमैया को हराकर कांग्रेस प्रधान चुने गए, सबसे पहले महात्मा गांधी की प्रतिक्रिया कि पट्टाभि की हार मेरी हार है, भारतीय राजनीति में तहलका मचा दिया था। क्षुब्ध होकर नेताजी ने अध्यक्ष पद त्याग दिया। जियाउद्दीन के भेष में वे काबुल पहुँचे और आजादी दिलाने के लिए दूसरे विश्वयुद्ध के समय अंग्रेजों के विरुद्ध जनमानस में एक विद्रोह का सूत्रपात किया। आई.एन.ए. की स्थापना और उसके कृत्यों को देखकर भारत का नौजवान उनका दीवाना बन गया। एक बार सिंगापुर से नेताजी के भाषण देने की सूचना फैलने पर सायंकाल बाजार बंद हो गए और लोग-बाग छह बजे रेडियो के सामने बैठ गए। सुभाष की मृत्यु के बाद नेहरूजी ने उनके मुख्य साथियों (शाहनवाज) को सांसद बनाने के लालच में अपनी ओर खींच लिया और इस प्रकार स्वतंत्रता की लड़ाई में योगदान देनेवाली ऐसी विचारधारा का अंत हुआ। इतिहास को जानबूझकर तोड़ा-मरोड़ा गया। 'आजादी केवल अहिंसा से मिली है' इसका प्रचार कर सुभाष जैसे नेताओं की छवि को धूमिल किया गया। जी.डी. बख्शी बधाई के पात्र हैं, जिन्होंने उस काल की सच्चाई को जनता के सामने रखा। ***—बी.डी. बजाज, दिल्ली***

'साहित्य अमृत' का अक्तूबर अंक उत्साह, उमंग, खुशी और संस्कृति का संवाहक 'उत्सव अंक' मिला। पूरे मनोयोग से पढ़ा, बहुत अच्छा लगा। इस बार संपादकीय त्योहारों की संस्कृति और सामाजिक सहभागिता को लेकर जीवन को नए सिरे व पवित्र संकल्प के साथ जीने का संदेश देता है। तन-मन में उजास भरनेवाला यह अंक दीपावली को सच्चे अर्थों में नए संदर्भ प्रदान करता है। संकलित सभी रचनाओं में आस्था और विश्वास का पवित्र भाव है। विचार और संस्कार का सगुंफन है। काव्य की दृष्टि से यह अंक संग्रहणीय और प्रशंसनीय है। 'अँधेरा धरा पर कहीं रह न जाए' (प्रतिस्मृति) में सभी काव्य रचनाएँ अपनी ओजस्वी और प्रेरक वाणी में दीपोत्सव को चरितार्थ करती हैं। बालकवि बैरागी अपने सृजन में बहुत बड़े दाय को लेकर चलते हैं। 'दीप का अवदान' और 'स्याही का विश्वास' बहुत ही सुंदर रचनाएँ हैं। इस कालजयी सृजन के लिए उस प्रतिभासंपन्न महाकवि और व्यक्तित्व को सादर प्रणाम। शेष रचनाएँ भी हर दृष्टि से सम्माननीय और पठनीय हैं। इस संचयन के लिए संपादकीय टीम को हार्दिक शुभकामनाएँ एवं बधाइयाँ।

—डॉ. अशोक बैरागी, सिरसाढ़ (हरि.)

'साहित्य अमृत' के अक्तूबर अंक में महान् कवियों की रचनाएँ कई बार और कई जगह पढ़ने को मिलती हैं, फिर भी अटलजी, गोपालसिंह नेपाली और नीरज की कविताएँ बहुत प्रेरणास्पद और ओजपूर्ण हैं। बालकवि बैरागी का 'स्याही का विश्वास' आश्वस्ति की भी आश्वस्ति का गीत है। 'आना मेरे घर' एवं 'पछतावा' कहानियों में मालती व पंखी दोनों ही नायिकाओं के पति का शराबी होना एक अविश्वसनीय संयोग ही कहा जाएगा। मृदुला बिहारी की कहानी 'हवाएँ चुप नहीं रहतीं' में नदी सी रवानगी है, पाठक को भी प्रवाह में लिये चलती है। पंडित सुखराम शर्मा पर आलेख 'दुःख भरे दिन बीते रे भैया, अब सुख आयो रे' गीत की याद दिला गया। पूरन सरमा का व्यंग्य पढ़ते ही बचपन में दीपावली पर लिखे निबंध के अक्षर ज्यों-के-त्यों नेत्रपटल पर उभर आए। 'चल्लो···मुझे औड़ नहीं खेलना' पढ़कर आनंद आ गया। राजा चौरसिया की 'खुशियाँ अपने पास' भी अच्छी लगी।

—आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर, उज्जैन (म.प्र.)

'साहित्य अमृत' का नवंबर अंक प्राप्त हुआ। यह अंक बच्चों के लिए है, पर वृद्धावस्था में भी मैंने बच्चों की कहानियाँ व कविताएँ पढ़ने का आनंद लिया। बच्चों से संबंधित लघुकथाएँ भी पढ़ने को मिलीं। 'माटी की महक' देवेंद्र सत्यार्थीजी की व 'सींकवाली ताई' आदि कहानियाँ अच्छी हैं। प्रकाश मनुजी का आलेख 'बाल कहानी की दुनिया, यानी सातवीं कोठरी का सच' पढ़ा, उसमें उन्होंने बाल-कहानियों के बारे में तो लिखा ही है साथ में उन्होंने जो बाल-कहानियाँ लिखी थीं, उनके बारे में भी थोड़ा-थोड़ा लिखा है, अच्छा लगा। 'द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी की मूल्यपरक बाल-कविता' आलेख पढ़ा। माहेश्वरीजी की बाल कविताएँ मुझे कई पत्रिकाओं में पढ़ने को मिली थीं। पाठ्यक्रमों में भी हैं। बड़े साहित्यकार थे वे आगरा के।

—विनोद शंकर गुप्त, हिसार (हरि.)

'साहित्य अमृत' के नवंबर अंक में बाल साहित्य की कई रचनाएँ पढ़ीं। बाल साहित्य पर लिखनेवालों की संख्या अभी भी कम है। हिंदी बाल साहित्य के मुकाबले बँगला बाल साहित्य ज्यादा समृद्ध है। बँगला साहित्य में सभी प्रमुख बँगला लेखकों ने बाल साहित्य का सृजन किया है। हिंदी साहित्य की विडंबना है कि यहाँ बाल साहित्यकारों और साहित्य को उतना महत्त्व नहीं दिया जाता, जिसके वे हकदार हैं। आपने बाल साहित्य का प्रकाशन कर सराहनीय कार्य किया है। प्रकाशित गद्य व पद्य की रचनाएँ सरस और रोचक हैं। राष्ट्रीयता की वकालत करती इस बार की लंबी संपादकीय टिप्पणी एक मुकम्मल आलेख का रूप देता है। इस अंक को हम बाल साहित्य का विशेषांक कहें, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होनी चाहिए। प्रकाशित अन्य रचनाएँ भी सराहनीय हैं। ***—श्रीकांत व्यास, पटना (बिहार)***

'साहित्य अमृत' का नवंबर अंक बाल विशेषांक के रूप में देखा और पढ़ा। एक लंबे अंतराल के बाद संपादक त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी का संपादकीय पढ़कर मन खुशी से भर गया। बाल कहानियाँ, बाल कविताएँ, लेख, लघुकथाएँ, व्यंग्य, निबंध सब पढ़ा। बच्चों की रचनाएँ पढ़कर मन खुशी से गद्गद हो गया। कुल मिलाकर पूरा अंक पसंद आया।

—बद्रीप्रसाद वर्मा अनजान, गोरखपुर (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का नवंबर अंक भी स्तरीय और प्रशसंनीय है। आपकी संपादकीय दृष्टि पत्रिका को बहुआयामी बनाए रहती है। बाल साहित्य की दिशा में आपका रुझान चाहने एवं सराहने योग्य है। बाल पाठकों के लिए इंद्रधनुषी विविधता से पूर्ण सामग्री संग्रहणीय भी प्रतीत होती है। कृपया इसी प्रकार पत्रिका के नाम को सार्थकता प्रदान करते रहें। पठनीयता से ओतप्रोत और प्रेरणादायी रचनाओं के लिए हार्दिक धन्यवाद।

—राजा चौरसिया, कटनी (म.प्र.)

वर्ग पहेली (१३५)

अगस्त २००५ अंक से हमने **'वर्ग पहेली'** प्रारंभ की, जिसे सुप्रसिद्ध शिक्षाविद् एवं ज्ञान–विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ दिसंबर, २०१६ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें दो सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम–पते फरवरी २०१७ अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर **'वर्ग पहेली', साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (१३३) का शुद्ध हल

■	१जा	२न	में	३जा	न	४आ	५ना	■
६प	लि	त	■	न	■	७प	र	८चा
९ग	म	■	१०ल	की	११र	■	१२द	र
ड़ी	■	१३स	ज्जा	■	१४वा	१५दी	■	चाँ
१६उ	त्पा	त	■	■	■	१७म	द	द
छा	■	१८त	१९था	■	२०खा	क	■	ल
२१ल	२२प	■	२३ह	२४म	ला	■	२५ख	ग
२६ना	र	२७क	■	ही	■	२८आ	जा	ना
■	२९दा	म	न	प	क	ड़	ना	■

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्रीमती प्रेमलता डोगरा**
३५/१३, वेस्ट पटेल नगर
नई दिल्ली-११०००८

२. **श्री पलाश शर्मा**
सी ५/३२, ऑर्चिड हारमनी
एप्पल वुड्स, रिंग रोड, वोपल
अहमदाबाद-३८००५८
(गुजरात)

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई !

वर्ग-पहेली १३३ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं— सर्वश्री रजनीश कुमार त्रिवेदी (बरेली), लीना रस्तोगी (मुरादाबाद), संतोष शर्मा (गाजियाबाद), जया सहल, निर्मला गुजराती, बी.डी. बजाज, राजेंद्र कुमार सिंह, सुभाष शर्मा, मुकेश जैन पारस (दिल्ली), रुक्मणी संगल (पटियाला), सेवा सदन प्रसाद, सालिग्राम एस. तिवारी, विनीता सहल, प्रभा देवी (मुंबई), विश्वनाथ चटर्जी (नागपुर), गिरिधारी लाल अग्रवाल (यवतमाल), फकीरचंद ढुल (कैथल), नवीन दहिया (हिसार), सी.आर. नाहड़िया (नारनौल), मोहन उपाध्याय (अजमेर), अनुराग नागर (सीकर), रामकिशन पंवार (हनुमानगढ़), ओमप्रकाश गोयल (शिवपुरी), राजा चौरसिया, शिवशरण दुबे (कटनी), आशा गंगा प्रमोद शिरढोणकर, मोहन जगदाले (उज्जैन)।

बाएँ से दाएँ—

१. दुकान का मालिक (५)
४. दलील (३)
६. गंदगी (२)
७. दुरुहता (४)
८. सिद्धहस्त (४)
११. बोलना (३)
१३. सेना की छावनी (४)
१४. हुनर (४)
१५. चिल्लाकर रोने की आवाज (३)
१६. रिवाज (४)
१९. अल्पवयस्क (४)
२२. भय से अचानक काँप उठने की क्रिया (३)
२३. अपमान (४)
२४. तेज रोशनी के कारण आँखों में होनेवाली झपक (४)
२५. माँ की बहिन (२)
२७. एक जाति, जो डोली लेकर चलने का काम करती है (३)
२८. लोपन की क्रिया (२, ३)

ऊपर से नीचे—

१. पूँछ (२)
२. समय का बंधन (४)
३. चाँदी (३)
४. शक्तिदायी (४)
५. मारे हुए तथा घायल (४)
९. धनहीन (२)
१०. ग्रीवा (४)
१२. पनाला (४)
१३. जिसके कारण शर्मिंदा होना पड़े (४)
१४. जोर से शब्द करना (४)
१७. दिल्लगी (४)
१८. लड़ने का बढ़ावा (४)
२०. उन्माद (२)
२१. सिर पर पहनने का मुकुट (४)
२३. ओठ (३)
२६. वक्षस्थल (२)

वर्ग पहेली (१३४) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (१३५)

१	२			३	■	४	५	
६		■	■	७				■
■	८	९	१०		■	११		१२
१३				■	१४			
	■	■	१५			■	■	
१६	१७	१८		■	१९	२०	२१	
२२			■	२३				■
■	२४				■	■	२५	२६
२७			■	२८				

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

साहित्यिक गतिविधियाँ

'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' लोकार्पित

१२ नवंबर को रायपुर के पं. जवाहरलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज में पं. दीनदयाल उपाध्याय जन्म शताब्दी के अवसर पर एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान तथा प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के पंद्रह खंडों का लोकार्पण मुख्य अतिथि छत्तीसगढ़ के मुख्यमंत्री मान. डॉ. रमन सिंह के करकमलों से छत्तीसगढ़ के भाजपा अध्यक्ष मान. श्री धरमलाल कौशिक की अध्यक्षता में किया गया। विशिष्ट अतिथि राज्य वन औषधि बोर्ड अध्यक्ष मान. श्री रामप्रताप सिंह व प्रदेश संगठन महामंत्री मान. श्री पवन साय थे। मुख्य वक्ता एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान अध्यक्ष डॉ. महेश चंद्र शर्मा थे। श्री अवधेश जैन ने कार्यक्रम का सफल संयोजन किया। ☐

'शिवगिरि' कृति लोकार्पित

१२ नवंबर को नई दिल्ली के कस्तूरबा गांधी मार्ग स्थित भारतीय विद्या भवन सभागार में संस्कृतिपुरुष एवं राज्यसभा सांसद डॉ. कर्ण सिंह के प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित एकमात्र उपन्यास 'शिवगिरि' का लोकार्पण गोवा की राज्यपाल एवं प्रख्यात साहित्यकार मान. श्रीमती मृदुला सिन्हा के करकमलों से संपन्न हुआ। विशिष्ट अतिथि प्रसिद्ध लेखिका श्रीमती पद्मा सचदेव थीं। धन्यवाद भारतीय विद्या भवन में निदेशक श्री अशोक प्रधान ने ज्ञापित किया। ☐

'चरैवेति! चरैवेति!!' कृति लोकार्पित

९ नवंबर को नई दिल्ली के राष्ट्रपति भवन सभागार, राष्ट्रपति भवन एस्टेट में भारत के मान. राष्ट्रपति श्री प्रणब मुखर्जी के सान्निध्य में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल मान. श्री राम नाईक की प्रभात प्रकाशन द्वारा सद्य:प्रकाशित संस्मरणात्मक पुस्तक 'चरैवेति! चरैवेति!!' (हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू व गुजराती भाषाओं में) का लोकार्पण भारत के मान. उपराष्ट्रपति मो. हामिद अंसारी के करकमलों से संपन्न हुआ। अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष मान. श्रीमती सुमित्रा महाजन ने की तथा विशिष्ट अतिथि केंद्रीय शहरी विकास, आवास और शहरी गरीबी उपशमन तथा सूचना एवं प्रसारण मंत्री मान. एम. वेंकैया नायडू एवं राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष व सांसद मान. श्री शरद पवार थे। कार्यक्रम का संचालन सांसद मान. डॉ. विनय सहस्रबुद्धे ने किया। ☐

'चरैवेति! चरैवेति!!' कृति लोकार्पित

११ नवंबर को लखनऊ के गांधी सभागार, राजभवन में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल मान. श्री राम नाईक की प्रभात प्रकाशन द्वारा सद्य:प्रकाशित संस्मरणात्मक पुस्तक 'चरैवेति! चरैवेति!!' के हिंदी, उर्दू तथा अंग्रेजी संस्करणों का लोकार्पण मान. केंद्रीय गृह मंत्री श्री राजनाथ सिंह की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। मुख्य अतिथि उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री अखिलेश यादव एवं विशिष्ट अतिथि पं. बंगाल के मान. राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी व उत्तर प्रदेश के पूर्व मंत्री डॉ. अम्मार रिजवी उपस्थित थे। ☐

लोकार्पण समारोह संपन्न

६ नवंबर को भिलाई के अगासदिया परिसर में श्रीमती मिथिला खिचारिया की अध्यक्षता, श्री थानसिंह मटियारा के मुख्य आतिथ्य एवं डॉ. रविशंकर नायक व श्री प्रदीप भट्टाचार्य के विशिष्ट आतिथ्य में 'पोस्टर कविता' कृति का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर महंत अंतराम साहू, प्रदीप भट्टाचार्य एवं श्री गिरवर दास मानिकपुरी ने काव्य पाठ किया। संचालन श्री नारायण चंद्राकर ने किया। ☐

लोकार्पण समारोह संपन्न

१४ नवंबर को विज्ञान भवन में परमाणु ऊर्जा विभाग और अंतरिक्ष विभाग की संयुक्त हिंदी सलाहकार समिति की बैठक केंद्रीय मंत्री डॉ. जितेंद्र कुमार की अध्यक्षता में संपन्न हुई। इस अवसर पर डॉ. आरसु द्वारा संपादित एवं प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित कृति 'महात्मा गांधी साहित्यकारों की दृष्टि में' का लोकार्पण किया गया। श्री जस कुमार स्वामी ने स्वागत तथा श्री संजीव सूद ने कृतज्ञता ज्ञापित की। ☐

'अभिनंदन-उत्सव' संपन्न

३ नंवबर को मुरादाबाद की साहित्यिक संस्था 'अक्षरा' एवं 'हिंदी साहित्य सदन' के संयुक्त तत्त्वावधान में डॉ. मक्खन मुरादाबादी की अध्यक्षता में श्रीराम विहार कॉलोनी स्थित 'विश्रांति भवन' में 'अभिनंदन-उत्सव' का आयोजन श्री डी.पी. सिंह के विशिष्ट आतिथ्य में किया गया, जिसमें सुविख्यात नवगीतकार डॉ. माहेश्वर तिवारी को उनकी उल्लेखनीय साहित्यिक उपलब्धियों के लिए उ.प्र. सरकार द्वारा प्रदत्त 'यश भारती' के परिप्रेक्ष्य में मानपत्र, अंगवस्त्र, श्रीफल भेंट कर आत्मीय अभिनंदन किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री कृष्ण कुमार 'नाज' एवं योगेंद्र वर्मा 'व्योम' ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. अजय 'अनुपम' ने किया। ☐

गोइंका सम्मान घोषित

कमला गोइंका फाउंडेशन द्वारा इस वर्ष दक्षिण भारत के सर्वश्रेष्ठ हिंदी सेवियों के लिए घोषित 'बालकृष्ण गोइंका हिंदी साहित्य सम्मान' से चेन्नई निवासी गण्यमान्य हिंदी साहित्यकार श्री रमेश गुप्त 'नीरदजी' को सम्मानित किया जाएगा। मूल हिंदी कृति के लिए ३१,००० रु. का 'बाबूलाल गोइंका हिंदी साहित्य पुरस्कार' हैदराबाद निवासी श्रीमती पवित्रा अग्रवाल को उनकी मूल हिंदी कृति 'उजाले दूर नहीं' के लिए दिया जाएगा। हिंदी से तमिल या तमिल से हिंदी में अनूदित साहित्य के लिए ३१,००० रु. का 'बालकृष्ण गोइंका अनूदित साहित्य पुरस्कार' कोयंबतूर निवासी डॉ. वी. पद्मावती को देने का निर्णय किया गया। ☐

कहानी-पाठ कार्यक्रम आयोजित

२५ सितंबर को काका साहेब कालेलकर एवं विष्णु प्रभाकर की स्मृति को समर्पित सन्निधि संगोष्ठी में डॉ. गंगेश गुंजन की अध्यक्षता में कहानी-पाठ का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री आकांक्षा पारे, विवेक मिश्रा, प्रज्ञा, अनघ शर्मा, अंजु शर्मा ने कहानी-पाठ किया। इस अवसर पर सर्वश्री बलराम अग्रवाल, नीला प्रसाद, अशोक सरन, नवीन कुमार, आनंद, अनीता प्रभाकर ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन सुश्री किरन आर्या तथा श्री अतुल प्रभाकर ने किया। ☐

विचार-विमर्श कार्यक्रम संपन्न

१५-१६ अक्तूबर को गाजियाबाद में राष्ट्रभाषा स्वाभिमान न्यास तथा भागीरथ सेवा संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में २४वें अखिल भारतीय

हिंदी साहित्य सम्मेलन में डॉ. रामशरण गौड़ की अध्यक्षता एवं डॉ. श्याम सिंह शशि के मुख्य आतिथ्य में उद्घाटन सत्र में 'संवाद और संवेदनशीलता का सशक्त माध्यम : पत्र लेखन साहित्य' विषय पर सर्वश्री हरिसिंह पाल, रामप्रबल श्रीवास्तव, रमेश कटारिया 'पारस', सरोज गुप्ता, नरेश कुमार, भावना शुक्ल, राजीव पाल ने अपने आलेख प्रस्तुत किए। सत्र का संचालन-संयोजन श्री उमाशंकर मिश्र ने किया। द्वितीय दिवस के प्रथम सत्र में नेशनल बुक ट्रस्ट द्वारा इसी विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. राम अवतार शर्मा की अध्यक्षता में सर्वश्री अरविंद श्रीवास्तव, राजेश चंद्र पांडेय, अशोक बंसल अश्रु और देवेंद्र बहल ने अपने आलेख प्रस्तुत किए। सत्र का संचालन श्री पंकज चतुर्वेदी ने किया।

श्री बल्देव भाई शर्मा की अध्यक्षता एवं श्री जगदीश्वर गोवरधन के मुख्य आतिथ्य में समापन सत्र में सम्मान-अलंकरण समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री रवि शंकर पांडेय को 'कबीर सम्मान', प्रदीप शर्मा दत्तात्रेय को 'निराला स्मृति सम्मान', राजेंद्र यादव को 'कथा भूषण सम्मान', सुरेश चंद्र दुबे को 'श्री हनुमान दत्त स्मृति सम्मान', मदन लाल गर्ग को 'श्री हरप्रसाद भार्गव स्मृति सम्मान', सुरेंद्र सिंह रावत को 'भगवती प्रसाद देवपुरा स्मृति सम्मान', राजेश चंद्र पांडेय को 'आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी सम्मान', समीर कुमार मंडल को 'राष्ट्रभूषण सम्मान', यश कुमार ढाका को 'समाज भूषण सम्मान', यूनुस खान को 'समाज भूषण सम्मान', अनिल दीक्षित को 'कुल भूषण सम्मान', आर.पी. शर्मा को 'राजभाषा भूषण सम्मान', रेखा कक्कड़ को 'कला भूषण सम्मान', प्रियंका नीता मसीह को 'समाज भूषण सम्मान', राजीव कुमार पांडेय को 'दुष्यंत कुमार स्मृति सम्मान', लहरीराम मीणा को 'कथा भूषण सम्मान' से अलंकृत किया गया। सत्रों का संचालन श्री उमाशंकर मिश्र ने किया। ☐

१४वाँ तुलसी सम्मान समारोह संपन्न

२३ अक्तूबर को भोपाल में मध्य प्रदेश तुलसी साहित्य अकादमी द्वारा एम.पी. नगर में डॉ. देव शर्मा की अध्यक्षता में १४वाँ तुलसी सम्मान कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसके मुख्य अतिथि डॉ. उमेश कुमार और विशिष्ट अतिथि डॉ. देवेंद्र दीपक थे। प्रथम चरण में ग्यारह साहित्यकारों की पुस्तकों का लोकार्पण किया गया। इस अवसर पर 'तुलसी शिखर सम्मान-२०१५' से श्री बृजेश सिंह तथा ११ साहित्यकारों को अलग-अलग विधाओं में सम्मानित किया गया। 'तुलसी शिखर सम्मान-२०१६' से डॉ. शरद पगारे तथा १७ साहित्यकारों को अलग-अलग विधाओं में सम्मानित किया गया। द्वितीय सत्र में काव्य पाठ का आयोजन किया गया, जिसमें अनेक सम्मानित साहित्यकारों ने काव्य पाठ किया। कार्यक्रम का संचालन श्री अमित आनंद ने तथा कवि सम्मेलन का संचालन श्री चंद्रभान राही ने किया। आभार श्री अशोक गौतम ने ज्ञापित किया। ☐

'पकी जेठ' कृति लोकार्पित

विगत दिनों दिल्ली में भगवानदास मोरवाल की कृति स्मृति-कथा 'पकी जेठ' का लोकार्पण किया गया। इसके बाद परिचर्चा आयोजित की गई, जिसमें सर्वश्री परवेज आलम, अनंत विजय, भगवानदास मोरवाल ने पुस्तक के अंशों का पाठ किया। ☐

पं. बिरजू महाराज सम्मानित

विगत दिनों दिल्ली में राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' समृति न्यास द्वारा आयोजित समारोह में डॉ. कर्ण सिंह द्वारा पद्म विभूषण कथक सम्राट् पंडित बिरजू महाराज को 'दिनकर संस्कृति सम्मान', रजत-पत्र एवं एक लाख रुपए की राशि से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर सर्वश्री विजय कुमार मल्होत्रा, पद्मा सचदेव, रामजी सिंह, लीलाधर मंडलोई ने अपने विचार व्यक्त किए। ☐

व्याख्यानमाला आयोजित

विगत दिनों चित्तौड़गढ़ में संभावना संस्था द्वारा 'कविता और जीवन' विषय पर आयोजित व्याख्यानमाला में सर्वश्री श्रीप्रकाश शुक्ल, के.सी. शर्मा, रमेश शर्मा, अब्दुल जब्बार व प्रो. शुक्ल ने कविता पाठ किया। इस अवसर पर साहित्यिक पत्रिका 'बनास जन' के 'फिर से मीरां' विशेषांक का विमोचन किया गया। ☐

आचार्य निरंजननाथ सम्मान घोषित

आचार्य निरंजननाथ स्मृति सेवा संस्थान के सहयोग और पत्रिका 'संबोधन' के माध्यम से दिया जानेवाला अखिल भारतीय 'आचार्य निरंजननाथ सम्मान' कथाकार श्री सुभाष चंद्र कुशवाहा को उनकी कथा कृति 'लाला हरपाल के जूते' पर तथा 'आचार्य निरंजननाथ विशिष्ट साहित्यकार सम्मान' कथाकार श्री अफजल खाँ अफजल को प्रदान किया जाएगा। सम्मान के अंतर्गत इक्यावन हजार रुपए की राशि तथा चौथे आचार्य निरंजननाथ विशिष्ट साहित्यकार सम्मान के अंतर्गत ग्यारह हजार रुपए की राशि के साथ शॉल, श्रीफल, प्रशस्ति-पत्र एवं स्मृति-चिह्न भेंट किया जाएगा। ☐

गोष्ठी संपन्न

विगत दिनों पटना में पारिजात साहित्य परिषद् के तत्त्वावधान में डॉ. शंकर दयाल सिंह स्मृति पुस्तकालय के प्रांगण में 'हिंदी के विकास में डॉ. शंकर दयाल सिंह का योगदान' विषय पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसमें सर्वश्री श्रीकांत व्यास, उषाकिरण खान, नृपेंद्र नाथ गुप्त, आचार्य आनंद किशोर शास्त्री, राम उपदेशसिंह 'विदेह', रूपेश दिग्विजय, भावना शेखर, सिद्धेश्वर ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री संजय कुमार ने किया तथा धन्यवाद श्री वीरेंद्र कुमार सिंह ने किया। ☐

व्याख्यानमाला आयोजित

विगत दिनों नई दिल्ली स्थित गांधी शांति प्रतिष्ठान के सभागार में रंगश्री दिल्ली एवं सर्जनात्मक इतिहास एवं साहित्य न्यास के संयुक्त तत्त्वावधान में चौथा ग्रामीण इतिहासकार लेखक सम्मेलन एवं रामायण चौबे स्मृति लोक व्याख्यान का आयोजन किया गया, जिसमें श्री देवेंद्र चौबे द्वारा संपादित कृति 'आधुनिक भारत के इतिहास लेखन के कुछ साहित्यिक स्रोत' एवं श्री अशोक मिश्र के कहानी-संग्रह 'दीनानाथ की चक्की' का लोकार्पण श्रीमती चित्रा मुद्गल एवं मंचासीन अतिथियों द्वारा किया गया। इस अवसर पर श्री मणिंद्रनाथ ठाकुर एवं श्री हितेंद्र पटेल ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन सुश्री रश्मि चौधरी ने किया। ☐

स्मृति समारोह संपन्न

२५ अक्तूबर को बरेली में मानव सेवा क्लब एवं भारतीय पत्रकारिता संस्थान के संयुक्त तत्त्वावधान में व्यंग्यकार श्री के.पी. सक्सेना व श्री गणेश शंकर विद्यार्थी स्मृति समारोह आयोजित किया गया, जिसमें व्यंग्यकार श्री आलोक सक्सेना को द्वितीय 'के.पी. सक्सेना व्यंग्यकार सम्मान' और अलवर के शायर प्रो. राधे मोहन राय को 'गणेश शंकर विद्यार्थी स्मृति सम्मान' से सम्मानित किया गया। संचालन श्री इंद्रदेव त्रिवेदी ने किया। □

परिचर्चा कार्यक्रम संपन्न

५ नवंबर को दिल्ली में अखिल भारतीय साहित्य परिषद् की प्रादेशिक इकाई 'इंद्रप्रस्थ साहित्य भारती' के संयुक्त तत्त्वावधान में दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी के सभागार में श्रीमती रजनी सिंह की अध्यक्षता में श्री वीर सैन जैन 'सरल' के उपन्यास 'अकेलेपन का दर्द' पर परिचर्चा का कार्यक्रम डॉ. रामशरण गौड़ के सान्निध्य में संपन्न हुआ। इस अवसर पर मुख्य वक्ता डॉ. हरी सिंह पाल व डॉ. इंद्र सेंगर ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन श्री रामचरण साथी ने किया तथा धन्यवाद श्री मनोज शर्मा ने ज्ञापित किया। □

प्रविष्टियाँ आमंत्रित

विद्याश्री न्यास द्वारा १३-१४ जनवरी, २०१७ को आयोजित अंतरराष्ट्रीय संगोष्ठी एवं भारतीय लेखक-शिविर के अवसर पर युवा पीढ़ी के प्रोत्साहन हेतु शोध-आलेख एवं कविता-कहानी प्रतियोगिता आयोजित की गई है। शोध-आलेख का केंद्रीय विषय 'कथेतर हिंदी गद्य : परंपरा और प्रयोग' तथा उपविषय—'कथेतर हिंदी गद्य : विधाएँ और संभावनाएँ', 'कथेतर हिंदी गद्य की आलोचना : प्रयोजन और निकष' तथा 'कथेतर हिंदी गद्य : विकास और अवदान' होगा। प्रतियोगिता के लिए मौलिक कहानी और कविता ही स्वीकार्य होगी। युवा प्रतिभागियों को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से उक्त प्रतियोगिता में भाग लेनेवाले सभी प्रतिभागियों को पंजीयन शुल्क से मुक्त रखते हुए नि:शुल्क प्रमाणपत्र प्रदान किया जाएगा। प्रतियोगिता के लिए प्रविष्टियाँ श्री दयानिधि मिश्र, सचिव, विद्याश्री न्यास, अभिलाषा कॉलोनी, निकट एक्सेल टावर, वरुणापुल, नदेसर, वाराणसी-२ पर १० जनवरी, २०१७ तक भेज सकते हैं। □

२५वाँ अंतरराज्यीय मिन्नी कहानी कार्यक्रम संपन्न

२३ अक्तूबर को अमृतसर में पिंगलवाड़ा की मानावाला शाखा में २५वाँ अंतरराज्यीय मिन्नी कहानी कार्यक्रम दो सत्रों में संपन्न हुआ। प्रथम सत्र में मिन्नी कहानी के ११३वें अंक के विमोचन के साथ-साथ इस विशेषांक के पुस्तक रूप 'पछाण ते पडतोल', श्री श्यामसुंदर अग्रवाल के मिन्नी कहानी-संग्रह 'आथण वेला', श्री श्यामसुंदर दीप्ति की कृति 'मेरी प्रतिनिधि लघुकथाएँ' व 'बालमन की लघुकथाएँ', श्री बलराम अग्रवाल की कृति 'कैक्टस ते तितलियाँ', डॉ. अशोक भाटिया की कृति 'तारामंडल', सं. श्री जगदीश राय कुलरिया की कृति 'गल्पी विधा लघुकथा : सिद्धांत ते विचार, 'पंजाबी थम्म' ', श्री गुरसेवक सिंह रौनक की कृति 'ठीक किहा तुसी' एवं श्रीमती कांता राय की कृति 'पथ का चुनाव' का विमोचन किया गया। श्रीमती आशा देवी को 'ललिता अग्रवाल स्मृति सम्मान'; सुश्री सीमा जैन को हिंदी में, सुश्री कुलविंदर कौशल को 'लघुकथा किरण सम्मान-२०१६' एवं डॉ. अशोक भाटिया को 'बलदेव कौशिक स्मृति सम्मान' से सम्मानित किया गया। मिन्नी कहानी प्रतियोगिता के विजेताओं में सुश्री कुलविंदर कौशल, श्री मनमोहन सिंह बासरके के साथ ७ लेखकों को सांत्वना पुरस्कार प्रदान किए गए। लघुकथा पाठ का आयोजन भी किया गया, जिसमें पंजाबी तथा हिंदी के दो दर्जन कथाकारों ने पाठ किया। □

राज्योत्सव में सम्मान प्रदत्त

५ नवंबर को नया रायपुर में मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंह की अध्यक्षता में पाँच दिवसीय छत्तीसगढ़ राज्योत्सव के समापन समारोह में रचनात्मक लेखन के लिए वरिष्ठ पत्रकार श्री विजयदत्त श्रीधर को 'पं. माधवराव सप्रे राष्ट्रीय रचनात्मकता सम्मान', श्री सैनकुमार मंडावी को 'शहीद वीरनारायण सिंह सम्मान', कुमार रामफूल टोंडर को 'गुंडाधूर सम्मान', श्रीमती चंदेश्वरी ठाकुर को 'मिनी माता सम्मान', श्री नरेश मिश्र को 'चंदूलाल चंद्राकर स्मृति पत्रकारिता पुरस्कार', श्री समीर शुक्ल को 'मधुकर खेर स्मृति पत्रकारिता पुरस्कार', श्री हसन जफर रायपुरी को 'हाजी हसन अली सम्मान', डॉ. लक्ष्मीकांत शर्मा को 'संस्कृत भाषा सम्मान', श्री अभिलाष राज को 'महाराजा प्रवीरचंद्र भंजदेव सम्मान', श्री राजकमल नायक को 'चक्रधर सम्मान', श्री शिव कुमार तिवारी को 'दाऊ मंदराजी सम्मान', श्री लक्ष्मण कुमार पटेल को 'डॉ. खूबचंद बघेल सम्मान', श्री विनोद कुमार शुक्ल को 'पंडित रविशंकर शुक्ल सम्मान', श्रीमती दिनेश कुमारी चतुर्वेदी को 'दानवीर भामाशाह सम्मान', डॉ. मनोहर जी टेकचंदानी को 'धनवंतरि सम्मान', श्री सानेंद्र कुमार बघेल को 'बिलासाबाई केवटिन सम्मान', श्री अमित पाटले को 'पंडित लखनलाल मिश्र सम्मान', श्रीमती समेबाई शास्त्री को 'गुरु घासीदास सम्मान' राज्य अलंकरणों से सम्मानित किया गया। □

'जी-मेल एक्सप्रेस' कृति लोकार्पित

विगत दिनों दिल्ली के रूसी विज्ञान एवं संस्कृति केंद्र में गोवा की राज्यपाल श्रीमती मृदुला सिन्हा की अध्यक्षता में सुश्री अलका सिन्हा के उपन्यास 'जी-मेल एक्सप्रेस' का लोकार्पण किया गया, जिसमें सर्वश्री चित्रा मुद्गल, राजेंद्र गौतम, वर्तिका नंदा, दिनेश कुमार, अर्सेनी स्टारकोव ने अपने विचार व्यक्त किए। संचालन डॉ. विजय कुमार मिश्र ने किया तथा धन्यवाद श्री अनिल वर्मा 'मीत' ने ज्ञापित किया। □

राष्ट्रीय परिसंवाद आयोजित

१६ नवंबर को वाराणसी में हिंदी विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, श्री शंकर शिक्षायतन एवं विद्याश्री न्यास के संयुक्त तत्त्वावधान में विद्यापीठ के पुस्तकालय भवन के सभागार में पं. विद्यानिवास मिश्र स्मृति व्याख्यान के रूप में कुलपति श्री पृथ्वीश नाग की अध्यक्षता में उद्घाटन सत्र में 'शिक्षा और संस्कृति' विषय पर पं. बंगाल के राज्यपाल मान. श्री केशरीनाथ त्रिपाठी एवं सर्वश्री कपिल कपूर, अवधेश प्रधान ने अपने विचार व्यक्त किए। प्रथम सत्र में प्रो. के.पी. पांडेय ने अध्यक्षीय उद्बोधन दिया। द्वितीय सत्र में प्रो. यदुनाथ दुबे की अध्यक्षता में सर्वश्री धनंजय सिंह, जितेंद्रनाथ मिश्र, राजनाथ त्रिपाठी ने अपने विचार व्यक्त किए। दोनों सत्रों का संयोजन-संचालन श्री श्रद्धानंद ने किया। धन्यवाद श्री दयानिधि मिश्र ने ज्ञापित किया। □